षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग।

कार्यविवरण-पहला भाग।

श्रीमान् बाबू श्यामसुन्दरदास जी, बी० ए०

षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग) के सभापति ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

भूमिका।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके पञ्चम अधिवेशन में जो सम्वत् १९७१ में लखनऊ में हुआ यह निश्चय हुआ था कि सम्मेलन का छठवां अधिवेशन लाहौर में हो। लाहौर में सम्मेलन करने का निमंत्रण श्रीयुत हरिश्चन्द्रजी ने उपस्थित किया था। उन्होंने निमंत्रण केवल अपनी ओर से नहीं दिया था; महात्मा मुंशीरामजी का तार भी आया था जिसमें उन्होंने सूचित किया था कि वे स्वयं, भगत ईश्वरदास जी, रायबहादुर रामशरणदासजी, श्रीयुत रोशन लालजी तथा लाला गोपाललाल भंडारी आगामा अर्थात् षष्ठ सम्मेलन को लाहौर में निमंत्रित करते हैं। उपस्थित प्रतिनिधियों ने उस निमंत्रण को बड़े उत्साह से स्वीकृत किया था। पंजाबमें हिन्दी प्रचार के कामकी आवश्यकता का अनुभव कर हिन्दी प्रेमी विशेष रीतिसे चाहते थे कि लाहौर का सम्मेलन विशेष उत्साह से हो जिसमें पञ्जाब निवासियों का ध्यान राष्ट्र-भाषा के महत्व की ओर आकर्षित किया जाय। किन्तु अन्तमें षष्ठ सम्मेलन लाहौरमें न होकर प्रयागमें हुआ और स्थायी समितिको उसका प्रबन्ध अपनी ओर से एक स्वागत समिति बनाकर करना पड़ा। किन कारणोंसे सम्मेलन लाहौरमें नहीं हुआ उसका संक्षेप में विवरण सम्मेलनके प्रधान मंत्री बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन की उस वक्तृता में मिलेगा जो उन्होंने षष्ठ सम्मेलनमें सभापति-निर्वाचनका प्रस्ताव उपस्थित करते हुए दी थी [इस कार्य विवरणका पन्ना १० देखिए]। सम्वत् १९७२ की सम्मेलन-पत्रिका, [भाग ३ अंक ४, ५] में भी उन घटनाओं का कुछ वर्णन है जिनके कारण सम्मेलन लाहौरमें नहीं हुआ। अब उन सब कारणों को फिरसे यहां लिखने की आवश्यकता नहीं है। लाहौर में सम्मेलन न होने से हिन्दी प्रेमियों को बहुत खेद हुआ था। उसका मार्जन यही है कि लाहौरमें सम्मेलनका एक अधिवेशन जैसे ही अवसर मिले अच्छे समारोह के साथ हो। यह बात विशेष रीति से पञ्जाबके हिन्दी प्रेमियोंके ध्यान देने योग्य है।

इस कार्य-विवरणके प्रकाशन में बहुत बिलम्ब हुआ; उसके लिये हिन्दी संसारसे क्षमा चाहता हूं।

अन्त में षष्ठ सम्मेलन की स्वागत समिति की ओर से मैं उन सब महानुभावों को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने इस अधिवेशन के करने में सहायता दी। जिन सज्जनों ने षष्ठ सम्मेलन के लिये धन की सहायता दी है उनके नाम और दान परिशिष्ट (ङ) में प्रकाशित हैं।

निवेदक,
लक्ष्मीनारायण नागर,
मंत्री स्वागत समिति, षष्ठ हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

प्रयाग
सम्वत् १९७४

षष्ठ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग

(पौष कृष्ण ८, ९ और १०, सम्वत् १९७२)

षष्ठ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति बाबू श्याम सुन्दर दासजी पौष कृष्ण ८ सम्वत् १९७२ता० २१ दिसम्बर सन् १९१५ के सबेरे छः बजे की गाड़ीसे लखनऊ के प्रतिनिधि बा० गोपाल लाल खत्री, पं० महेशनाथ शर्मा, डा० पुरुषोत्तमदास कक्कड़,बा० पुत्तनलाल विद्यार्थी आदि सज्जनोंके साथ प्रयाग पहुँचे। स्टेशन पर आप के स्वागतके लिए स्वागत समिति के संयोजक पं० लक्ष्मीनारायण नागर, पं० मुरली धर मिश्र और अनेक सज्जन तथा कुछ स्वयं सेवक पहले ही से स्टेशन प्लेटफ़ार्म पर उपस्थित थे। सभापति महाशय तथा उनके साथी अन्य सज्जन थोड़ी देर विश्राम करने के लिए स्टेशन की धर्मशाला में ठहराये गये। थोड़ी ही देर में नगर के अन्य सज्जन तथा बाहर से आये हुए बहुत से प्रतिनिधि स्वागत के लिए वहां पहुँच गये और दल निकालने की तैयारी होने लगी। लगभग ९ बजे दल धर्मशाले से उठा। दल में आगे आगे झण्डे लिए हुए ऊंटों की एक कतार, पीछे बाजेवाले और उनके पीछे स्वयं सेवकों की एक सुदीर्घ पंक्ति चलती थी। स्वयं सेवकों के पीछे शहर के अनेक सज्जन और इनके पीछे सभापति महोदय की गाड़ी थी जिस पर सभापति जी तथा सम्मेलन के उपसभापति पं० श्री कृष्ण जोशी विराजमान थे। गाड़ी के आस पास झण्डे लिए हुए स्वयं सेवक तथा पीछे और अनेक गाड़ियां थीं जिन पर शहर के रईस लोग बैठे थे। लोगों में बड़ा उत्साह था और रास्ते भर हिन्दी की, राष्ट्र भाषा की तथा सभापति जी की जय जयकार और पुष्पों की वर्षा बराबर होती रही।

मार्ग में स्थान स्थान पर सभापति महोदय का स्वागत हुआ और पुष्पों की वर्षा की गई। चौक, घंटाघर, भारतीभवन होता हुआ दल मुंशी राम प्रसाद के बागमें पहुँचा जहां सभापति के ठहराने का प्रबन्ध किया गया था।

बाग के बाहर सभापति महोदय का फूल मालाओं से फिर स्वागत किया गया और आरती उतारी गयी और वे अपने साथियों सहित बाग के एक बंगले में उतारे गये।

मुंशी राम प्रसाद का बागप्रयाग के सुन्दर स्थानों में से एक है। इसमें प्रवेश करने के लिए एक सुन्दर फाटक बना है। प्रवेश करते ही सामने राधाकृष्ण का एक सुन्दर तथा विशाल मन्दिर और रमणीय फुलवारी है। मंदिर के पूर्व की ओर सुन्दर लम्बी चौड़ी वृक्षों से घिरी हुई एक खुली जगह दृष्टि पड़ती है। नगर की सार्वजनिक सभाएं बाग के इसी स्थान में प्रायः होती हैं। इसी मनोहर पुष्प वाटिका के इस खुले हुए स्थान में ही सम्मेलन का मंडप बनाया गया था। इसमें पूर्व की ओर सभापति के बैठने के लिए एक विशाल मंच बना था। नीचे उतर कर दोनों ओर समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों के बैठने के लिए स्थान था। सामने प्रतिनिधियों तथा दर्शकोंके बैठनेके लिए कुर्सियां लगी हुई थीं। मंच के बाईं तरफ स्त्रियों के

बैठने के लिये प्रबन्ध था। मंडप फूल पत्तियों से खूब सजाया गया था।

पहला दिन

दिन का कार्य एक बजे आरम्भ हुआ। नियत समय के पहले ही दर्शकों तथा प्रतिनिधियों से मंडप भर गया। सभामण्डप में सभापति के आते ही करतलध्वनि हुई और 'मातृ भाषा की जय' 'सभापति की जय' की ध्वनियों से सभामंडप गूंज गया। सब से प्रथम दो बालकों ने मधुर ध्वनि से मङ्गलाचरण किया। इसके पीछे पण्डित जीवानन्द शर्मा काव्यतीर्थ ने निम्न लिखित मङ्गल गान किया।

बन्दे मातृ भूमि सुखकारी॥
गंग जमुन की मालाधारी,
हिमगिरि केश संवारी।
मलयाचल की गन्धन वारी,
तीस कोटि महतारी॥
रतन जटित विन्ध्य पैंजनियां,
बीचिन बजत सिन्धु करधनियां,
नवलख पैंतिस सहस कोस की,
सुन्दर प्रभा संवारी॥
बन फूलवारी बिचरन वारी,
लता कुंज पगधारी।
ब्रह्म ध्यान में तन मन वारी,
सस्य श्यामला वारी॥
रतननवारी स्वर्ण सुधारी,
मधुर मधुर फलवारी।
विद्या बुद्धि बीरता पूरित,
कोख धारिणी प्यारी॥
बन्दे मातृ भूमि सुखकारी॥

फिर कलकत्ते के पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने अपनी 'हिन्दी की जय' शीर्षक निम्नलिखित कविता पढ़ी।

हिन्दी की जय।

भक्तिसहित निज इष्ट देवकौ करि आराधन।
उठहु उठहु प्रियबन्धु करहु हिन्दी हित साधन॥
हम हिन्दी के पुत्र हमारी हिन्दी माता।
हिन्दू हिन्दी हिन्द नामकौ निरखहु नाता॥
हिन्दू हिन्दी त्यागि बनत जो उरदू दासा।
सो निज हाथन करत आप हैं अपनो नासा॥
कुल मरजादा लखहु और निज रूप निहारहु।
कटिकों कसिके उठहु वेग हिम्मत मत हारहु॥
धन बल गौरव मान सुजस सब भये तिरोहित।
आरज कुलकी गरिमा केवल अजहुँ प्रकाशित॥
आर्यवंस सन्तान अजहुँ हम लोग कहावत।
आर्यवंसकौ रक्त अजहुँ नस नस में धावत॥
वही वेद उपनिषद वही सब ग्रन्थ पुरातन।
अजहुँ वही षड्दर्शन जापै मोहित सब जन॥
वही विन्ध्य गिरिराज वही हिमसैल सुहावन।
वही गंग औ जमुन वही सरजू जल पावन॥
पृथ्वी वही पवित्र वही नभमण्डल तारे।
फिर हम सब क्यों रहें मौन ह्वै मनकों मारे॥
करि करि नव उत्साह उठहु सब हिन्दी भाषी।
हिन्दीकों अपनाय मिटावहु दुखकी रासी॥
बहुत दिननलौं भूले भटके अब जिन भूलौ।
करि त्रिशंकुकी नकल बीच में मत अब झूलौ॥
खड़ी पड़ी औ अड़ी गड़ी बोलिनकौ रगरौ।
करौ न कबहूँ भूलि जानि यह झूठौ झगरौ॥
हिन्दू आरज नामनकौ झगरौ मत ठानौ।
जगन्नाथ की कही भला इतनी तो मानौ॥
नाम मांहि कछु नाहिं काम करिके दिखराओ।
हिन्दीकौ परचार यहां पै तुरत कराओ॥
भये उपस्थित आज यहां पै जो सब भाई।
करें प्रतिज्ञा अटल यही निज भुजा उठाई॥
हिन्दी में हम लिखें पढ़ें हिन्दी ही बोलें।
नगर नगरमें हिन्दी के विद्यालय खोलें॥

हिन्दी के हितचिन्तन में नित ही चित देहैं।
भूलि कबहुँ नहि उरदू को हम नामहु लेहैं॥
हिन्दी की अब तन मन धनसों सेवा करिहैं।
विघ्न विपद औ बाधासों हम नेक न डरिहैं॥
यह पन पूरो करे सदा माधव मङ्गलमय।
हमहुँ कहैं हिन्दी जय हिन्दी जय हिन्दी जय॥

इसके अनन्तर पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय ने स्वरचित नीचे दी हुई कविता पढ़ी—

हिन्दी भाषा।

छप्पै।

पड़ने लगती है पियूष की शिर पर धारा।
हो जाता है रुचिर जोति मय लोचन तारा।
बर बिनोद की लहर हृदय में है लहराती।
कुछ बिजली सी दौड़ सब नसों में है जाती।
आते ही मुख पर अति सुखद,
जिसका पावन नाम ही।
इक्कीस कोटि जन पूजिता,
हिन्दी भाषा है वही॥ १॥

जिसने जग में जन्म दिया और पोसा पाला।
जिसने यक यक लहु बूंद में जीवन डाला।
उस माता के शुचि मुख से जो भाषा सीखी।
उसके उर से लग जिसकी मधुराई चीखी।
जिसके तुतला कर कथन से,
घर में धार सुधा बही।
क्या उस भाषा का मोह कुछ,
हम लोगों को है नहीं॥ २॥

दो सूबे के भिन्न भिन्न बोली वाले जन।
जब करते हैं खिन्न बने, मुख भर अवलोकन।
जो भाषा उस समय काम उनके है आती।
जो समस्त भारत भू में है समझी जाती।
उस अति सरला उपयोगिनी,
हिन्दी भाषा के लिये।
हम में कितने हैं जिन्होंने,
तन मन धन अरपन किये॥ ३॥

गुरु गोरख ने जोग साधकर जिसे जगाया।
औ कबीर ने जिस में अनहद नाद सुनाया।
प्रेम रंग में रँगी भक्ति के रस में सानी।
जिसमें है श्री गुरु नानक की पावन बानी।
हैं जिस भाषा से ज्ञान मय
आदि ग्रन्थसाहब भरे।
क्या उचित नहीं है जो उसे
निज सर आँखों पर धरे॥ ४॥

करामात जिस में है चंद कला दिखलाती।
जिस में है मैथिल कोकिलकाकली सुनाती।
सूरदास ने जिसमें सर बर सुधा बनाया।
तुलसी ने जिसमें सुर पादप फलद लगाया।
जिस में जग पावन पूत तम
राम चरित मानस बना।
क्या परम प्रेम से चाहिये
उसे न प्रति दिन पूजना॥ ५॥

बहुत बड़ा अति दिव्य अलौलिक परम मनोहर।
दशम ग्रन्थ साहब समान वर ग्रन्थ विरच कर।
श्री कलँगीधर ने जिस में निज कला दिखाई।
जिसमें अपनी जगत चकित कर जोति जगाई।
वह हिन्दी भाषा दिव्यता-
खनि अमूल्य मणियों भरी।
क्या हो नहीं सकती है सकल
भाषाओं की सिर धरी॥ ६॥

अति अनुपम अति दिव्य कान्त रत्नों की माला।
कवि केशव ने कलित कंठ में जिसके डाला।
पुलक चढ़ाये कुसुम बड़े कमनीय मनोहर।
देव बिहारी ने जिसके युग कमल पगों पर।
आँख खुले पर वह भला
लगेगी न प्यारी किसे।
जग मगा रही है जो किसी
भारतेन्दु की जोति से॥ ७॥

वैष्णव कविकुल मुख प्रसूत आमोद विधाता।
जिसमें है अति सरस स्वर्ग संगीत सुनाता।

भरा देश हित से था जिसके कर का तूंबा।
गिरी जाति के नयन सलिल में था जो डूबा।
वह दयानन्द नव युग जनक
जिसका उन्नायक रहा।
उस भाषा का गौरव कभी
क्या जा सकता है कहा॥ ८॥

महाराज रघुराज राज विभवों में रहते।
थे जिस के अनुराग तरंगों ही में बहते।
राज विभव पर लात मार हो परम उदासी।
थे जिसके नागरी दास एकान्त उपासी॥
वह हिन्दी भाषा बहु नृपति
वृन्द पूजिता वन्दिता।
कर सकती है उन्नति किये
वसुधा को आनन्दिता॥ ९॥

वे भी हैं, है जिन्हें मोह, हैं तन मन अर्पक।
हैं सर आँखों पर रखने वाले, हैं पूजक।
हैं बरता बादी गौरवविद् उन्नति कारी।
वे भी हैं जिनको हिन्दी लगती है प्यारी॥
पर कितने हैं, वे हैं कहां
जिनको जीसे है लगी।
हिन्दू जनता नहिं आज भी
हिन्दी के रँग में रँगी॥१०॥

एक बार नहिं बीस बार हमने हैं जोड़े।
पहले तो हिन्दी पढ़नेवाले हैं थोड़े।
पढ़ने वालों में हैं कितने उर्दूसेवी।
कितनों की हैं सकल फलद अंग्रेज़ी देवी॥
कहते रुक जाता कंठ है
नहिं बोला जाता यहां।
निज आँख उठा कर देखिये
हिन्द प्रेमी हैं कहां?॥ ११॥

अपनी आंखें बन्द नहीं मैंने कर ली हैं।
वे कन्दीलें लखीं जो तिमिर बीच बली हैं।
है हिन्दी आलोक पड़ा पंजाब धरा पर।
उस से उज्वल हुआ राज्य इन्दौर ग्वालिअर।
आलोकित उस से हो चली,
राज स्थान वसुंधरा
उसका बिहार में देखता
हूँ फहराता फरहरा॥ १२॥

मध्य हिन्द में भी है हिन्दी पूजी जाती।
उसकी है बुन्देल खंड में प्रभा दिखाती।
वे माई के लाल नहीं मुझको भूले हैं।
सूखे सर में जो सरोज के से फूले हैं।
कितनी ही आंखें हैं लगी
जिन पर आकुलता सहित।
है जिनके सौरभ रुचिर से
सब हिन्दी जग सौरभित॥ १३

है हिन्दी साहित्य समुन्नत होता जाता।
है उसका नूतन विभाग भी सुफल फलाता।
निकल नवल सम्बाद पत्र चित हैं उमगाते।
नव नव मासिक मेगज़ीन हैं मुग्ध बनाते।
कुछ जगह न्यायप्रियतादि भी
खुलकर हिन्दी हित लड़ीं।
कुछ अन्य प्रान्त के सुजन की
आखें भी उस पर पड़ीं॥ १४॥

किन्तु कहूँगा अब तक काम हुआ है जितना।
वह है किसी सरोवर के कुछ बूंदों इतना।
जो शाला कल्पना नयन सामने खड़ी है।
अब तक तो उसकी केवल नींव ही पड़ी है।
अब तक उसका कल का कढ़ा
लघुतम अंकुर ही पला।
हम हैं विलोकना चाहते
जिस तरु को फूला फला॥ १५॥

बहुत बड़ा पञ्जाब और यहां का हिन्दू दल।
है पकड़े चल रहा आज भी उरदू आँचल।
गति मति उसकी वही जीवनाधार वही है।
उसके उरतंत्री का ध्वनिमय तार वही है।
वह रीझ रीझ उसके बदन की
है कान्ति बिलोकता।
फूटी आँखों से भी नहीं
हिन्दी को अवलोकता॥१६॥

मुख से है जातीयता मधुर राग सुनाता ।
पर वह है सोहराब और रुस्तम गुण गाता ।
उमग उमग है देश प्रेम की बातें करता ।
पर पारस के गुल बुल बुल का है दम भरता ।
हम कैसे कहें उसे नहीं
हिन्दू हित की लौ लगी ।
पर विजातीयता रंग में
है उसकी निजता रंगी ॥१७॥

भाषा द्वारा ही विचार हैं उर में आते ।
वे ही हैं नव नव भावों की नींव जमाते ।
जिस भाषा में विजातीय भाव ही भरे हैं ।
उस में फँस जातीय भाव कब रहे हरे हैं ।
है विजातीय भाव ही का
हरा भरा पादप जहाँ ।
जातीय भाव अंकुरित हो
कैसे उलहेगा वहाँ ॥१८॥

इन सूबों में ऐसे हिन्दू भी अवलोके ।
जिनकी रुचि प्रतिकूल नहीं रुकती है रोके ।
वे होमर इलियड का पद्य समूह पढ़ेंगे ।
टेनिसन की कविता कहने में उमग बढ़ेंगे ।
पर जिस में धारायें विमल
हिन्दू जीवन की बहीं ।
वह कविता तुलसी सूर की
मुख पर आती तक नहीं ॥१९॥

मैं परभाषा पढ़ने का हूँ नहीं विरोधी ।
चहिये हो मति निजभाषा भावुकता शोधी ।
जहां बिलसती हो निजभाषा रुचि हरियाली ।
वहीं खिलेगी परभाषा-प्रियता कुछ लाली ।
जातीय भाव बहु सुमन मय
है वर उर उपवन वही ।
हों विजातीय कुछ भाव के
जिस में कतिपय कुसुम ही ॥२०॥

है उर के जातीयभाव को वही जगाती ।
निज गौरव ममता अंकुर है वही उगाती ।
नस नस में है नई जीवनी शक्ति उभरती ।
उस से ही है लहू बूंद में बिजली भरती ।
कुम्हलाती उन्नति लता को
सींच सींच है पालती ।
है जीव जाति निर्जीव में
निज भाषा ही डालती ॥२१॥

उस में ही है जड़ी जाति रोगों की मिलती ।
उस से ही है रुचिर चाँदनी तममें खिलती ।
उस में ही है विपुल पूर्वतन बुध जन संचित ।
रत्न राजि कमनीय जाति गत भावों अंकित ।
कब निज पद पाता है मनुज
निजता पहचाने बिना ।
नहिं जाती जड़ता जाति की
निज भाषा जाने बिना ॥२२॥

गाकर जिनका चरित जाति है जीवन पाती ।
है जिनका इतिहास जाति की प्यारी थाती ।
जिनका पूत प्रसंग जाति हित का है पाता ।
जिनका वर गुण बीरतादि है गौरवदाता ।
उनकी सुमूर्त्ति महिमामयी
बंदनीय बिरदावली ।
निज भाषा ही के अंक में
अंकित आतीहै चली ॥२३॥

उस निज भाषा परम फलद की ममता तजकर ।
रह सकती है कौन जाति जीती धरती पर ।
देखी गई न जातिलता वह पुलकित किंचित ।
जो निज भाषा प्रेमसलिल से हुई न सिंचित ।
कैसे निज सोये भाग को
कोई सकता है जगा ।
जो निज भाषा अनुराग का
अंकुर नहिं उर में उगा ॥२४॥

हे प्रभु अपना प्रकृतरूप सब ही पहचाने ।
निज गौरव जातीय भाव को सब सनमाने ।
तम में डूबा उर भी आभा न्यारी पावे ।
खुलें बंद आँखें औ भूला पथ पर आवे ।
निज भाषा के अनुराग की
बीणा घर घर में बजे ।

जीवन कामुक जन सब तजे
पर न कभी निजता तजे ॥२५॥

तदनन्तर बा० गङ्गाधर (नम्र) जी ने अपनी निम्न लिखित कविता पढ़ी, जिसकी छपी हुई प्रतियां उपस्थित सज्जनों में वितरण की गई थीं।

स्वागत।

स्वागत सज्जनवृन्द सम्मिलन भयो सबेरे।
स्वागत नवलनिकुंज धाम तजि आये मेरे।
स्वागत दयानिधान दया अति मो पर फेरी।
स्वागत बुद्धिविधान कृपानिध कृपाघनेरी।
स्वागत हिन्दी हितभयो आगम शोभा पावते।
स्वागत नभ देखत खड़े देव सुमन झरलावते॥१॥
स्वागत स्वागत विश्ववाटिका के नवमाली,
स्वागत सुयश प्रकाशन को हित डाली डाली।
स्वागत उदधि अगाध महोदय भाग्य हमारे।
स्वागत कोटिन धन्यवाद जो यहां पधारे।
स्वागतचन्द्र चकोरवत् निश दिन मुख निरखाकरौं
स्वागत सुकवी नम्र नहिं रागद्वेष ईर्षाधरौं ॥२॥

हिन्दी की उपयोगिता।

श्रीगोविन्द गुनाकर आकर
गाकर भवसागर तरना।
उभै लोक कल्याण प्रदायनि
वाणी का मङ्गल करना॥
हरना दुखद समूह बुद्धि की
सुगम प्रेरणा सों अपने।
करना तिनको ध्वंस अंस जो
मारग में कंटकित बने॥
सद्विचार सदभावों ही से
करना सकल कार्य निःशेष।
जीवन में जीवन धन सरबस
अमृत फल असंख्य अनिमेष॥
जाहि मातृभाषा में तुमरो
जन्म भयो पलना पायो।
लालन पालन कियो मातु ने
तुव मुख देखत हरषायो॥
देखत सोवत नैन नींद भरि
करि करि बहु आमोद प्रमोद।
रोवत जबहि भूख सो आतुर
हरखि उठावत माता गोद॥
तुरत प्याय पय आश्वासन कर
मन सुख सिन्धु लगा गोता।
महामधुर मन रंजन सों तब
सूखा अधर हरा होता॥
भये व्याध वाधा के तन में
कियौ बनौषधि योग प्रयोग।
बहुत यत्न सों करिकै रक्षा
हरी सबै बिध चित को शोग॥
यहि प्रकार सोँ वितैवर्ष षट
मासाधिक में मिलन लगे।
कछू पकरिकर करसोँ तब तो
निजपग घुटुवन चलन लगे॥
बोलचाल की बात सिखावत
सीखत कबहुँ।कबहुँ चितलाय।
मांग मांग कै दूध मात सोँ
पीवत भरि भरि पेट अघाय॥
कबहुँ मिठाई मोदक मेवा
मोहनभोग बहुत खायो।
कहत मोहि पकान्न देह
मेरो मन सब सों घबरायो॥
जोइ २ कहत करत सोइ सोइ बिध
परिजन पुरजन को जानो।
अपने और बिराने दल को
भाव भली बिध पहिचानी॥
विजय महूरत देख मात पितु ने
चटशालहि भेज दियो।
तहां जाय क ख ग घ को
अक्षर माहिं विचार कियो॥
चिट्ठी पत्री लिखन लगे कछु
पढ़न लगे निज पंडित सों।

धन्य तुम्हारे पण्डित जी जो
रहे सबै गुनमंडित सों।
पढ़ि दुइ चार पुस्तिका क्रम सों
करतव्याकरतव्य विलीन।
व्यापारोन्नति कृत विशेष
रीतानुसार गृह के आधीन॥
संसकार उपनैन विवाहादिक
में गुरु दीक्षा पायो।
सुफल मनोरथ भयो तबै वह
हिन्दी सों जो चित लायो॥
हिन्दी होम दान वृत हिन्दी
जप तप हिन्दी पूजा है।
हिन्दी सत्य स्वार्थ परमारथ
हिन्दी सम नहिं दूजा है॥
हिन्दी शास्त्र पुरान मर्म सब
हिन्दी कर्म धर्म हिन्दी।
हिन्दी विश्वबाटिका फूली
हिन्दी सिर पै ज्यों बिन्दी॥
हिन्दी ज्ञान विराग रागयुत
हिन्दी हिय की माला है।
तीनों काल व्यापती हिन्दी
का कुछ ठाट निराला है॥
निष्कंटकमय चले पूर्वजों के
मारग अनुसरता है।
कहो मित्र दो बात आज
तुमको भी तो कुछ करना है॥
ऋण जो लिया किसी से उसको।
उसका ऋण नहि धरना है॥
हिन्दी ही का शब्द अन्त में
राम राम कहि मरना है।

हिन्दी का शृङ्गार।

यद्यपि सब प्रकार सों करिके
सौख्य सदा संतुष्ट हुवे।
औरों के घर भरा किये हम
आप नहीं कुछ पुष्ट हुवे॥
रचा किये बहु भाव कहीं तो
सत्सुन्दर अमरीका का।
कहीं फ्रांस जर्मन कहीं पर
न्यूफैशन अफरीका का॥
भाषा भूषण भेष सभ्यता
वही सुगंध समाई है।
नहीं कहैं कुछ बुरा न मानो
केवल बाल ढिठाई है॥
भांत भांत सौं साज संवारा
शिलप-कला का खून किया।
भूषण को दूषण दूषण को
भूषण जोग प्रसून किया॥
बूरी बस्तु के खान पान से
सद्विचार बिनसाया है।
जो कुलीन कुल का कल्पद्रुम
उसको काट गिराया है॥
वही नीत औ वही न्याय के
चाल चलन का जाप करैं।
पर रंजन सेही सब सुख का
अनुभव अपने आप करैं॥
नहीं करैं तो शरम लगेगी
लोग हँसेंगे दै ताली।
चले गये तुम उधर, तुम्हारा
इधर हो गया घर खाली॥
कभी न उपजै व्यथा चित्त को
प्रत्युत और सँवारेंगे।
चाहे मरैं मौतले उनकी
उनकी ही सिर धारैंगे॥
इस विचार के फन्दे में पड़
आपी सत्यानाश हुवे।
घर की ओर न देखा फिर कर
कैसे हाय हताश हुवे॥
करो किसी दिन गर चाहो तो
सुन्दर हिन्दी का शृंगार।
उसके में अपना अपने में

उसका होवै यार प्रचार॥
कंठ आभरन करो हिन्द की
हिन्दू हिन्दी वाणी में।
देखो मजा मिलैगा कैसा
भाव पूर्ण कल्याणी में॥
जटा धरो हिन्दी की चाहो
गले बीच हिन्दीमाला।
हिन्दी का सत्पात्र बना हो
हिन्दी का हो मृगछाला॥
अंतस में हिन्दी बाहर में
हिन्दी हिन्दी किया करो।
जिया करो तब सुख से प्यारे
मधुधारा सी पिया करो॥
लोग प्रनाम करेंगे तुमको
दूर देश के खड़े खड़े॥
बेड़ा पार लगैगा तब तो
तुम से भी सब बड़े बड़े॥
क्षमा कीजियेगा शिशुता को
मेरी बाल अवस्था है।
जो कुछ कहा आप के सनमुख
बाकी रही व्यवस्था है॥

इसके बाद स्थायी समिति के उपसभापति पण्डित श्रीकृष्णजी जोशी ने स्वागतसमिति की ओर से एक छोटी किन्तु सारगर्भित मौखिक वक्तृता में प्रतिनिधियों का स्वागत किया। उनकी वक्तृता का सारांश यह है—

सज्जनो,

धन्य हैं वे जातियां जो अपनी उन्नति करने के प्रयत्न में लगी रहती हैं। उन जातियों के लोग श्लाघ्य हैं। आप लोग धन्य हैं कि मातृभाषा की सेवा के लिए इतनी दूर से आये हुए हैं। आप सचमुच धन्य हैं जो अकारण ही निस्वार्थ कार्य करते हैं। लोग व्यापार करने के लिए, धनोपार्जन करने के लिए, दूर दूर देशों में जाया करते हैं, अपने स्वार्थ के लिए लोग यूरोप अमरीका तक जाते हैं सब प्रकार का कष्ट सहने को तैयार रहते हैं, परन्तु आप व्यापार करने नहीं आये हैं, आपको धन कमाने की लालसा नहीं है; प्रयाग तीर्थराज कहलाता है। मातृभाषा तीर्थ का प्रयाग तीर्थ के साथ समागम हुआ है। आप तीर्थयात्रा करने आये हैं; मातृभाषारूपी तीर्थ की यात्रा करने आये हैं। अपने स्वार्थ के लिए जो लोग यूरोप अमरीका आदि देशों को जाते हैं, जो व्यापार करने के लिए, अपनी जाति की धन सम्पत्ति की बृद्धि करने के लिए दूर दूर जाते हैं वे उन लोगों से अच्छे हैं जो घर ही में आलसी बने बैठे रहते हैं। पर आप अपनी मातृभाषा से निष्काम प्रीति रखते हैं, अपनी मातृभाषा के प्रेम के कारण ही इतनी दूर आये हैं। लोग जीविका के लिए अङ्गरेजी पढ़ते हैं परन्तु आपका मातृभाषा प्रम अकारण ही है। जिस प्रकार वेदों का पढ़ना ब्राह्मणों के लिए बिना सांसारिक आवश्यकता के भी बतलाया गया है, ठीक उसी प्रकार आप लोगों का हिन्दी से निष्काम प्रेम करना गौरव प्रदर्शक है; अतः आप लोग धन्य हैं।

हमारी मातृभाषा हीन अवस्था में है। भाषा का ठीक वैसा ही हाल है, जैसा धर्म का अर्थात् जिस प्रकार राजा के आश्रय देने पर धर्म की अभिवृद्धि होती है उसी प्रकार भाषा की। भारतवर्ष में बौद्धधर्म को एक बड़े महापुरुष ने प्रवर्तित किया। राज्यसुख की परवाह न करके जिसने धर्म के लिए जंगल में सम्पूर्ण दुःखों को झेलना स्वीकार किया और तपस्या करके धर्म फल प्राप्त किया वह सचमुच एक महापुरुष था। ऐसे महापुरुष के द्वारा चलाया हुआ धर्म भी बहुत दिनों तक अव्यवहृत रहा; जब चक्रवर्ती महाराज अशोक ने उसे आश्रय दिया तब वह श्रेष्ठ हुआ, वह आज सार्वभौमिक धर्म हो रहा है, सौ में ४० आदमी बौद्ध मतावलम्बी हैं।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये, ईसामसीह राजा के लड़के नहीं थे, उनके धर्म के ऊपर दूसरों की बाधायें थीं इसलिए उनको प्राण से हाथ धोना पड़ा। ईसामसीह का धर्म उस समय तक मछुओं मल्लाहों व गड़रियों का मत समझा जाता था जब तक कि रोम के बादशाहों ने उसे स्वीकार नहीं किया। हमारी मातृभाषा बहुत दिनों से दूसरी भाषाओं से आक्रान्त है। जिस समय मुसलमान लोग भारतवर्ष में आये उस समय तक कचहरियों की भाषा हिन्दी थी। अकबर के राजत्वकाल से कचहरियों में फ़ारसी का प्रचार हुआ। सर्वसाधारण के मुकद्दमे मामले सब कचहरियों में हुआ करते थे, कचहरियों से उनका काम पड़ा करता था लाचार होकर उन्हें फ़ारसी सीखनी पड़ी। इन कारणों से आपकी भाषा आक्रन्त हुई। जब अँगरेज़ लोग इस देश में आये तब उन लोगों ने इसपर विचार किया और इस देश के लोगों को फ़ारसी ऐसी क्लिष्ट भाषा पढ़ाने में अन्याय समझा, तब हुक्म दिया कि कचहरी की भाषा फ़ारसी नहीं रह सकती है। बंगाल में विदेशी भाषा बहुत प्रभावशालिनी नहीं थी इसका कारण यह था कि बङ्गाली लोगों ने अपनी भाषा का त्याग करना स्वीकार नहीं किया था। इसीसे उनकी भाषा ने हिन्दी की अपेक्षा शीघ्र उन्नति की; किन्तु हिन्दी भाषा उन्नति करे कैसे ? अङ्गरेज़ी भाषा बालकों को छोटी अवस्था में सिखलायी जाती है। उसके पढ़ने में बालकोंको कितनी कठिनाइयां पड़ती हैं, यह सभी मातापिता देखते हैं। इतने कष्टों से विदेशी भाषा जीविका के लिए सीखी जाती है। जीविका के लिए सब कुछ करना पड़ता है। हिन्दी की सेवा करने का हिन्दी का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का आपको अवसर ही नहीं मिलता। इतने पर भी जीविका दूसरी भाषा के द्वारा होते हुए भी दिन रात दूसरी भाषा के पठन-पाठन में जीविका के हेतु लगे रहने पर भी आपको हिन्दी से प्रेम है। अङ्गरेज़ी तो आपका पेट पालती है। हिन्दी क्या देती है ? पर फिर भी आपको उससे प्रेम है। निष्काम प्रेम इसीका नाम है। यही धर्म है, दूकानदारी में और धर्म में इतना ही अन्तर है कि धर्म को लोग केवल धर्म समझकर उपार्जन करते हैं और किसी कामके बदले में किसी वस्तु की इच्छा करना दूकानदारी है। गीता का भी यही मूल मंत्र है। निष्काम होकर कार्य्य करो। जीविकाके लिए हम लोगों को अंग्रेजी क्या पढ़ना पड़ी कि हम लोग अंगरेज़ीमय हो गये। अंग्रेजों से भी बढ़ गये यह सब जीविका के ही लिए हुआ। दुःख तो इस बात पर होता है कि हम अपनी मातृभाषा को भूल से गये। संस्कृत का लोप हो गया उसके लोप होने से हिन्दी का ह्रास हुआ। संस्कृत का थोड़ा बहुत प्रचार होने से बंगाल में बंगाली फिर जागृत हो गयी। पर यहां दूसरी भाषा ही बनी रही। अक्षर भी विदेशी रहे। मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने का मातृभाषा का प्रचार होने का जो सुपरिणाम हो सकता है वह बंगाल से दृष्टिगोचर हुआ, जिस भारत को लोग गिरा हुआ समझते थे उसीके एक बंगालप्रान्त में चालीस पचास संसार में प्रसिद्ध पुरुष हो गये। यहां प्रतिकूल हुआ। देश की ख्याति बड़े आदमियों से होती है, बड़े आदमी बड़े विचार से होते हैं। विदेशी भाषा में बड़े विचार नहीं होते हैं। इमरसन Emerson कहता है कि प्लेटो Plato से बढ़ कर किसी ने नहीं कहा है—इतिहासकार फ्रीमैन Freeman ने लिखा है कि ग्रीस से संसार की सभ्यता का आरम्भ हुआ। उन्हें नहीं मालूम था कि जिस समय संसार को अन्य जातियां पड़ी सो रही थीं, उस समय भी भारत अत्यन्त उन्नतावस्था में था, शब्दशास्त्र के प्रमाण से सिद्ध होता है कि हम लोग उस समय

थे। हम लोग सभ्यता का आरम्भ यहीं से मानते हैं, हमारी शब्दावली की धातुओं से ग्रीस भाषा की धातुएं मिलती हैं और यह स्पष्ट है कि भारत यूनान से अधिक प्राचीन है; अतः यह स्वयं सिद्ध है कि भारत संसार भर में एक देश है, जो प्राचीनता में श्रेष्ठ है और जिससे अन्य देशों ने शिक्षा ली पर उसकी उन्नति तभी तक रही जब तक मातृभाषा का आश्रय रहा। मातृभाषा की उन्नति करने से ही कोई देश उन्नत हो सकता है। यूनान देश के सब से बड़े कवि होमर ने अपना Iliad ग्रीक भाषा में ही लिखा, इसी लिए वह इतना सर्वोत्कृष्ट काव्य लिख सका और संसार में उसकी ख्याति हुई। बंगालियों ने उर्दू को अपने देश से निकाल कर अपनी मातृभाषा का आश्रय लिया है। बंगाली अपने कामों में बात चीत में लिखने में सदैव बंगाली भाषा का व्यवहार करते हैं, यही कारण है कि वे लोग शीघ्रता से उन्नति करते हुए चले जा रहे हैं। इसके विपरीत हमारी दशा रही है, पर कुछ भी हो, आप लोगों का यह समारोह देख कर हमारे आनन्द का पारावार नहीं है। फिर मैं वही कहूँगा कि अपनी मातृभाषा से निष्काम प्रेम करने के कारण आप लोग धन्य हैं।

जोशी जी की मौखिक वक्तृता समाप्त होने के अनन्तर सम्मेलन के प्रधान मंत्री बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन ने बाबू श्यामसुन्दर दास के सभापति होने का प्रस्ताव उपस्थित किया। सम्मेलन लाहौर में न होकर प्रयाग में क्यों हुआ इसका भी कारण उन्होंने अपनी वक्तृता में बतलाया, उनकी वक्तृता का सारांश यह है :—

"सज्जनो :—

आज यह हमारा छठा सम्मेलन है इसके पूर्व सम्मेलन के क्रमशः काशी, प्रयाग, कलकत्ता, भागलपुर, लखनउ में पांच अधिवेशन हो चुके, इन सब सम्मेलनों में लखनउ का सम्मेलन सब से अधिक समारोह के साथ हुआ; किन्तु सम्मेलन के इतिहासमें हमारा यह छठा सम्मेलन विशेष प्रकार से स्मरणीय रहेगा। यह सम्मेलन दो कारणों से ऐतिहासिक है, एक तो यह कि कई बाधाओं के बाद आज यह सम्मेलन हो रहा है और वास्तव में जैसी पवन उपस्थित थी वैसी दशा में इसका होना कठिन प्रतीत होता था। दूसरा कारण इस सम्मेलन के सभापति महोदय हैं जिनके सम्बन्ध में मैं प्रस्ताव करने के लिये उपस्थित हुआ हूँ—इस समय तक हमारे सम्मेलनों के सभापति ऐसे सज्जन होते रहे हैं जो अपनी साहित्यसेवा, विद्या में तथा अवस्था में सभी प्रकार से वृद्ध थे और जिन्हें अपनी पिछली निष्कारण हिन्दी सेवा के कारण ही यह सम्मान प्राप्त हुआ था। पर इस सम्मेलन के सभापति इस समय भी साहित्य क्षेत्रके सिपाही हैं अर्थात् ये हमी लोगों के साथ काम करनेवालों में से एक हैं। इन्हीं दो कारणों से हमारा यह सम्मेलन ऐतिहासिक है। अस्तु—इस समय यह बतला देने की भी अत्यन्त आवश्यकता है कि सम्मेलन जिसकी पूरी पूरी तैयारी लाहौर में हो चुकी थी, लाहौर में न होकर प्रयाग में क्यों हुआ जिस समय लखनउ के सम्मेलन को आगामी वर्ष के लिए लाहौर में निमन्त्रण दिया गया, उस समय सम्मेलन में उपस्थित मातृभाषा प्रेमियोंने इस निमन्त्रण को बहुतही हर्ष के साथ स्वीकार किया था, जहाँ उर्दू का अखंड राज हो ऐसे प्रान्त में हिन्दी का झंडा खड़ा किया जायगा। ऐसा कौन हिन्दी सेवी होगा जो इस समाचार से प्रसन्न न होता। महात्मा मुंशीरामजी के सुपुत्र श्रीहरिश्चन्द्रजी ने अत्यन्त ओजस्विनी भाषा में पञ्जाब की ओर से सम्मेलन को निमन्त्रण दिया, निमंत्रण के सम्बन्ध में जो तार आया था उससे स्पष्ट था कि निमंत्रण दाताओंमें लाहौर के बड़े नेता सम्मिलित हैं, इससे लाहौर के अधिवेशन के सम्बन्ध में

बड़ीर आशाओंका होना स्वाभाविक ही था किन्तु लखनउ के सम्मेलन होने के कुछ महीनों बाद ही प्रगट होने लगा कि श्रीयुत् हरिश्चन्द्र जी के विलायत चले जाने के कारण सम्मेलन की सफलता में संदेह हो गया। लाहौर के निर्मंत्रण दाताओं में से कोई एक सज्जन भी यदि कार्य्य करने पर तत्पर होते तो सम्मेलन सफलता पूर्वक होता, किन्तु मुझको खेद के साथ कहना पड़ता है कि आरम्भ से ही निमंत्रणदाताओं ने अपने दायित्व की ओर उदासीनता दिखाई, सम्मेलन के नियमावली के अनुसार लखनउ के सम्मेलन के तीन महीने के भीतर स्वागतकारिणी सभा बन जानी चाहिए थी किन्तु लाहौर में आठ मास के बाद स्वागतकारिणी सभा बहुत कठिनता से बन पाई।

पञ्चम सम्मेलन नवम्बर सन् १४ में हुआ था एप्रिल सन् १५ के अन्त में मेरा लाहौर जाना हुआ— वहां मैं लाला हंसराज, मुंशी रोशन-लाल, लाला गोपाल दास और अन्य कई सज्जनों से मिला।

लाहौर से उस समय दो हिन्दी पत्र निकलते थे उनके सम्पादकों से मिला। यह निश्चय हुआ कि दो ही तीन दिन में एक आपस की कमेटी की जायगी और फिर सर्व साधारण की सभा कर उसमें स्वागतकारिणी सभा का सङ्गठन किया जायगा। मैं कार्यवश लाहौर में अधिक ठहर नहीं सकता था–चला आया किन्तु वहां फिर भी स्वागतकारिणी सभा का सङ्गठन न हुआ और जिन लोगों ने सम्मेलन को निमंत्रण दिया था वे उदासीन हो रहे। जब यह देखा गया कि जुलाई मास के अन्त तक लाहौर में स्वागतका-रिणी सभा नहीं बनी, तब स्थायी समिति के कार्यालय से जबलपुर और खण्डवा के हिन्दी-प्रेमियों को लिखा गया कि वे मध्यप्रदेश में आ-गामी सम्मेलन करने के लिए तैयार रहें। यह कहते मुझे हर्ष होता है कि मध्य प्रदेशके सज्जनों ने उत्साह से षष्ठसम्मेलन का अपने यहां करना स्वीकार कर लिया। लाहौर वालों की उदासी-नता देखकर जबलपुर के सज्जन तैयार तो हो गये किन्तु फिर उद्योग यही किया गया कि जहाँ तक संभव हो सम्मेलन लाहौर में ही हो।

लाहौरवालों को फिर तार दिया कि स्वागतकारिणी सभा के सङ्गठन का तुरन्त प्रबन्ध करें और यदि वे सम्मेलन अपने यहां नहीं कर सकते तो वैसा उत्तर दें, जिसमें अन्य स्थान में सम्मेलन करने का उद्योग किया जाय। इस पर वहां से सूचना आई कि हम सम्मेलन करेंगे और स्वागत-कारिणी समिति का सङ्गठन भी कर रहे हैं। इस प्रकार लाहौर में अगस्तमास में स्वागत-कारिणी सभा का संगठन हुआ। स्थायी समिति के १२ अगस्त सन् १५के अधिवेशन जबलपुर और लाहौरके तार और पत्र उपस्थित किये गये और यह निश्चय हुआ कि जहां तक संभव हो लाहौर में ही अधिवेशन करने का यत्न किया जाय। नियमानुसार सभापति के निर्वाचन की सूचना निर्वाचन तिथि के दो मास पूर्व दी गई और ताः २४ अक्टुबर सन् १६१५६ ई० को स्थायी समिति के अधिवेशन में सभापति के आसन के लिए पांच सज्जनों की सूची बनाई गई और तारद्वारा स्वागत कारिणी सभा के पास भेजी गई। आप लोगों को मालूम है कि षष्ठ सम्मेलन का समय स्थायी समिति ने पहिले मुहर्रम में निश्चित किया था। इतनी देर में स्वागत कारिणी सभा बनने के कारण सभी कार्य्यों के लिए समय थोड़ा रह गया था इसीलिये कार्यकर्ताओं का प्रायः यही विचार था कि सम्मेलन बड़े दिन की छुट्टियों में किया जाय, जिसमें स्वागतकारिणी सभा को सब कार्य ठीक रीति से करने का समय मिल जाय, किन्तु बार बार लिखने पर भी

स्वागतकारिणी सभा के मंत्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा का यही अनुरोध रहा कि सम्मेलन मुहर्रम में हो और उन्होंने यह सूचना दी कि स्वागतकारिणी सभा का यही मंतव्य हुआ है। इस अनुरोध का ध्यान रखते हुए स्थायीसमिति ने सम्मेलन के लिए मुहर्रम का समय ही निश्चित् किया। जब सम्मेलन को ८, १० दिन रह गये तब तक स्वागतकारिणी सभा कोई सभापति निश्चित न कर सकी। तब स्वागतकारिणी सभा के प्रस्ताव स्थायी समित ने २६, ३० ३१ दिसम्बर १६,१५ ईस्वी की तिथियां बड़े दिन की छुट्टियों में मुहर्रम का समय टाल कर निश्चित की। इस आशा से कि बड़े दिन की छुट्टियों में सफलतापूर्वक सम्मेलन लाहौर में होगा। स्वागत कारिणी समिति के अनुरोध से समय टालना पड़ा, किन्तु फिर भी स्वागत कारिणी सभा के कार्य में कुछ उत्साह न दिखाई पड़ा और अन्ततक फिर भी लाहौर के सज्जन वहां सभापति के निर्वाचन का प्रश्न तय न कर सके, उनकी इच्छा यह थी कि माननीय पण्डित मदन मोहन मालवीय जी को ही निर्वाचित करें। परन्तु मालवीय जी उक्त निश्चित तिथियों पर न पहुँच सकने के कारण अस्वीकार करते रहे। फिर स्वागतकारिणी सभा के प्रधान मंत्री पं० राजा राम जी का पत्र आया कि सम्मेलन की निश्चित तिथियां हटाकर ३१ दिसम्बर सन् १६१५ और १, २ जनवरी सन् १६१६ई० रक्खी जावें, इन तिथियों पर मालवीय जी का आना संभव होगा। मुझे फिर लाहौर जाना पड़ा और तिथियों के संबन्ध में मैंने स्वागतकारिणी सभा के मुख्य कार्यकर्ताओं से हर प्रकार निवेदन किया कि वह सम्मेलन की तिथियां न टालें क्योंकि एक बार तिथियां टल चुकी हैं और बार बार तिथियां टालना सम्मेलन का उपहास करना है। इससे कार्य में बहुत हानि होगी। मैंने यह भी निवदन किया कि यदि मालवीय जी निश्चत तिथियों पर नहीं आसकते तो स्थायी समिति से निश्चत की हुई सूची में से किसी अन्य सज्जन को सभापति निर्वाचित करें। मैंने स्वयं और प्रयाग के अन्य कार्यकताओं ने इस बात का उद्योग किया कि मालावीय जी निश्चत तिथियों पर सभापति हों, किन्तु मालवीय जी उक्त तिथियों पर लाहौर नहीं पहुँच सकते थे। स्वागतकारिणी सभाने अपनी तिथि टालने के हठ को न छोड़ा और उसने यह सूचना दी कि यदि समय न टाला गया तो सम्मेलन का होना संभव नहीं। इस विषय पर स्थायी समिति के १३ दिसम्बर के अधिवेशनमें बिचार किया गया। लाहौर में जिस प्रकार आरम्भ से ही उदासीनता देखी गई थी और जिस प्रकार वहां के कार्यकर्ताओं ने सम्मेलन के नियमों की अवहेलना की थी इस पर और सब दशाओं पर और आने वालों की सुविधा पर विचार करते हुए स्थायीसमिति पुन: समय परिवर्तन करना और तारीख ३१ दिसम्बर सन् १६१५ ई० तथा १, २ जनवरी सन् १६१६ ई० रखना स्वीकार न कर सकी। अस्तु, सिवाय इसके कि सम्मेलन लाहौर से हटाया जाय और कोई उपाय सम्मेलन करने का दिखाई न दिया। फिर भी एक बार और अवसर देने का फिर बिचार करके स्थायी समिति ने निश्चत किया कि स्वागतकारिणी सभा को सूचना दीजाय कि वह सम्मेलन ता: २६, ३०,३१ दिसम्बर सन् १६१५ को करे। उत्तर ता: १६ तक आजाना चाहिए यदि ता:१६ तब वह इन तिथियों पर सम्मेलन करना निश्चित न करे अथवा कोई उत्तर न दे तो यह तुरन्त प्रकाशित कर दिया जावे कि छठा सम्मेलन प्रयाग में होगा। अस्तु, लाहौर की स्वागतकारिणी सभा को तार दिया गया। किन्तु वह फिर भी अपने

उतर में तिथियों के टालने की बात पर ही अड़ी रही। अन्त को यह प्रकाशित कर ही देना पड़ा कि प्रयाग में ही छठा सम्मेलन पूर्व निर्धारित तिथियों पर अर्थात् २६,३०,३१ दिसम्बर सन् १९१५ ई० को होगा।

सज्जनो, जिस जल्दी में सम्मेलन प्रयाग में किया गया उसमें यह आशा नहीं की जा सकती कि सम्मेलन का सब प्रबन्ध ठीक हो और किसी प्रकार की त्रुटि न हो। हमें सम्मेलन करने के लिये इतना थोड़ा समय मिला है कि हमारे प्रबन्ध में त्रुटियां रहना अनिवार्य्य है। मैं इसके लिये आप लोगों से क्षमा मागता हूं। अब मैं प्रस्ताव करता हूं कि बाबू श्यामसुन्दर दास सम्मेलन के सभापति का आसन ग्रहण करें। हिन्दी संसार के वे इतने सुपरिचित हैं कि उनके सम्बन्ध में अधिक कहने की मुझे आवश्यकता नहीं। यह सब ही जानते हैं कि नागरी प्रचारिणी सभा के वे प्राण हैं यह सम्मेलन भी पहिले पहिल जहां तक मुझे ज्ञात है उन्हीं के विचार से काशी में हुआ था। हिन्दी की अपने लेखों द्वारा और अपनी संगठन शक्ति द्वारा जो उन्होंने सेवा की है उसके लिये हिन्दी प्रेमी उनके कृतज्ञ हैं और रहेंगे। मुझे विश्वास है आप सब लोगों को इस बात पर आनन्द होगा कि आज हम बाबू श्यामसुन्दर दास की अध्यक्षता में इस छठे सम्मेलन का कार्य्य आरम्भ करें।

इस प्रस्ताव का पंडित लक्ष्मीनारायण नागर ने अनुमोदन तथा पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी और रायबहादुर बाबू लालबिहारी लाल जी ने समर्थन किया। बाबू श्यामसुन्दर दास सभापति के आसन पर आसीन हुए और आनन्द की करतलध्वनि से सभा मंडप गूंज उठा सभापति महोदय ने अपनी निम्न लिखित चित्ताकर्षक और विद्वत्तापूर्ण वक्तृता बहुत ही स्पष्ट मधुर और ओजस्वी स्वर में पढ़ कर सुनाई, जिसमें लगभग १ १/२ घंटे लगे

सभापति का भाषण।

प्रिय सज्जनो,

मैं उस आनंद को जो हिन्दी की हितकामना के प्रवाह में निमग्न इस समाज को देख मेरे हृदय में उमड़ रहा है, अपने असमर्थ शब्दों में व्यंजित करने का निष्फल प्रयास छोड़, आप महानुभावों से इसका पूर्ण आभास अपने ही अंतःकरण में देखने का अनुरोध करता हूं; क्योंकि आज का यह अवसर ही ऐसा है कि जो भाव एक का है वही दूसरे का है, जो उद्देश्य एक का है वही दूसरे का है। भावों की इस एकता, विचारों की इस तुली हुई समानता के बीच मुझ में यदि कोई भाव विशेष है तो वह आप सज्जनों, विशेष कर प्रयागस्थ भाइयों के प्रति कृतज्ञता का है, जिनके उत्कृष्ट उत्साह और सात्विक प्रयत्न ने उस खिन्नता को समूल नष्ट करके जो इस वर्ष की आकस्मिक अव्यवस्था देख लोगों के हृदयों में छाने लगी थी, यह आशापूर्ण और मनोरम दृश्य उपस्थित किया है। जिस भांति आज प्रातःकाल आपने मेरा स्वागत किया है उसके लिए कृतज्ञता प्रगट करने की सामर्थ्य मेरे वचनों में नहीं है। मैं उसमें मातृभाषा का सम्मान समझ अपने को कृतकृत्य मानता हूं।

इस बात के कहने की तो आवश्यकता नहीं है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों का बिना किसी प्रकार की रोक टोक या विघ्नबाधा के निरंतर होते रहना कितना प्रयोजनीय है। यद्यपि हिन्दी के अनेक सभा समाज हैं, जो अनेक वर्षों से बराबर हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं और जिनके उद्योग और कार्य-परायणता का संतोषजनक परिणाम

भी अनेक अंशों में देखने में आ चुका है तथापि हिन्दी-साहित्य की पूर्त्ति, हिन्दी भाषा की वृद्धि और देवनागरी अक्षरों के उत्तरोत्तर वर्द्धमान प्रचार के लिए सम्मेलन सी संस्था का अखंड परंपरा के साथ अपने उद्देश्यों के साधन में प्रवृत्त रहना केवल सुसंगत ही नहीं वरन नितान्त आवश्यक भी है। हम लोगों का यह परम कर्तव्य है कि हम प्रतिवर्ष किसी न किसी स्थान में एकत्रित होकर मातृभाषा हिन्दी और गुण-आगरी नागरी के संबंध में अपने आवश्यक कर्त्तव्यों पर विचार करें और भर सक उनके निर्वाह के नए नए मार्ग निश्चित करें और निश्चित मार्गों को सुगम और परिष्कृत करें, सोचकर उनके सफलीभूत करने में अग्रसर हों। जिन जिन स्थानों पर सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन हुए हैं, उन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। उन स्थानों में हिन्दी के सहायकों की संख्या में संतोषजनक वृद्धि हुई है और उनमें किसी न किसी रूप में हिन्दी की चर्चा बराबर चलती ही रहती है। फिर बाहर से आए हुए लोग भी अपने साथ एक नई शक्ति का संचय कर ले जाते हैं और अपने अपने स्थानों में उसका संचार कर अन्य लोगों को भी अपने पथ का पथिक बनाने में समर्थ होते हैं। बहुत अंशों में ईर्ष्या द्वेष वैमनस्य आदि का नाश होकर सौहार्द भाव की स्थापना होती है। ये सब लाभ यदि सम्मेलन से न भी होते हों तो यह क्या कम महत्व की बात है कि प्रतिवर्ष हिन्दी के सैकड़ों सेवक और सहायक एक स्थान में एकत्रित होकर अपनी प्यारी मातृ भाषा के हित-चिंतन में तत्पर होते हैं। यह युग परस्पर मिलकर काम करने का है। सहयोगिता की अमोघ शक्ति का प्रभाव सब के हृदयों पर अंकित हो चुका है और उसका सुमधुर फल अन्य देशों, अन्य संस्थाओं और अन्य कार्य क्षेत्रों में दिखाई देकर लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर चुका है। ऐसी अवस्था में भी यदि हम शिक्षाग्रहण करके, और राष्ट्रीय निर्माण में भाषा के महत्व को स्वीकार करके अपने कर्तव्य कार्यमें तत्पर न हों तो इससे बढ़कर देश और भाषा का दुर्भाग्य और क्या हो सकता है?

गतवर्ष लखनऊ में पांचवे सम्मेलन के अवसर पर जिस समय महाशय हरिश्चन्द्र ने पंजाब के गण्य मान्य लोगों की इच्छा के अनुकूल सम्मेलन को लाहौर में निमंत्रित किया था उस समय भावी सम्मेलन की महत्ता के संबंध में अनेक प्रकार के विचार तरंग हम लोगों के उल्लासपूर्ण हृदयों में उठे थे। हम लोगो ने सोचा था कि जिस पंचनद प्रदेश में हमारे महर्षि पवित्र वेदों के द्वारा अनेक तत्वों का उद्घाटन कर साक्षात्कृतधर्मा कहलाए थे, जहां से आर्य-सभ्यता समस्त भारत भूमि में पल्लवित होकर फैली थी, जहां भारत भूमि के भाग्य का कई बेर निपटेरा हुआ था, जहां कर्मवीर गुरू गोविन्द सिंह ने एक नई शक्ति का संचार कर अन्याय शासन की अस्थिरता प्रमाणित की थी, जहां रणजीत सिंह की धीरता और संघटन शक्ति ने सिक्ख संप्रदाय में वह अदम्य उत्साह और दुर्दमनीय वीरता भर दी थी जिससे इस युग मेंभी भारतमाता का मुख उज्ज्वल और उसकी कीर्ति-कौमुदी चिरस्थायिनी और दिगंतव्यपिनी बनी है और जहां स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मृतप्राय समाज के शरीर में नई संजीवनी शक्ति का संचार कर लोगों को नए उत्साह, नए उद्योग, नए भाव, नए विचार तथा नई अभिलाषाओं का भांडार बनाया था, उसी प्रदेश की राजधानी में हमारा सम्मेलन होगा और हमें अपने उद्योगों और प्रयत्नों में उसकी चिरसंचित शक्तिका अंश प्राप्त होगा तथा आगे के लिए हमारे कार्य की

सीमा विस्तृत होकर विशेषरूप से सुरक्षित और दृढ़ होगी। पर अपने मन कुछ और है, कर्त्ता के मन और। रंग ढंग देख क्रमक्रम से हम लोगों को अपना उत्साह मंद करना पड़ा और अंत में कुछ ऐसे संयोग आ उपस्थित हुए जिनसे सम्मेलन की स्थायीसमिति को यह निश्चय करना पड़ा कि सम्मेलन का छठा अधिवेशन प्रयाग ही में हो। इस स्थान पर यह आवश्यक नहीं है और न नीति संगत ही जान पड़ता है कि हम इस विषय पर कुछ विशेष विचार करें। जो कुछ हुआ वह संयोग वश ही हुआ। अब भी हम इस बात से निराश नहीं हुए हैं कि भविष्यत् में हमें लाहौर में सम्मेलन करने का कभी न कभी सौभाग्य अवश्य प्राप्त होगा।

जिस घटनाचक्र से सम्मेलन का यह अधिवेशन लाहौर में न होकर प्रयाग में हो रहा है उसी ने मुझे इसका सभापति होने के लिये बाध्य किया। आप लोग मुझे क्षमा करेंगे, यह समझकर इस स्थान पर मैं अपने सम्बन्ध में दो चार बातें निवेदन करने का साहस करता हूं। नवम्बर के प्रथम सप्ताह में लाहौर से मुझे तार मिला कि तुम यहां आकर सम्मेलन का सभापति होना स्वीकार करो। मैं उस समय इस आज्ञा के पालन करने में असमर्थ था। यों तो मैं पहले से ही अपने को इस आसन के अनुपयुक्त औ अयोग्य समझता था, पर सभापतित्व के लिये नामांकित अन्य सज्जनों के बीच अपना भी नाम देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ। मैं समझ न सका कि किस विचार से हिन्दी के माननीय मालवीय जी को और मुझे एक ही श्रेणी में गरदान डाला है। अन्य महाशयों की चाहे जो धारणा रही हो पर मैं कभी स्वप्न में भी यह धृष्टता नहीं कर सकता था कि जिस स्थान के लिए वे निर्वाचित हों उसके ग्रहण करने का अनुमान भी करूं। इन्हीं विचारों से मैंने उस पद का ग्रहण करना अस्वीकार किया। जब प्रयाग में सम्मेलन का होना निश्चय हो चुका तब मेरे मित्र पंडित लक्ष्मीनारायण नागर ने मुझे दर्शन देने की कृपा की। उन्होंने सारी व्यवस्था समझा कर कहा कि अब तुम्हारे नहीं करने से काम नहीं चलेगा, यदि तुम अब भी दुराग्रह पूर्वक इस भार को उठाना अस्वीकार करोगे तो इसका स्पष्ट अर्थ यही होगा कि तुम सम्मेलन को एक और भारी धक्का पहुंचाया चाहते हो। बहुत कुछ आगा पीछा विचारने पर यह सिद्धांत ठहरा कि इस समय चुपचाप आज्ञा पालन करने ही में सम्मेलन का हित है यह बात २२ दिसम्बर की है। आज २८ दिसम्बर को मैं आप लोगों के सम्मुख अपना निवेदन उपस्थित करने के लिये खड़ा हूं। अतः यह आशा तो आप कर नहीं सकते कि इस ५, ६ दिन के बीच में मैंने कोई लंबा चौड़ा वक्तव्य प्रस्तुत कर लिया होगा, जिसे आपकी सेवा में उपस्थित करके मैं आप लोगों का मनोरंजन तथा हिन्दी के हित के उपायों का विस्तृत निरीक्षण कर सकूंगा। मुझे आशा है कि इन सब बातों पर ध्यान रखकर और विवशता ही को मेरे इस अनुचित साहस का हेतु मान कर आप लोग मेरी त्रुटियों के लिए मुझे क्षमा प्रदान करेंगे और इस प्रकार मेरी सहायता करेंगे, जिसमें इस अधिवेशन का कार्य सुचारु रूप से संपन्न हो जाय।

महाशयो, यदि आप लोगों ने विचार किया होगा तो आप लोगों को यह बात अवश्य आश्चर्यजनक प्रतीत हुई होगी कि हम ऐसे समय में साहित्य-चर्चा के लिये उपस्थित हुए हैं जब कि युरोप के मुख्य मुख्य राज्य एक भूमंडल व्यापी महाभारत में अपनी अपनी शक्ति एक

दूसरे से भिड़ा रहे हैं और धन जन का मन माना क्षय कर विजय लक्ष्मी को मुग्ध करने की चेष्टा में लगे हुए हैं। जय उसीकी होती है जिसका पक्ष न्याय और सत्य से अनुमोदित होता है। जहाँ अन्याय, अत्याचार दूसरे के वैभव के प्रति ईर्ष्या, अपनी बढ़ती के लिए दूसरों की हानि का संकल्प-ऐसे आसुरी भावों का प्राबल्य है और जहाँ येही समस्त सांसारिक कार्यों के प्रेरक हैं वहाँ चाहे कुछ देर के लिए सफलता के लक्षण दिखाई भी दे जाँय पर अन्त में वे पानी के बुलबुलों की भाँति बिला जाते हैं और संसार में उनका महत्व नहीं रह जाता। यही बात इस बीसवीं शताब्दी के महाभारत में होगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो न्याय के दृढ़ आधार पर खड़ा है उसे चाहे आसुरी आक्रमणरूपी हवा के झकोरे कुछ काल के लिए डाँवा डोल कर दें पर अन्त में वह अपने स्थान पर और भी दृढ़ता से आसन जमा लेगा और भविष्यत् में उसे उस स्थान से हटाना कठिन ही नहीं वरन् असंभव हो जायगा। इस प्रकार हमें दृढ़ आशा है कि अंत में विजय लक्ष्मी मित्र राज्यों को ही अङ्गीकार करेगी और उनकी विजयपताका अविचलभाव से फहरा कर, भूमंडल पर न्याय, साम्य और स्वातंत्र्य का अविचल राज्य स्थापित करेगी। इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमारी जगन्नियंता जगदीश्वर से यही प्रार्थना है कि वह इस महाभारत को शीघ्र समाप्त करे और हमारे राजराजेश्वर को अन्य मित्र राज्यों सहित विजय प्रदान कर संसार का हित करे। मैं पहले कह चुका हूं कि इस भूमण्डलव्यापी महाभारत के समय हमारा साहित्य-चर्चा के लिए एकत्रित होना एक विलक्षण बात है। यह तो सभी लोग जानते और मानते हैं कि इस महायुद्ध के अंत के साथ ही साथ भारतमाता के भाग्य में कुछ हेरफेर होगा। फिर इसमें आश्चर्य की क्या बात है यदि हम इसकी प्रत्येक घटना को ध्यानपूर्वक मनन करें और उससे भविष्यत् में होनेवाली घटनाओं का आभास पाने का उद्योग करें। अतएव हमारे ध्यान का इस ओर आकृष्ट होना उचित ही नहीं वरन् पूर्णतया स्वाभाविक भी है। यह जानकर भी कि हमारे राजराजेश्वर एक ऐसे विकट युद्ध में फँस रहे हैं जिसमें भारतमाता के सपूतों ने भी भीषण वीरता दिखला कर अपने प्राचीन गौरव को और भी स्पष्ट झलकाया है और जिसमें विजय-लक्ष्मी को आलिंगन करने के उद्योग में वे प्राणपण से लगे हुए हैं, जो हम साहित्य चर्चा करने बैठे हैं वह यह दिखाने के लिए कि भारतीय क्या किसी राष्ट्र-निर्माण में साहित्य और सब उपादानों से बढ़ कर नहीं तो किसी से कम नहीं है। ऐसे विकट समय भी हम सब भाँति सुरक्षित हैं और हमें अपने अपने कर्त्तव्यों और विचारों के अनुकूल कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, यह बृटिश शासन की महत्ता और न्यायपरता का पूर्ण निदर्शक है। इसलिये यदि और कारणों से नहीं तो अपने स्वार्थ के विचार से ही हम बृटिश राज्य की विजय की कामना किये बिना नहीं रह सकते।

महाशयो, ईश्वर की सृष्टि विचित्रताओं से भरी हुई है। जितना ही इसे देखते जाइए, इस का अन्वेषण करते जाइए, इसकी छान बीन करते जाइए उतनी ही नई नई श्रृङ्खलाएँ विचित्रता की मिलती जाँयगी। कहाँ एक छोटा सा बीज और कहाँ उससे उत्पन्न एक विशाल वृक्ष! कहाँ एक बिन्दुमात्र पदार्थ और कहाँ उससे उत्पन्न मनुष्य! दोनों में कितना अन्तर और फिर दोनों का कितना घनिष्ट सम्बन्ध! ज़रा सोचिये तो सही, एक छोटे से बीज के गर्भ में

क्या क्या भरा हुआ है। उस नाममात्र के पदार्थ में एक बड़े से बड़े वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति है जो समय पाकर पत्र, पुष्प, फल से सम्पन्न हो, वैसे ही अगणित बीज उत्पन्न करने में समर्थ होता है जैसे बीज से उसकी स्वयं उत्पत्ति हुई थी। कैसे बिन्दुमात्र पदार्थ से मनुष्य का शरीर बनता है, कैसे क्रम क्रम से नवजात बालक के अंग पुष्ट होते जाते हैं, उस में नई शक्ति आती जाती है, उसके मस्तिष्क का विकास होता जाता है, उसमें भावनाएँ उत्पन्न होती जाती हैं और समय पाकर वह उस शक्ति से सम्पन्न हो जाता है जिससे वह अपनी ही सी सृष्टि की वृद्धि करता जाय। फिर एक ही प्रणाली से उत्पन्न अनेक प्राणियों की भिन्नता कैसी आश्चर्यजनक है, कोई बलवान् है तो कोई विचारवान्, कोई न्यायशील है तो कोई अत्याचारी, कोई दयामय है तो कोई क्रूरातिक्रूर कोई सदाचारी है तो कोई दुराचारी, कोई संसार की माया में लिप्त है तो कोई पर-लोक चिन्ता में रत। पर क्या इन विशेषताओं के बीच कोई सामान्य धर्म भी है या नहीं। विचार करके देखिए। सब बातें विचित्र, आश्चर्यजनक और कौतूहल-वर्द्धक होने पर भी किसी शासक द्वारा निर्धारित नियमावली से बद्ध हैं। सब अपने अपने नियमानुसार उत्पन्न होते, बढ़ते, पुष्ट होते और अन्त में उस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं जिसे हम मृत्यु कहते हैं; पर यहीं उनकी समाप्ति नहीं है, यहीं उनका अन्त नहीं है। वे सृष्टि के कार्य-साधन में निरन्तर तत्पर हैं। मर कर भी वे सृष्टि-निर्माण में योग देते हैं। योंही वे जीते मरते चले जाते हैं। इन्हीं सब बातों की जाँच विकासवाद का विषय है। यह शास्त्र हमको इस बात की छान बीन में प्रवृत्त करता है और बतलाता है कि कैसे संसार की सब बातों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में अभि-व्यक्ति हुई, कैसे क्रम क्रम से उनकी उन्नति हुई और किस प्रकार उनकी संकुलता बढ़ती गई। जैसे संसार की भूतात्मक अथवा जीवात्मक उत्पत्ति के सम्बन्ध में विकासवाद के निश्चित नियम पूर्ण रूप से घटते हैं वैसे ही वे मनुष्य के सामाजिक जीवन के उन्नतिक्रम आदि को भी अपने अधीन रखते हैं। यदि हम सामाजिक जीवन के इतिहास पर ध्यान देते हैं तो हमें विदित होता है कि पहले मनुष्य असभ्य वा जंगली अवस्था में थे। वे झुंडों में घूमा करते थे और उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य उदर की पूर्त्ति था, जिसका साधन वे जानवरों के शिकार से करते थे। क्रमशः शिकार में पकड़े हुए जानवरों की संख्या आवश्यकता से अधिक होने के कारण उनको बाँध रखना पड़ा। इसका लाभ उन्हें भूख लगने पर स्पष्ट विदित होगया और यहीं से मानों उनके पशु-पालन-विधान का बीजारोपण हुआ। धीरे धीरे वे पशु-पालन के लाभों को समझने लगे और उनके चारे आदि के आयोजन में प्रवृत्त हुए। साथ ही पशुओं को साथ लिये लिये घूमने में उन्हें कष्ट दिखाई पड़ने लगे और वे एक नियत स्थान पर रह कर जीवन-निर्वाह का उपाय करने लगे। अब कृषि की ओर उनका ध्यान गया। कृषि कर्म होने लगे। गाँव बसने लगे, पशुओं और भूभागों पर अधिकार की चर्चा चल पड़ी। लुहारों और बढ़इयों की संस्थाएँ बन गईं। आपस में लेन देन होने लगा। एक वस्तु देकर दूसरी आवश्यक वस्तु प्राप्त करने का उद्योग हुआ और यहीं मानों व्यापार की नींव पड़ी। धीरे धीरे इन गाँवों के अधिपति हुए, जिन्हें अपने अधिकार को बढ़ाने, अपनी संपत्ति की वृद्धि देने तथा अपने बल को पुष्ट करने की लालसा उत्पन्न हुई। सारांश यह कि आवश्य-कतानुसार उनके रहन सहन, भाव विचार सब

में परिवर्त्तन हो चला। जो सामाजिक जीवन पहले था वह अब न रहा। अब उसका रूप ही बदल गया। अब नए विधान आ उपस्थित हुए। नई आवश्यकताओं ने नई चीज़ों के बनाने के उपाय निकाले। जब किसी चीज़ की आवश्यकता आ उपस्थित होती है तब मस्तिष्क को उस कठिनता को हल करने के लिये कष्ट देना पड़ता है। इस प्रकार सामाजिक जीवन में परिवर्त्तन के साथ ही साथ मस्तिष्क शक्ति का विकास होने लगा। सामाजिक जीवन के परिवर्त्तन का दूसरा नाम असभ्यावास्था से सभ्यावस्था को प्राप्त होना है अर्थात् ज्यों ज्यों सामाजिक जीवन का विकास, विस्तार और उसकी संकुलता बढ़ती गई त्यों त्यों सभ्यता देवी का साम्राज्य स्थापित होता गया। जहाँ पहले असभ्यता वा जंगलीपन ही में मनुष्य रहते थे वहाँ उन्हें सभ्यतापूर्वक रहना पसन्द आने लगा। सभ्यावस्था सामाजिक जीवन में उस स्थिति का नाम है जब मनुष्य को अपने सुख और चैन के साथ साथ दूसरे के स्वत्वों और अधिकारों का भी ज्ञान हो जाता है। आदर्श सभ्यता वह है जिसमें मनुष्य का यह स्थिर सिद्धांत हो जाय कि "जितना किसी काम को करने का अधिकार मुझे है उतना ही दूसरे को भी है" और उसे इस सिद्धांत पर दृढ़ रखने के लिए किसी बाहरी अंकुश की आवश्यकता न रह जाय। यह भाव जिस जाति में जितना ही अधिक पाया जाता है उतनी ही अधिक वह जाति सभ्य समझी जाती है। इस अवस्था की प्राप्ति, बिना मस्तिष्क के विकास के नहीं हो सकती अथवा यह कहना चाहिए कि सभ्यता की उन्नति और मस्तिष्क की उन्नति साथ ही साथ होती है। एक दूसरे का अन्योन्याश्रय संबंध है। एक का दूसरे के बिना आगे बढ़ जाना या पीछे पड़ जाना असंभव है। दोनों साथ साथ चलते हैं। मस्तिष्क के विकास में सहित्य का स्थान बड़े महत्त्व का है।

वैज्ञानिकों का सिद्धांत है कि आदि जीवन तत्व वा प्राणरस (प्रोटोप्लाज़्म) का एक टुकड़ा जिसे हम आदिजीव वा जीवाणु (प्रोटोज़ोआ) कह सकते हैं, पहिले अपने सब अंगों से सब कार्य करता है। वह शरीर के प्रत्येक भाग से देख, सुन, सूंघ और चल सकता है, पर धीरे धीरे वह ज्यों ज्यों विशेष भागों से विशेष कार्य लेने लगता है त्यों त्यों उनके विषय रूप बाह्य पंचभूतों का प्रभाव उन भागों का रूप परिवर्त्तित करने लगता है। जिस भाग से देखने का कार्य विशेष रूप से लिया जाने लगा उस पर प्रकाश की लहरें निरंतर पड़कर उसे उनकी उत्तेजना के लिये संवित बनाने लगीं। इस प्रकार धीरे धीरे चक्षुरिन्द्रिय का आविर्भाव हुआ। इसी ढंग से अन्य इंद्रियों और अवयवों का प्रादुर्भाव हुआ और प्राकृत अवस्था के अनुकूल मानव शरीर की सृष्टि हुई जो क्रम क्रम से उन्नति करता हुआ उस अवस्था को प्राप्त हुआ जिसमें आज कल हम उसे पाते हैं। जीव-सृष्टि के आदि में सब आरंभिक जीव समान ही थे पर सब ने एक सी उन्नति न की। प्राकृतिक स्थिति के अनुकूल जिसकी जिस विषय की ओर विशेष प्रवृत्ति रही उस पर इसीकी उत्तेजना का अधिक प्रभाव पड़ा। अन्त में प्रकृति देवी ने जैसा कार्य देखा वैसा ही फल भी दिया। जिसने जिस अवयव से कार्य लिया उसके उसी अवयव की पुष्टि और वृद्धि हुई। जिसने कुछ काम न लिया वह अवनत दशा में ही रह गया। यही कारण सृष्टि की विभिन्नता और विचित्रता का वैज्ञानकों ने निर्धारित किया है। ठीक यही अवस्था साहित्यरूपी उत्तेजना से सामाजिक मस्तिष्क की होती है। जैसे भौतिक

शरीर की स्थिति और उन्नति बाह्य पंचभूतों के कार्यरूप प्रकाश, वायु, जलादि की उपयुक्तता पर निर्भर है वैसे ही समाज के मस्तिष्क का बनना बिगड़ना साहित्य की अनुकूलता पर अवलंबित है अर्थात् मास्तिष्क के विकास और वृद्धि का मुख्य साधन साहित्य है।

सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिए जो भावसामग्री निकालकर समाज को सौंपता है उसीके संचित भांडार का नाम साहित्य है। अतः किसी जाति के साहित्य को हम उस जाति की सामाजिक शक्ति या सभ्यता का निर्देशक कह सकते हैं। वह उसका प्रतिरूप प्रतिछाया या प्रतिबिंब कहला सकता है। जैसी उसकी सामाजिक अवस्था होगी वैसा ही उसका साहित्य होगा। किसी जाति के साहित्य को देखकर हम यह स्पष्ट बता सकते हैं कि उसकी सामजिक अवस्था कैसी है। वह सभ्यता की सीढ़ी के किस डंडे तक चढ़ सकी है। साहित्य का मुख्य उद्देश्य विचारों के विधान तथा घटनाओं की स्मृति को सुरक्षित रखना है। पहले पहल अद्भुत बातों के देखने से जो मनोविकार उत्पन्न होते हैं उन्हें वाणी द्वारा प्रदर्शित करने की स्फूर्त्ति होती है। धीरे धीरे युद्धों के वर्णन, अद्भुत घटनाओं के उल्लेख और कर्मकांड के विधानों तथा नियमों के निर्धारण में वाणी का विशेष स्थायीरूप में उपयोग होने लगता है। इस प्रकार वह सामाजिक जीवन का एक प्रधान अंग हो जाती है ? एक विचार को सुन या पढ़कर दूसरे विचार उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार विचारों की एक शृंखला बंध जाती है जिससे साहित्य के विशेष विशेष अंगों की सृष्टि होती है। मस्तिष्क को क्रियमाण रखने तथा उसके विकास और वृद्धि में सहायता पहुंचाने के लिए साहित्य रूपी भोजन की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार का यह भोजन होगा वैसी मस्तिष्क की स्थिति होगी। जैसे शरीर की स्थिति और वृद्धि के लिए अनुकूल आहार की अपेक्षा होती है। उसी प्रकार मस्तिष्क के विकास के लिए साहित्य का प्रयोजन होता है। मनुष्य के विचारों में प्राकृतिक अवस्था का बहुत भारी प्रभाव पड़ता है। शीतप्रधान देशों में अपने को जीवित रखने के लिए निरंतर परिश्रम करने की आवश्यकता रहती है। ऐसे देशों में रहने वाले मनुष्यों का सारा समय अपनी रक्षा के उपायों के सोचने और उन्हीं का अवलंबन करने में बीत जाता है। अतएव क्रम क्रम से उन्हें सांसारिक बातों से अधिक ममता होजाती है और वे अपने जीवन का उद्देश्य सांसारिक वैभव प्राप्त करना ही मानने लगते हैं। जहां इसके प्रतिकूल अवस्था है वहां आलस्य का प्राबल्य होता है। जब प्रकृति ने खाने पीने पहनने ओढ़ने का सब सामान प्रस्तुत कर दिया तब फिर उसकी चिन्ता ही कहाँ रह जाती है। भारत-भूति को प्रकृति देवी का प्रिय और प्रकांड क्रीड़ाक्षेत्र समझना चाहिये। यहां सब ऋतुओं का आवागमन होता रहता है। जल की प्रचुरता है। भूमि इतनी उर्वरा है कि सब कुछ खाद्य पदार्थ यहाँ उत्पन्न हो सकते हैं। फिर इनकी चिंता यहाँ के निवासी कैसे कर सकते हैं। इस अवस्था में या तो सांसारिक बातों से मन हटकर जीव, जीवात्मा और परमात्मा की ओर लग जाता है अथवा विलास प्रियता में फँस कर इंद्रियों का शिकार बन बैठता है। यही मुख्य कारण है कि यहाँ का साहित्य धार्मिक विचारों या शृंगार रस के काव्यों से भरा हुआ है। अस्तु

जो कुछ मैंने अब तक निवेदन किया है उससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मनुष्य

की सामाजिक स्थिति के विकास में साहित्य का प्रधान योग रहता है। यदि संसार के इतिहास की ओर हम ध्यान देते हैं तो हमें यह भली भाँति विदित होता है कि साहित्य ने मनुष्यों की सामाजिक स्थिति में कैसा कुछ परिवर्त्तन कर दिया है। पाश्चात्य देशों में एक समय धर्म संबंधी शक्ति पोप के हाथ में आगई थी। माध्यमिक काल में इस शक्ति का बड़ा दुरुपयोग होने लगा। अतएव जब पुनरुत्थान ने वर्तमान काल का सूत्रपात किया और युरोपीय मस्तिष्क स्वतंत्रता देवी की आराधना में रत हुआ तब पहला काम जो उसने किया वह धर्म के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करना था। इसका परिणाम यह हुआ कि युरोपीय कार्यक्षेत्र से धर्म का प्रभाव हटा और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की लालसा बढ़ी। यह कौन नहीं जानता कि फ्रांस की राज्यक्रांति का सूत्रपात रूसो और वालटेयर के लेखों ने किया और इटली के पुनरुत्थान का बीज मेज़नी के लेखों ने बोया। भारतवर्ष में भी साहित्य का प्रभाव इसकी अवस्था पर कम नहीं पड़ा। यहाँ की प्राकृतिक अवस्था के कारण सांसारिक चिन्ता ने लोगों को अधिक न ग्रसा। उनका विशेष ध्यान धर्म की ओर ही रहा। जब जब उसमें अव्यवस्था और अनीति की वृद्धि हुई नए विचार और नई संस्थाओं की सृष्टि हुई बौद्ध धर्म और आर्य समाज का प्राबल्य और प्रचार ऐसी ही स्थिति के बीच हुआ। इसलाम और हिन्दू धर्म जब परस्पर पड़ोसी हुए, तब दोनों में से कूपमंडूकता का भाव निकालने के लिए कबीर, नानक आदि का प्रादुर्भाव हुआ। अतः यह स्पष्ट है कि मानव जीवन की सामाजिक गति में साहित्य का स्थान बड़े गौरव का है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिस सहित्य के प्रभाव से संसार में इतने उलट फेर हुए हैं, जिसने युरोप के गौरव को बढ़ाया, जो मनुष्य-समाज का हित विधायक मित्र है, वह क्या हमें राष्ट्र-निर्माण में सहायता नहीं दे सकता, क्या हमारे देश की उन्नति करने में हमारा पथ-प्रदर्शक नहीं हो सकता? हो अवश्य सकता है यदि हम लोग जीवन के व्यवहार में उसे अपने साथ साथ लेते चलें, उसे पीछे न छूटने दें। यदि हमारे जीवन का प्रवाह एक ओर जा रहा है और हमारे सहित्य का प्रवाह दूसरी ओर को है तब तो हमारा उसका प्रकृत संयोग ही नहीं हो सकता।

अब तक जो वह हमारा सहायक नहीं हो सका है, इसके दो मुख्य कारण हैं। एक तो इस विस्तृत देश की स्थिति एकांत रही है और दूसरे इसके प्राकृतिक विभव का वारापार नहीं है। इन्हीं कारणों से इसमें संघशक्ति का संचार जैसा चाहिए नहीं हो सका है और यह अब तक आलसी और सुखलोलुप बना हुआ है, परंतु अब इन अवस्थाओं में परिवर्त्तन हो चला है। इसके विस्तार की दुर्गमता और स्थिति की एकांतता को आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों ने एक प्रकार से निर्मूल कर दिया है और प्राकृतिक वैभव का लाभालाभ बहुत कुछ तीव्र जीवन संग्राम की सामर्थ्य पर निर्भर है। यह जीवन-संग्राम दो भिन्न सभ्यताओं के संघर्षण से और भी तीव्र और दुःखमय प्रतीत होने लगा है। इस अवस्था के अनुकुल ही जब सहित्य उत्पन्न होकर समाज के मस्तिष्क को प्रोत्साहित और प्रतिक्रियमाण करेगा तभी वास्तविक उन्नति के लक्षण देख पड़ेंगा और उसका कल्याणकारी फल देश को आधुनिक काल का गौरव प्रदान करेगा।

अब विचारणीय यह है कि वह साहित्य

किस प्रकार का होना चाहिये जिससे कथित उद्देश्य की सिद्धि हो सके ? मेरे विचार के अनुसार इस समय हमें विशेष कर ऐसे साहित्य की आवश्यकता है, जो मनोवेगों का परिष्कार करनेवाला, संजीवनी शक्ति का संचार करनेवाला, चरित्र को सुंदर साँचे में ढालने वाला तथा बुद्धि को तीव्रता प्रदान करनेवाला हो। साथ ही इस बात की भी आवश्यकता है कि यह साहित्य परिमार्जित, सरस और ओजस्विनी भाषा में तैयार किया जाय। इसको सब लोग स्वीकार करेंगे कि ऐसे साहित्य का हमारी हिन्दी भाषा में अभी तक बड़ा अभाव है पर उसके शुभ लक्षण चारो ओर देखने में आ रहे हैं और यह दृढ़ आशा होती है कि थोड़े ही दिनों में उसका उदय दिखाई पड़ेगा जिससे जन-समुदाय की आँखे खुलेंगी और भारतीय जीवन का प्रत्येक विभाग ज्ञान की ज्योति से जग मगा उठेगा।

पर क्या यह प्रश्न नहीं किया जा सकता कि इस बात की क्या आवश्यकता है कि ऐसे साहित्य के उत्पादन का उद्योग हिन्दी ही में किया जाय ? क्या अन्य भारतीय देशभाषाओं में इसका सूत्रपात नहीं हो चुका है और क्या उनसे हमारा काम न चलेगा ? मेरा दृढ़ विश्वास है कि समस्त भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही ऐसी है जो मातृभूमि की सेवा के लिये सर्वथा उपयुक्त है और जिससे सबसे अधिक लाभ की आशा की जा सकती है। गुजराती, मराठी, बँगला आदि भाषाओं का आधुनिक साहित्य हमारी हिन्दी के वर्तमान साहित्य से कई अंशों में भरा पूरा है, पर उनके प्राचीन साहित्य की तुलना हिन्दी के पुराने साहित्य-भांडार से नहीं हो सकती, इस कारण उन्हें परम्परा की प्राचीनता का गौरव प्राप्त नहीं है। जैसे किसी जाति के अभ्युत्थान में उसके प्राचीन गौरवान्वित इतिहास का प्रभाव अतुलनीय है वैसे ही भाषाओं को क्षमता प्रदान करने में उसके प्राचीन पम्परा का बल भी अत्यंत प्रयोजनीय है। किसी लेखक ने बहुत ठीक कहा है कि इतिहास का मूल्य स्वतंत्रता से भी बढ़ कर है। स्वतंत्रता खोकर भी हमें इतिहास की रक्षा करनी चाहिए; क्योंकि इतिहास के द्वारा हम स्वतंत्रता फिर पा सकते हैं पर स्वतंत्रता के द्वारा खोए हुए इतिहास को हम फिर नहीं प्राप्त कर सकते। जिन जातियों का प्राचीन इतिहास नहीं है, जिन्हें अपनी प्राचीनता और पूर्वगौरव का अभिमान नहीं है वे या तो शीघ्रही निर्मूल हो जायँगी अथवा अपनी जातीयता के सारे लक्षण खो बैठेंगी। पर जिनका इतिहास वर्तमान है जिनको अपने पूर्वजों का गौरव है जो अपनी जननी जन्मभूमि के नाम पर आँसू बहाती हैं वे पददलित होकर भी जीवित रह सकती हैं और फिर कभी अनुकूल अवसर पाकर अपना सिर उँचा कर सकती हैं। ठीक यही अवस्था भाषाओं के प्राचीन भांडार की है।

दूसरा गुण जो हिन्दी में और भाषाओं की अपेक्षा अधिक पाया जाता है, वह यह है कि इसका विस्तार किसी प्रान्त वा स्थान की सीमा के भीतर बद्ध नहीं है। इसका समस्त भारतभूमि में एक कोने से दूसरे कोने तक थोड़ा बहुत आधिपत्य जमा हुआ है और इसके द्वारा एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त के रहनेवालों से अपने मनोगत भावों को येनकेनप्रकारेण प्रकाशित कर सकते हैं। यदि विचार कर देखा जाय तो राष्ट्रीयता के लिए यह एक आवश्यक गुण है। तीसरा गुण जिसके कारण हिन्दी का स्थान और भाषाओं की अपेक्षा उच्च है, वह उसका अपनी मातामही से घनिष्ट संबंध है। इन सब बातों को देख यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि हिन्दी ही भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा

होने के योग्य है और उसीके द्वारा हमें राष्ट्रनिर्माण में अमूल्य तथा वाञ्छनीय सहायता मिल सकती है। पर वे क्या उपाय हैं जिनसे हिन्दी के इस प्रकार गौरव प्राप्त करने का मार्ग सुगम और सुलभ हो जाय?

मेरी समझ में इन उपायों में सब से पहला स्थान हमें देवनागरी अक्षरों के वर्धमान प्रचार को देना चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पहले की अपेक्षा इस समय नागरी का प्रचार बहुत बढ़ चुका है और दिनों दिन बढ़ता जा रहा है फिर भी उन स्थानों में विशेष सफलता नहीं देख पड़ती जिनमें वह बहुत अधिक वाञ्छनीय है। जब एक ओर हम इस लिपि के नैसर्गिक गुणों की ओर ध्यान देते हैं, जिनकी बड़े बड़े विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और जिनके कारण सारा संसार इसके ग्रहण का पक्षपाती हो सकता है और दूसरी ओर अपने ही देश में उसके समुचित प्रचार में बाधाएँ देखते हैं तो न आश्चर्य करते बनता है न दुःख। इन बाधाओं के कारण कई हैं, जैसे हमारी राजनैतिक स्थिति, स्वार्थान्धता, अनभिज्ञता और दुराग्रह। इनका निवारण एक दिन में नहीं हो सकता पर इसमें संदेह नहीं है कि ज्यों ज्यों इसके गुणों का ज्ञान लोगों को होता जायगा और वे अपने हानि लाभ को समझने लगेंगे त्यों त्यों ये विघ्न बाधाएँ कम होती जायँगी। फिर भी यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि ये विघ्नबाधाएँ साधारण नहीं है और इनके दूर करने में अनवरत परिश्रम की आवश्यकता है। इस संबंध में मैं एक बात कहे बिना नहीं रह सकता। जो लोग इसके गुणों को जानते और इसके प्रचार की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं वे भी जब 'अंतः शाक्ता वहिः शैवाः' के सिद्धांत पर चलने लगते हैं तब यही कहना पड़ता है कि हम लोगों में अभी चरित्र का बड़ा अभाव है। इन लोगों में कपट व्यवहार का आधिक्य देख कर कभी कभी निराशा का अंधकार हृदय पर छा जाता है, पर निश्चय जानिए कि अब सार्वजनिक जीवन सुगम नहीं रह गया है। जो लोग सार्वजनिक कामों में अग्रसर होने का विचार रखते हैं उनको अपने बर्ताव और व्यवहार में बहुत कुछ परिवर्त्तन करना होगा और जन साधारण को अपने साथ लेकर चलना पड़ेगा। अब वह समय नहीं रहा कि लोग भेंड़ बकरियों की तरह हाँके जा सकें।

संयुक्त प्रदेश की अदालतों में नागरी-प्रचार के मुख्य बाधक वकील महाशय हैं। पहले तो अपने मुंशियों की बड़ी चिन्ता रहती है, फिर अपने स्वार्थ के लिए हाकिम की रुचि के ध्यान के आगे सारे हितकर सिद्धांत और विचार हवा हो जाते हैं। रहे कचहरी के अमले। वे भी पुरानी लकीर के फ़क़ीर बनने और अदालत से प्रयोजन रखने वाले लोगों को अपने चंगुल में फँसाये रखने की चिन्ता में रहते हैं। हमारे सामने कई ऐसे गण्य मान्य वकीलों के दृष्टांत भी उपस्थित हैं जिन्होंने सब कुछ कह सुनकर और प्रतिज्ञाबद्ध होकर भी मातृभाषा की सेवा से मुंह मोड़ रखा है। यह सब होने पर भी नागरी का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। देशी राज्यों में भी यह प्रतिदिन अपना उचित स्थान ग्रहण करती जाती है। इस बात को सब लोग जानते हैं और यह गवर्मैंट से भी छिपी नहीं है कि भारतवर्ष भर में देवनागरी अक्षरों से बढ़ कर और किसी अक्षर का प्रचार नहीं है, अतः सिक्कों और नोटों से उनका अलग किया जाना किसी गूढ़ नीति की महिमा है। गवर्मैंट को इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि यदि वह अपनी बहुसंख्यक प्रजा की प्रार्थना पर ध्यान देकर सिक्कों और नोटों में नागरी

का समावेश करेगी तो इससे उसके उदार सिद्धांतों की दृढ़ता प्रकट होगी और जनता के विश्वास की वृद्धि होगी। नागरी का प्रचार यहाँ की दीन प्रजा के पक्ष में अत्यन्त हितकारी है और वह दिन दिन बढ़ता भी जा रहा है। अतः गवर्मेंट का यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वह उसकी गति को सुगम करे और उसके मार्ग की कठिनाइयों को दूर करने में योग दे।

एक और उपाय वाञ्छनीय साहित्य उत्पन्न करने का उपयुक्त प्रणाली पर शिक्षा का विधान है। गत मार्च मास में एक बड़े महत्त्व का प्रश्न भारतीय व्यवस्थापक सभा में उपस्थित किया गया था। माननीय मिस्टर रयंगर ने यह प्रस्ताव किया था कि भारतवर्ष में शिक्षा का माध्यम देशभाषाएँ हों। इस पर माननीय सदस्यों ने जो अपने अपने मत प्रकाशित किये थे उनके पढ़ने से यही विदित होता है कि उन में से अधिकांश महाशयों की सम्मति में शिक्षा का माध्यम देश भाषाओं को बनाने का अर्थ अंग्रेज़ी के पढ़ने लिखने में बाधा उपस्थित कर क्रमशः उसे कम करते जाना और इस प्रकार जातीयता के उद्धार पर कुठाराघात करना है। समझदार लोगों में कोई ही ऐसा होगा जो इस बात को न स्वीकार करता हो कि हमारे जातीयजीवन या राजनैतिक जीवन के लिये अँग्रेज़ी भाषा का जानना परम आवश्यक है। हमें अपने उद्धार के लिए पूर्व और पश्चिम को मिलाना और विचारों के परस्पर परिवर्त्तन और विनिमय से सहायता लेना नितान्त प्रयोजनीय है इसलिए अंग्रेजी शिक्षा का कोई विरोधी नहीं हो सकता, पर अँग्रेज़ी शिक्षा से यह तात्पर्य नहीं है कि हम अपने को भूल जांय और अपनी भाषा का समूल नाश कर अँग्रेज़ी बाना पहन लें। अँग्रेज़ी की शिक्षा प्रारम्भ हुए कोई सवा सौ वर्ष हुए होंगे। इतने काल में १७ लाख अँग्रेज़ी पढ़ लिख सके हैं गवर्मेंट का कथन है कि गत १० वर्षों में अँग्रेज़ी पढ़े लिखे लोगों की संख्या ड्योढ़ी हो गई है। इस हिसाब से भी यदि अँग्रेज़ीशिक्षा की उन्नति, होती जाय तो भी समस्त भारतवर्ष में सब लोगों के अँग्रेज़ी जान लेने में सहस्त्रों वर्षों की आवश्यकता होगी। इसके साथ ही गवर्नमेंट की रिपोर्टों से यह भी विदित होता है कि इस समय–२ करोड़ ६३ लाख ऐसे पढ़े लिखे लोग भारतवर्ष में हैं, जो अँग्रेज़ी बिलकुल नहीं जानते। गत १० वर्षों में इनकी संख्या में २६ लाख की वृद्धि हुई है। दोनों संख्याओं को मिलाने से यह सिद्धान्त निकलता है कि जहाँ अँग्रेज़ी पढ़े लिखे लोग प्रतिवर्ष ५० हज़ार बढ़ते हैं वहाँ देशभाषाओं के जानने वालों की संख्या २ लाख ६० हज़ार बढती है। इससे जहां आधुनिक उन्नति के हिसाब से भी अँग्रेज़ी के पूर्ण प्रचार में हज़ारों वर्षों की आवश्यकता है, वहां देश भाषाओं के प्रचार में कम से कम ५ गुना कम समय लगेगा। देशहितैषी लोग अब स्वयं सोच लें कि दोनों बातों में से कल्याणकर कौन सी बात निज मातृभूमि के लिए होगी। दूसरी बात जो इस सम्बन्ध में विचार करने की है वह यह है कि किसी भाषा के ज्ञानमात्र को शिक्षा नहीं कह सकते। शिक्षा से तात्पर्य मस्तिष्क के विकास का है जो भिन्न विषयों के मनन से होता है। अँग्रेज़ी भाषा के ज्ञान की आवश्यकता को तो हम मानने के लिए पूर्णतया उद्यत हैं, पर हमारी समझ में यह नहीं आता कि इस बात की क्या आवश्यकता है कि हम भारत के मस्तिष्क-विकास के लिए भी एक विदेशीय भाषा का आश्रय ग्रहण करें। इस पद्धति के अनुसार चलने का परिणाम तो यही होगा कि अधिकांश बालकों की सारी आयु एक विदेशीय भाषा की जटिलता के हल करने में लग जायगी, न उनके मस्तिष्क का विकास होने पावेगा और

उन्हें किसी विषयका वास्तविक ज्ञान हो सकेगा। क्या संसार में कहीं का भी आप एक दृष्टांत उद्धृत कर सकते हैं जहां बालकों की शिक्षा विदेशीय भाषाओं द्वारा होती हो। क्या जापान ने अपनी उन्नति विदेशीय भाषा के प्रचार से की, क्या निज मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने के कारण उसके गौरव में, उसके महत्त्व में किसी प्रकार की कमी हुई? यदि ऐसा नहीं हुआ तो भारतवर्ष में इस अनोखे सिद्धांत के अनुकरण करने के लिए क्यों उद्योग किया जाता है। इस प्रांत के कांगड़ी ग्राम में इस बात का ज्वलन्त प्रमाण उपस्थित है कि देशभाषा द्वारा शिक्षा देने में उसके वास्तविकगुणों के अर्जन में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं होती। अतएव मेरा तो यह दृढ़ सिद्धांत है कि भारत का इसी में कल्याण है कि जैसे हो वैसे शिक्षा का भरपूर प्रचार किया जाय और यह शिक्षा देशभाषाओं के द्वारा हो। जो लोग उच्चशिक्षा के अभिलाषी हों उनके लिए अँग्रेज़ी का अभ्यास आवश्यक और सर्वथा उचित है; परन्तु वह भी अन्य वा द्वितीय भाषा के रूप में हो।

भारतीय व्यवस्थापक सभा में इस प्रकार वादविवाद होकर अन्त में यह निश्चय हुआ कि युद्ध के अनन्तर इस विषय पर प्रान्तीय गवर्मेंटों की सम्मति ली जायगी; परन्तु संयुक्त प्रान्त में इस समय मिस्टर रायंगार के प्रस्ताव के अनुसार कुछ अंशों में अँग्रेज़ी स्कूलों का माध्यम देशभाषाएँ बना दी गई हैं। यहां गत जुलाई मास से यह आज्ञा दी गई है कि तीसरी श्रेणी से लेकर आठवीं श्रेणी तक अँग्रेज़ी को छोड़ कर सब विषयों की शिक्षा देशीय भाषाओं द्वारा हो और उन्हीं भाषाओं में विद्यार्थियों की परीक्षा भी हो। इस आज्ञा के पीछे दो नियम भी लगा दिये गए हैं, एक तो यह कि सब विषयों में पारिभाषिक शब्द अँग्रेज़ी के हों और दूसरे यह कि आठवीं श्रेणी के अंत में गणित की परीक्षा अँग्रेज़ी में हो। जो लोग देशभाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्षपाती या समर्थक हैं उन्हें इस आज्ञा से अवश्य आनन्द और संतोष हुआ होगा। अभी इस आज्ञा के अनुसार कार्य होते केवल ६ महीने हुए हैं, इसलिए इसकी अवस्था पर पूरा पूरा विचार करना न संभवही है और न उचित ही। फिर भी दो तीन बातें ऐसी हैं जिन पर अभी से ध्यान दिला देना आवश्यक है। इन प्रांतों में बालकों की मातृभाषा अथवा देश भाषा हिन्दी वा उर्दू मानी जाती है, कुछ विद्यार्थी हिन्दी को ग्रहण करते हैं कुछ उर्दू को। नवीन परिवर्तन के अनुकूल वे सब विषयों का अध्ययन हिन्दी या उर्दू दोनों में से किसी एक के द्वारा कर सकते हैं। यह दोमुंही गंगा बहने से दोनों भाषाओं के पढ़ने वालों को विशेष आपत्ति का सामना करना पड़ता है। अध्यापक यदि हिन्दी का विशेष ज्ञाता हुआ तो वह उसी के द्वारा शिक्षा देता है और यदि उर्दू का ज्ञाता हुआ तो वह उसी भाषा की प्रधानता रखता है। इसके लिए हम उसे दोषी नहीं ठहरा सकते। वह अपने सुभीते पर ध्यान रख कर कार्य करेगा और इसका उसे अधिकार भी है। यद्यपि नियमानुसार प्रत्येक अध्यापक के लिए हिन्दी उर्दू दोनों का जानना उसी प्रकार अनिवार्य रखा गया है जिस प्रकार कि न्यायालयों में मुहर्रिरों के लिए है, पर वास्तविक अवस्था कुछ और ही है। इस अवस्था में कहीं हिन्दी जानने वालों को हानि उठानी पड़ती है, कहीं उर्दू जानने वालों को। अब प्रश्न यह है कि इस आपत्ति का निवारण कैसे किया जाय जिससे हिन्दी उर्दू पढ़नेवालों को सब स्थानों में समान लाभ प्राप्त हो सके। आप लोगों से यह बात छिपी नहीं है कि हमारी

प्रान्तीय गवर्मेंट ऐसी भाषा की पक्षपातिनी है, जो हिन्दी उर्दू दोनों कहला सके और देवनागरी अथवा फ़ारसी दोनों अक्षरों में लिखी जा सके। इस सिद्धान्त के अनुसार गवर्मेंट ने साहित्य की पुस्तकें भी बनवाई हैं जो स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं। गवर्मेंट के इस सिद्धान्त का विरोध हिन्दी-उर्दू दोनों के समर्थकों ने किया था, पर गवर्मेंट अपने सिद्धान्त पर अटल रही। उसने किसी के कहने सुनने की कुछ भी परवाह न की। मेरा तो अभी तक यह दृढ़ सिद्धान्त है कि साहित्य के ग्रन्थों में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग कर गवर्मेंट ने बड़ी भूल की है। इसका स्पष्ट परिणाम यह देखने में आता है कि वर्षों तक विद्यार्थी हिन्दी उर्दू पढ़ते हैं फिर भी उनका सम्यक् प्रवेश अपनी अपनी भाषाओं के भांडार में नहीं होने पाता। वे वर्षों परिश्रम करके भी शुद्ध हिन्दी उर्दू लिखने या बोलने में असमर्थ होते हैं।

एक और बड़ी भूल जो गवर्मेंट ने इस संबंध में की है और जिस पर वह अभी तक जमी हुई है, वह उसकी एकांगदर्शिता है अर्थात् जिसे वह हिन्दी में क्लिष्टता का लक्षण मानती है उसे उर्दू में नहीं मानती, जिस भाषा में तद्भव शब्दों का आधिक्य रहता है वह भाषा सरल मानी जाती है और जिसमें तत्सम शब्द अधिकता से प्रयुक्त रहते हैं वह क्लिष्ट भाषा समझी जाती है। पर क्लिष्टता का यह लक्षण अव्याप्ति दोषग्रस्त है अर्थात् तत्सम शब्दों के अभाव में भी क्लिष्टता आ सकती है। तद्भव शब्दों के होते हुए तत्सम शब्दों के अनावश्यक प्रयोग द्वारा आई हुई क्लिष्टता निस्संदेह अस्वाभाविक और निंदनीय है, पर भाषा की सरलता और कठिनता शब्दावली पर ही नहीं निर्भर है वरन् भावों की गंभीरता, पदों की बनावट, मुहाविरों के प्रयोग और पुरानी घटनाओं अथवा वार्त्ताओं के निर्देश के कारण भी जटिलता आती है जो मस्तिष्क को विस्तृत करने के लिए आवश्यक है। जो पुस्तकें इस समय पढ़ाई जाती हैं उनमें इन गुणों का सर्वथा अभाव है। अस्तु, कहने का तात्पर्य यह है कि गवर्मेंट को अपने सिद्धान्तों पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है। उसे दुराग्रह छोड़ सच्ची बातों को ग्रहण करने में आनाकानी नहीं करनी चाहिए। यह बात तो हुई साहित्य विषयक पाठ्य पुस्तकों की।

हमें यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है कि गवर्मेंट अपने सिद्धान्त का सर्वत्र एकरूप से पालन भी नहीं कर सकी है। इतिहास, गणित, भूगोल, विज्ञान आदि की जो पुस्तकें इस समय प्रचलित हैं उनकी हिन्दी उर्दू में आकाश पाताल का अंतर है। अंग्रेज़ी स्कूलों में तो ऐसी पुस्तकों का प्रचार हुए अभी छ ही महीने हुए हैं पर वर्नाक्युलर स्कूलों में इन विषयों की पुस्तकें उस समय से चली आरही हैं जब से इन विषयों का अध्ययन इन स्कूलों में प्रारंभ हुआ है। परिणाम भी दोनों प्रकार के स्कूलों में वैसाही हुआ है जैसा कि मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूँ। इस विषय पर यहाँ विस्तार से कुछ कहने की इसलिए आवश्यकता है कि इस समय गवर्मेंट नई पुस्तकें बनवा रही है। अतएव यही समय है जब हम गवर्मेंट का ध्यान उसके सिद्धांत की असंगति पर दिला कर उचित प्रणाली के अवलंबन की प्रार्थना कर सकते हैं। जिस त्रुटि का मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ उसका समाधान गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि पुस्तकों के ऐसी भाषा के लिखवाने से हो सकता है जिसे हम हिन्दी और उर्दू दोनों कह सकें और जो देवनागरी या फ़ारसी दोनों प्रकार के अक्षरों में लिखी जा सके। मैं उदाहरण के लिए कुछ अंश नीचे देता हूँ जो इतिहास की प्रचलित पुस्तकों से लिए गए हैं। जो शब्द कोष्ठ में दिए गए हैं

उनका प्रयोग उर्दू की पुस्तकों में हो और जो उसके पहले हैं वे हिन्दी में हों तो दोनों भाषाओं का काम भलीभाँति चल जाय, दोनों की सम्यक् पुष्टि हो और शिक्षक तथा छात्र दोनों में से किसी को किसी प्रकार की कठिनता न उठानी पड़े।

हिन्दुस्तान, उसके पहाड़ और नदियां (दरिया)।

१–हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ा देश (मुल्क) है। इसका एक सिरा एशिया के दक्खिनीय समुद्र में चला गया है। इसकी तीन तरफ़ें हैं। उत्तर की तरफ़ हिमालय पहाड़ का ऊंचा सिलसिला है। पूरब और पच्छिम में समुद्र लहरें मारता है।

२–हिमालय दो शब्दों (लफ़्ज़ों) से बना है। 'हिम' संस्कृत में बर्फ़ को कहते हैं और 'आलय, घर को कहते हैं। इसलिए इसके अर्थ (माने) 'बर्फ़ के घर' के हैं। इसको हिमालय इसी लिए कहते हैं कि इसकी चोटियाँ बारह महीने बर्फ़ से ढकी रहती हैं। यह दुनियां के सब पहाड़ों से ऊंचा है। पहाड़ क्या है एक प्राकृतिक (क़ुदरती) दीवार है जो हिन्दुस्तान को एसिया के दूसरे देशों (मुल्कों) से अलग करती है। इस पहाड़ की चोटियों पर इतनी सर्दी पड़ती है कि वहाँ न आदमी और जानवर जी सकते हैं और न पेड़ उग सकते हैं।

३–अगर इस पहाड़ की उंचाई पूरब के समुद्र से पच्छिम के समुद्र तक सीधी एकसी चली जाती तो पहाड़ी देशों (मुल्कों) से कोई भी हिन्दुस्तान में न आसकता, पर पूरब और पच्छिम दोनों किनारों पर पहाड़ बहुत नीचे हो गए हैं, यहाँ तक कि पहाड़ की जगह सिर्फ़ पहाड़ियाँ रह गई हैं। इन पहाड़ियों के बीच में घाटियाँ हैं जिनको दर्रे कहते हैं। उनमें से होकर लोग आते जाते हैं। ये घाटियाँ कहीं कहीं हज़ारों फुट ऊँची हैं। इनमें अकसर बर्फ़ जमी रहती है।

४–उत्तर पच्छिम की तरफ़ जो पहाड़ियाँ हैं उनका नाम सुलेमान है। इन पहाड़ियों में सब से बड़ा दर्रा ख़ैबर कहलाता है। उत्तर पूरब में पटकोई की पहाड़ी है। हिमालय के पूरबी सिरे और इन पहाड़ियों की बीच से निकल कर ब्रह्मपुत्र नदी (दरिया) दक्खिन में जाती है। उत्तर पूरब में हिन्दुस्तान में आने के जितने रास्ते हैं, वे सब ब्रह्मपुत्रके ही बनाए हुए हैं।

५–हिमालय के दक्खिन में हिन्दुस्तान ख़ास का बड़ा मैदान है। इसमें दो बडी नदियाँ (दरिया) बहती हैं—सिंधु और गंगा। सिंधु पच्छिमी हिस्से को सींचती है। गंगा पूरबी हिस्से की प्यास बुझाती है। इस लम्बे चौड़े देश (मुल्क) दक्खिन में विंध्याचल और सतपुरा पहाड़ हैं। जैसे हिमालय हिंदुस्तान को एसिया से अलग करता है, वैसेही विंध्याचल दक्खिन को हिंदुस्तान ख़ास से अलग करता है।

६–दक्खिन हिंदुस्तान का वह हिस्सा है जो हिंदुस्तान ख़ास के दक्खिन में है। विंध्याचल पहाड़ दोनों के बीच में है। यह पहाड़ पच्छिम की तरफ़ बराबर समुद्र तक चला गया है, पर पूरब में इसकी उँचाई घटती गई है, यहाँ तक कि छोटा नागपुर में एक ऊंची ज़मीन सी रह गई है। हिंदुस्तान ख़ास से दक्खिन में जाने का यही रास्ता है। जो लोग अब दक्खिन में रहते हैं वे पहले इसी रास्ते से आए थे।

७–दक्खिन का देश (मुल्क) पहाड़ियों और नदियों से भरा पड़ा है। पच्छिम में जो पहाड़ हैं वे पच्छिमी घाट और पूरब में जो पहाड़ हैं वे पूरबी घाट कहलाते हैं। पूरबी घाट पच्छिमी घाट से उंचाई में कुछ कम हैं। दक्खिन की क़रीब क़रीब सब नदियाँ (दरिया) पच्छिमी घाट से निकलती हैं और पूरब की तरफ़ बह कर पूरबी घाटों को चीरती हुई समुद्र में जा मिलती हैं। दोनों घाटों और समुद्र के बीच में कुछ नीची ज़मीन है जो उत्तर में बहुत छोटी

रह गई है, पर दक्खिन में उसकी चौड़ाई बहुत है और यहाँ उसे करनाटक का मैदान कहते हैं। उत्तर से दक्खिन में जाने का रास्ता यही नीची जमीन है।

ऊपर जो अवतरण दृष्टान्त की भाँति दिया गया है उसमें केवल शब्दों का हेर फेर है। इतना हेर फेर दोनों भाषाओं के हित तथा दोनों के समर्थकों के संतोष के लिए आवश्यक है।

इस सम्बन्ध में दूसरा विचारणीय विषय पारिभाषिक शब्दों का है। गवर्मेंट ने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि बालकों को पारिभाषिक शब्द अँग्रेज़ी के बताए जाँय, जिसमें आगे चल कर उन्हें अँग्रेज़ी द्वारा उन उन विषयों के अध्ययन में कठिनता न उपस्थित हो। जब तक बालकों की उच्च शिक्षा का माध्यम अँग्रेज़ी है, तब तक उन्हें अँग्रेज़ी पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान अवश्य भविष्यत् में सहायता दे सकेगा और उनका कार्य कुछ सुगम हो जायगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है, पर यहाँ पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि वर्नाक्युलर स्कूलों में क्या किया जाता है? वहाँ तो अँग्रेज़ी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग नहीं होता है। अँग्रेज़ी पढ़नेवालों के सिर पर ही अज्ञानता का यह वज्र क्यों गिराया जाय कि वे अपनी भाषा के द्वीप, केंद्र, वृत्त जज़ीरा, कुतुरा, दायरा आदि शब्दों का बायकाट करें और उनके स्थान पर island, centre, circle आदि शब्दों का ही ज्ञान रक्खें। क्या इसका परिणाम यह नहीं होगा कि आगे चल कर हमारे हिन्दी उर्दू शब्दों का कहीं नाम ही न रह जायगा और उनके स्थान पर हमारे भविष्य लेखकों की भाषा में अंग्रेज़ी शब्द रत्नावली देदीप्यमान होगी। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो इस मत के समर्थक और अनुयायी हैं कि हमारी भाषा में कोई भी विदेशीय शब्द न आने पावें, उसका समस्त भांडार संस्कृत के वा उससे उत्पन्न शब्दों से ही अलंकृत हो। जब एक जाति का दूसरी जाति के साथ संघर्ष होता है तब उनके शब्दों, मनोगत भावों तथा विचारों में परस्पर कुछ न कुछ विनिमय अवश्य होने लगता है। पर वही भाषा शक्तिसंपन्न और सजीव मानी जाती है, जिसे दूसरी भाषा के शब्दों को ग्रहण कर उन्हें अपने रंग में रँगने, अपने ही साँचे में ढालने और उन्हें पूर्णतया अपनाने की सामर्थ्य होती है। अतएव मैं विदेशीय शब्दों के लेने का पक्षपाती हूँ, पर एक ही शर्त पर, वह यह कि पहले उनकी शुद्धि कर ली जाय, तब वे हमारी संप्रदाय में सम्मिलित किए जाँय। पर इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि हम अपने शब्द-भांडार को नष्ट भ्रष्ट कर दें, पहले अपनी संपत्ति खो दें, तब दूसरों से ऋण लेकर अपना काम चलावें। जिस सिद्धान्त पर गवर्मेंट चलना चाहती है, उसमें हिन्दी, उर्दू दोनों भाषाओं का अनिष्ट होगा। अतएव मेरा प्रस्ताव और निवेदन है कि विज्ञान, गणित आदि विषयों की प्रत्येक पुस्तक में पारिभाषिक शब्द तीनों भाषाओं में रहें। मुख्यता तो उस शब्द को दी जाय जो उस भाषा का है जिसमें वह ग्रंथ लिखा है और शेष दोनों शब्द उसी स्थान पर वा फुटनोट में रहें।

तीसरी आपत्ति जिससे हमें बचने की आवश्यकता है वह यह है कि कहीं इस माध्यम के झगड़े में देवनागरी और फ़ारसी अक्षरों का स्थान रोमन अक्षर ग्रहण न कर लें। मैं देखता हूँ कि यह प्रवृत्ति दिनों दिन बढ़ती जाती है कि जहां देवनागरी या फ़ारसी दोनों अक्षरों में प्रश्नों के छापने का काम पड़ता है वहां लोग रोमन से काम ले लेते हैं। यह प्रथा भयंकर परिणामों से परिपूर्ण है और इसका दृढ़तापूर्वक विरोध होना चाहिए।

जब हम भारतीय विश्वविद्यालयों की शिक्षा-प्रणाली की जांच करते हैं और यह जानना चा-

हते हैं कि देशभाषाओं का उन्होंने कितना ध्यान रखा है, तब हमें बड़ी भिन्नता देख पड़ती है। मैं थोड़ी देर के लिए आपको भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों के शिक्षाक्रम का परिचय देकर तब अपना वक्तव्य निवेदन करूँगा।

विश्वविद्यालयों का संबन्ध विशेष कर उच्च अथवा कालेज की शिक्षा से है। इसके लिए उन्होंने एक परीक्षा नियत कर रक्खी है जिसके पास करने पर विद्यार्थी कालेज में पढ़ सकते हैं। उसे मेट्रिकेलुशेन परीक्षा कहते हैं। कलकत्ता और बम्बई विश्वविद्यालयों में मैट्रिकेलुशेन परीक्षा के लिए किसी देशभाषा का अध्ययन अनिवार्य है; परंतु मद्रास, पंजाब और प्रयाग के विश्वविद्यालयों में उसका अध्ययन पढ़नेवाले की रुचि पर छोड़ा गया है—अर्थात् कलकत्ते और बंबई में यह माना जाता है कि इस परीक्षा के लिए देशभाषा का पढ़ना सर्वथा आवश्यक है, पर अन्य तीनों विश्वविद्यालयों में उसकी अनिवार्यता स्वीकार नहीं की जाती। एफ़ ए० की परीक्षा में कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालयों में देशभाषा का ज्ञान अनिवार्य है और परीक्षार्थियों को किसी देशभाषा में एक निबंध लिखना पड़ता है। शेष तीन विश्वविद्यालयों में देशभाषा की शिक्षा इस परीक्षा के लिए अनावश्यक समझी जाती है। डिग्री परीक्षा में कलकत्ता विश्वविद्यालय में देशभाषा में निबंध लिखना अनिवार्य है। मद्रास में इसका अध्ययन विद्यार्थी की रुचि पर छोड़ा जाता है। बम्बई, प्रयाग और पंजाब के विश्वविद्यालयों में देशभाषा का कहीं नाम भी नहीं है। इससे यह विदित होता है कि कलकत्ता विश्वविद्यालय ने देशभाषा की शिक्षा को बहुत उचित स्थान दिया है। बाकी तीनों ने इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। क्या यह आश्चर्य और दुःख की बात नहीं है कि हमारे विद्यार्थी उपाधि-परीक्षा पास कर लें और अपनी मातृभाषा के ज्ञान से वंचित रहें। इस सिद्धान्त की असारता के विषय में मैं पहले निवेदन कर चुका हूँ अतएव उसके यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में मैं आप का ध्यान एक बात की ओर दिलाना चाहता हूँ। सन् १९०२ में जो युनिवर्सिटीज़ कमिशन बैठा था उसने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर बहुत ज़ोर दिया था कि कालिज़-विभाग में देश भाषाओं की शिक्षा अवश्य दी जाय। आगे चल कर गवर्मेंट ने भी इस बात का अनुमोदन किया था। सन् १९०४ में युनिवर्सिटियों का नया क़ानून स्वीकार हुआ था। उसके अनुसार सब विश्वविद्यालयों ने अपने अपने नियमों और उपनियमों को सुधार कर ठीक किया था। उसी समय से कालिज़-विभाग में देश-भाषाओं की शिक्षा की चर्चा ने कुछ ज़ोर पकड़ा। पर इस बात को आज १३ वर्ष हो चुके और अभी तक कलकत्ता और मद्रास के विश्वविद्यालयों को छोड़ और कहीं इस बात का महत्त्व नहीं स्वीकार किया गया।

प्रयाग-विश्वविद्यालय ने पहले मैट्रिकेलुशेन परीक्षा में देश भाषाओं का ज्ञान अनिवार्य रखा था, पर पीछे उसे इस बात का पछतावा हुआ कि ऐसा अनुचित कार्य क्यों बन पड़ा! वह नियम बदल दिया गया। जिस समय इन प्रान्तों का शासनाधिकार सरजानहिवेट के हाथों में था उस समय उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया था कि कालिज़ों की शिक्षा-प्रणाली में देश भाषाओं को उचित स्थान दिया जाय। कई कमेटियाँ इस विषय पर विचार करने के लिए बनाई गईं, पर अब तक कोई सिद्धान्त स्थिर न हो सका। इसका मुख्य कारण यह है कि इस विश्वविद्यालय की एफ० ए० परीक्षा का शिक्षाक्रम ऐसा टेढ़ा रखा गया है कि विद्यार्थियों को अंग्रेजी के अतिरिक्त या तो गणित को अथवा संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं में से किसी एक को अवश्य लेना पड़ता है। बस, उन्हें कुएँ या खाईं का

सामना करना पड़ता है। इस विधान का अभिप्राय यह लक्षित होता है कि जो विद्यार्थी आर्ट-कोर्स लेना चाहें उन्हें संस्कृत या फ़ारसी अवश्य पढ़नी पड़े। मेरी समझ में नहीं आता कि उनके लिए यह व्यवस्था क्यों की गई है, जब कि बी० ए० की परीक्षा में इन प्राचीन भाषाओं का पढ़ना आवश्यक नही है। मेरी समझ में सब से सीधा उपाय इस क्रम को ठीक करने का यह होगा कि एफ ए० की परीक्षा के लिए अंग्रेजी और देश-भाषा का पढ़ना अनिवार्य बनाया जाय और बाकी विषयों में से विद्यार्थियों को अपनी रुचि के अनुकूल दो या तीन को चुन लेने का अधिकार हो। इस प्रकार बी० ए० की परीक्षा में भी देशभाषा का पढना आवश्यक बनाया जाय।

प्रान्तीय कानफरेंस का जो अधिवेशन मेरट में हुआ था उसके सभापति डाक्टर तेज बहादुर सप्रू ने अपने कथन में इस बात पर बहुत ज़ोर दिया था कि एफ़० ए० की परीक्षा उठा दी जाय और उसके स्थान पर मैट्रिकेलुशेन परीक्षा तथा दोनों के लिए एक एक वर्ष की पढ़ाई बढ़ा दी जाय। डाक्टर सप्रू महोदय ने इस विषय में अपने विचार बड़े विस्तार के साथ प्रगट किये हैं। ऐसा जान पड़ा कि गवर्मेंट का ध्यान भी उनके इन विचारों ने आकृष्ट किया है, पर फिर न जाने क्यों इस विषय का विचार दब दबा गया। यदि सप्रू महाशय के विचार के अनुसार शिक्षाक्रम स्थिर हो सके तो बहुत सी बाधाएं दूर हो जाँय और देशभाषाओं की पढ़ाई का मार्ग स्वच्छ और परिष्कृत हो जाय।

अस्तु, अब तो देशभाषाओं के भाग्य का निर्णय संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं की पढ़ाई के कुछ ऐसे कट्टर पक्षपातियों के हाथ में है जो विद्वानों की गिनती में अधिकांश एसे ही लोगों को देखना चाहते हैं जिन्होंने प्राचीन भाषाओं के अध्ययन में अपना बहुत सा समय अवश्य लगाया हो। इन प्राचीन भाषाओं में विद्यार्थियों का प्रवेश पूर्णरूपसे हो, इस कामना के आगे वे इस बात पर ध्यान नहीं देना चाहते कि कोर्स को अधिक वा क्लिष्ट करने से विद्यार्थियों की संख्या घटेगी या बढ़ेगी। ऐसे लोग देशभाषाओं पर कहां तक ध्यान देंगे, ईश्वर ही जाने। मुझे दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी के भाग्य के इस निपटेरे में हिन्दी-वालों को चूँ करने का भी अवसर न दिया जायगा। ठीक भी है, उन्हें अपनी भाषा के सम्बन्ध में बोलने का अवसर क्यों दिया जाय?

महाशयो! मैंने आपका बहुत सा समय शिक्षा का चरखा गाकर नष्ट किया है, पर अब मैं इस सम्बन्ध में एक ही बात और आप से कहूँगा। भारतवर्ष में आधुनिक शिक्षा की उत्पत्ति का मुख्य हेतु यही हुआ कि यहां की गवर्मेंट को अपने काम के लिए अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोगों की आवश्यकता पडी। उसी अभाव की पूर्त्ति के लिए यहां गवर्मेंट ने शिक्षा का कार्य आरम्भ किया। सरकारी नौकरी और शिक्षा का यह अप्राकृतिक सम्बन्ध अब तक चला जा रहा हैं और यही हमारी शिक्षा सम्बन्धिनी आपत्तियों का मूल कारण है। संसार के और किसी देश में यह अनुचित संबंध देखने में नहीं आता। कहीं भी युनिवर्सिटी की परीक्षाएँ सरकारी नौकरी का द्वार खोलने की कुंजी नहीं मानी जाती। जिस समय शिक्षा का उद्देश्य उसके वास्तविक लाभों को फैलाना हो जायगा, उसी समय से हमारी शिक्षा सम्बन्धिनी आपत्तियां दूर हो जायगी। न लोगों के लिए नौकरी ही शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य रह जायगा, न राजनैतिक अवस्था के अनुसार शिक्षा में हेरफेर होगा और न विश्व विद्यालयों को परीक्षार्थियों को अधिक संख्या में अनुत्तीर्ण करने का अभिमान प्राप्त हो सकेगा।

महाशयो! मैं थोड़ी देर के लिए आपका ध्यान हिन्दी के गद्य और पद्य की ओर दिलाना चाहता हूँ। भाषा के इन दोनों अंगों की पुष्टि का प्रयत्न यद्यपि हो रहा है, पर दोनों की गति

समान रूप से व्यवस्थित नहीं दिखाई देती है। गद्य का रूप अब एक प्रकार से स्थिर हो चुका है, उसमें जो कुछ व्यतिक्रम वा व्याघात दिखाई पड़ जाता है वह अधिकांश अवस्थाओं में मत-भेद के कारण नहीं बल्कि अनभिज्ञता के कारण होता है। ये व्याघात वा व्यतिक्रम प्रान्तिक शब्दों के प्रयोग, व्याकरण के नियमों के उल्लंघन आदि के रूप में ही अधिकतर दिखाई पड़ते हैं। इनके लिए कोई मत-सम्बन्धी विवाद नहीं उठ सकता, इनके निवारण के लिए केवल समालोचकों की तत्परता और सहयोगिता की आवश्यकता है। इस कार्य में केवल व्यक्तिगत कारणोंसे समालोचकों को दो पक्षों में नहीं बांटना चाहिए।

गद्य के विषय में इतना कह चुकने पर उसके आदर्श पर थोड़ा विचार कर लेना भी आवश्यक जान पड़ता है। इसमें तो कोई मतभेद नहीं कि जो बोली हिन्दी गद्य के लिए ग्रहण की गई है वह दिल्ली और मेरट प्रान्त की है। अतः शब्दों के रूप लिंग आदि का बहुत कुछ निश्चय तो वहां के शिष्ट-प्रयोग द्वारा ही हो सकता है। जैसे पूरब में दही और हाथी को स्त्रीलिंग बोलते हैं, पर पश्चिम में विशेष कर उक्त प्रान्त में ये दोनों शब्द पुल्लिंग ही बोले जायँगे। अतः हम जो उन्हें पुल्लिङ्ग स्वीकार करते हैं वह इसलिए नहीं कि वे संस्कृत के अनुसार पुं० वा क्लीव होंगे बल्कि इसलिए कि वे पुं० रूप में उक्त प्रान्त में व्यवहृत होते हैं। एक पंडित जी ने अपनी एक पुस्तक में पूरबी और पश्चिमी हिन्दी का विलक्षण संयोग किया है। उनका एक शब्द है— "सूतते हैं।" 'सूतब' क्रिया पूरब की है, उसमें उक्त पंडित जी ने प्रत्यय लगा कर उसे 'सूतते हैं' बनाया। उन्होंने यह ध्यान नहीं दिया कि जिस स्थान में 'आते हैं' 'जाते हैं' आदि बोले जाते हैं वहां 'सोते हैं' बोला जाता है 'सूतते' नहीं। उन्होंने 'ने' विभक्ति पर भी अपनी बड़ी अरुचि दिखाई है, यह नहीं समझा कि वह किस प्रकार क्रिया के कृदंत मूलक रूप के कारण संस्कृत की तृतीया से खड़ी बोली में आई है। कुछ लोग विशेषतः विहार के क्रियाओं के रूपों से लिङ्गभेद उठाने की चर्चा भी कभी कभी कर बैठते हैं। पर वे यदि थोड़ी देर के लिए हिन्दी भाषा की विकास-प्रणाली पर ध्यान देंगे तो उन्हें विदित होगा कि हिन्दी क्रियाओं के रूप संस्कृत के संज्ञा और कृदंत रूपों के सांचे पर ढले हैं जैसे 'करता है' रूप संज्ञाशब्द 'कर्त्ता' से बना है,इसी से स्त्रीलिङ्ग में वह संस्कृत'कर्त्री' केअनुसार 'करती है' हो जाता है।

जैसा कि कहा जा चुका है, यद्यपि हमारे गद्य की भाषा मेरट और दिल्ली प्रान्त की है, पर साहित्य की भाषा हो जाने के कारण उसका विस्तार और और प्रान्तों में भी होगया है, अतः वह उन प्रांतों के शब्दों का भी अभाव पूर्त्ति के निमित्त अपने में समावेश करेगी। यदि उसके जन्मस्थान में किसी वस्तु वा भाव को व्यंजित करने के लिए कोई शब्द नहीं है तो वह दूसरे प्रान्त से जहां उसका शिष्ट समाज वा साहित्य में प्रवेश है, शब्द ले सकती है। पर यह बात ध्यान रखने की है, वह केवल अन्य स्थानों के शब्द-मात्र अपने में मिला सकती है, प्रत्यय आदि नहीं ग्रहण कर सकती।

अब पद्य की शैली पर भी कुछ ध्यान देना चाहिए। भाषा का उद्देश्य यह है कि एक का भाव दूसरा ग्रहण करे और साहित्य का उद्देश्य यह है कि एक का भाव दूसरा ग्रहण करके अपने अंतःकरण में भावों की अनेक रूपता का विकाश करे। ये भाव साधारण भी होते हैं और जटिल भी होते हैं। अतः जो लेख साधारण ही भावों को प्रगट करता हो वह साधारण कहलावेगा चाहे उसमें सारे संस्कृत कोशों को ढूंढ़ २ कर शब्द रखे गए हों और चार चार अंगुल के समास बिछाए गए हों। पर जो लेख ऐसे जटिल भावों को प्रगट करेंगे जो [illegible]
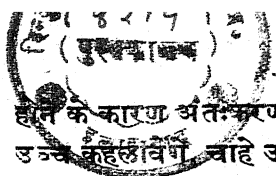
होने के कारण अंतःकरण में जल्दी न धँसेंगे वे उच्च कहलावेंगे, चाहे उनमें बोलचाल के साधारण शब्द ही क्यों न भरें हों। ऐसे ही लेखों से उच्च साहित्य की सृष्टि होगी। जो जनता के बीच नए नए भावों का विकाश करने में समर्थ हो, जो उनके जीवनक्रम को उलटने पलटने की क्षमता रखता हो, वही सच्चा साहित्य है। अतः लेखकों को अब इस युग में वाण और दंडी होने की आकांक्षा उतनी न करनी चाहिए जितनी वाल्मीकि और व्यास होने की, वर्क, कार्लाइल और रस्किन होने की।

कविता का प्रवाह आजकल दो मुख्य धराओं में विभक्त हो गया है। खड़ी बोली की कविता का आरम्भ थोड़े ही दिनों से हुआ है, अतः अभी उसमें उतनी शक्ति और सरसता नहीं आई है, पर आशा है कि उचितपथ के अवलम्बन द्वारा वह धीरे धीरे आ जायगी। खड़ी बोली में जो अधिकांश कविताएँ और पुस्तकें लिखी जाती हैं, वे इस बात का ध्यान रख कर नहीं लिखी जातीं कि कविता की भाषा और गद्य की भाषा में भेद होता है। कविता की शब्दावली कुछ विशेष रंग की होती है, उसके वाक्यों का रूप रंग कुछ निराला होता है। किसी साधारण गद्य को नाना छदों में ढाल देने से ही उसे काव्य का रूप नहीं प्राप्त हो जायगा। अतः कविता की जो सरस और मधुर शब्दावली वृजभाषा में चली आ रही है उसका बहुत कुछ अंश खड़ी बोली में भी रखना पड़ेगा। भाववैलक्षण्य के सम्बन्ध में जो बातें गद्य के प्रसंग में कही जा चुकी हैं, वे कविता के विषय में भी ठीक घटती हैं, बिना भाव की कविता ही क्या! खड़ी बोली की कविता के प्रचार के साथ काव्यक्षेत्र में जो अनधिकार-प्रवेश की प्रवृत्ति अधिक हो रही है वह ठीक नहीं है। मैंने कई नव-युवकों को कविता के मैदान में एक विचित्र ढङ्ग से उतरते देखा है। छात्रावस्था में उन्होंने किसी अँग्रेज़ी रीडर का कोई पद्य उठाया है और कुछ तुकबंदी के साथ उसका अनुवाद करके वे उसे किसी कवि वा लेखक के पास संशोधन के लिए ले गए हैं। कविता के अभ्यास का यह ढंग नहीं है। कविता का अभ्यास आरम्भ करने के पहले अपनी भाषा के बहुत से नए पुराने काव्यों की शैली का मनन करना, रीति ग्रन्थों का देखना, रस अलंकार आदि से परिचित होना आवश्यक है। आज कल बहुत सी कविताएँ ऐसी देखने में आती हैं जिन्हें आप न खड़ी बोली की कह सकते हैं न वृजभाषा की। उनके लेखक खड़ी बोली और वृजभाषा का भेद ही नहीं समझते। वे एकही चरण में एक स्थान पर खड़ी बोली की क्रिया रखते हैं। दूसरे स्थान पर वृज भाषा की आशा है कि ये सब दोष शीघ्र दूर हो जाँयगे और हमारे काव्य का प्रवाह एक सुव्यवस्थित मार्ग का अनुसरण करेगा।

इस प्रकार हिन्दी की गद्यपद्यात्मक प्रवृत्ति की ओर विचार कर हमें यह देखना है कि इस वर्ष में हिन्दी की साधारणतः क्या अवस्था रही।* यह कुछ कम संतोष की बात नहीं है कि हिन्दीभाषा का साहित्य-सम्मत रूप अब उन स्थानों में भी क्रमशः स्वीकृत होता जाता है जहाँ पहले उसका प्रवेश नहीं था। युरोपीय महायुद्ध की ख़बरें जो कुछ काल तक सरकारी प्रेसब्यूरो की ओर से प्रतिसप्ताह प्रकाशित होती थीं उसी भाषा में छपती थीं जिसमें हिन्दी के समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं। विलायत में सरकार की ओर से एक युद्ध-समाचार-पत्र भी इस भाषा में निकलता है जिसका उद्देश्य सैनिकों को समाचार पहुँचाना है। एजुकेशनल गज़ट की भाषा भी सामयिक पत्रिकाओं की भाषा से भिन्न नहीं होती।

---

* इस अंश में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की अंतिम वार्षिक रिपोर्ट से बहुत सा उद्धरण लिया गया है।

क्षत्रिय, वैश्य आदि जातीय सभाओं के प्रभाव से जिनकी कार्रवाईयाँ हिन्दी में होती हैं लोगों को आधुनिक हिन्दी के रूप का ज्ञान होता जाता है। दिहातों तक में जो निमंत्रण पत्रादि बँटते हैं, अब वे सुधरी भाषा में होते हैं। समाचार पत्रों का प्रभाव दिनों दिन बढ़ता जाता है और वर्तमान युरोपीय युद्ध से उनकी उन्नति में कई अंशों में सहायता पहुँची है। साहित्य-सम्मेलन तथा अन्य साहित्य-सभाओं के अधिवेशनों में, स्कूलों तथा कालिजों के छात्रों के योगदान देने से नवशिक्षित युवक-समाज में मातृभाषा के महत्त्व की धारणा दृढ़ होती जाती है। इस विषय में बहुत कुछ प्रभाव उन लोगों का पड़ा है जो अध्यापक हैं या शिक्षा-विभाग से सम्बन्ध रखते हैं। ईश्वर की कृपा से आज दिन अनेक विज्ञ हिन्दी-हितैषी सज्जन शिक्षा-विभाग में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हैं और अपने अनुकरणीय उद्योगों द्वारा हिन्दी का भावी मार्ग विस्तृत और सुगम कर रहे हैं। आर्य-समाज के शिक्षा-प्रचार-सम्बन्धी उद्योगों के प्रभाव से पञ्जाब आदि उदासीन प्रदेशों में भी अपनी देश भाषा और अपने साहित्य को अपनाने की आकांक्षा प्रबल हो रही है। प्रारंभिक शिक्षा के लिए जो सार्वजनिक प्रयत्न हो रहे हैं उनसे भी हिन्दी का हित-साधन हो रहा है। भिन्न भिन्न गवर्मेंट भी अब अच्छे हिन्दी ग्रन्थों का आदर करने लगी है और यदा कदा उनके प्रकाशन में आर्थिक सहायता भी देती है। स्थान स्थान पर हिन्दी-पुस्तकालय बराबर खुलते जा रहे हैं जिनमें पुस्तकों के अतिरिक्त सामयिक-पत्रों का भी प्रबन्ध रहता है। हिन्दी के सभा समाजों तथा पूर्व-स्थापित पुस्तकालय उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ते दृष्टि गोचर होते हैं। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अतिरिक्त प्रान्तीय तथा ज़िला-सम्मेलनों की उत्पत्ति हो रही है। पहला प्रान्तीय सम्मेलन इस वर्ष गोरखपुर में हुआ था; जिस के सभापति परलोक वासी राय देवीप्रसाद जी पूर्ण थे जिनकी विनोदपूर्ण और सरल पर चुभने वाली वक्तृता ने पिछले सम्मेलन में अपूर्व आनन्द और विनोद की वर्षा की थी। अदालतों में भी नागरी का प्रचार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है और देशी राज्य इसे अपना कर अक्षय यश के भागी हो रहे हैं। महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन में थोड़े ही विवाद के उपरांत हिन्दी-राष्ट्र-भाषा स्वीकार की गई थी। गुजराती-साहित्य-सम्मेलन में तो यह निश्चय निर्विवाद ही हो गया। अब उत्तरीय भारत में वंगभाषाभाषियों को ही इस विषय में कुछ आगा पीछा रह गया है। नाटक-मंडलियों में भी जो हिन्दी-भाषा-प्रचार में बड़ी अमूल्य सहायता पहुँचा सकती है, इस ओर प्रवृत्ति होती जा रही है। सारांश यह कि चारों ओर हिन्दी के लिए ऐसे शुभ लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं जिनसे इसका भविष्य बहुत आशामय प्रतीत होता है।

यद्यपि इस वर्ष हिन्दी की पुस्तकें अधिक निकलीं पर साहित्य की पूर्त्ति के लिए जैसी पुस्तकों की आवश्यकता है वैसी पुस्तकों की संख्या अधिक नहीं है। साहित्य की उच्चकोटि की पुस्तकों के दर्शन उत्साही प्रकाशकों के अभाव, उच्च-शिक्षा-प्राप्त लोगों की उदासीनता और विशेष कर पाठकों की न्यूनता के कारण बहुत कम होते हैं। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा, खँडवा की ग्रन्थप्रसारक-मंडली, बम्बई का ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय और ग्वालियर की गोपालकृष्ण मंडली आदि संस्थाएँ उत्तम उत्तम पुस्तकों के प्रकाशन में प्रशंसनीय उद्योग कर रही हैं। सामयिक पुस्तकों में कलकत्ते के बाबू रामलाल वर्मन का 'युरोपीय महायुद्ध सचित्र' अच्छे ढंग से निकल रहा है और हिंदी-साहित्य के अच्छे [illegible]

'रामायणी' कथा भी हिन्दी की उत्तम पुस्तकों में स्थान पाने योग्य है। अन्य पुस्तकें जिनका उल्लेख करने योग्य है और जिनके द्वारा साहित्य-भांडार की पूर्ति हुई है, प्रोफ़ेसर बालकृष्ण का 'अर्थशास्त्र', महाशय इन्द्र वेदालंकार का 'प्रिंस बिस्मार्क', ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'पुरुषार्थ' और 'सफलता', पंडित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी का 'शब्द पारिजात', पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेयी की 'शासन-पद्धति', पंडित श्रीधर पाठक का 'देहरादून' (कविता), विज्ञान-परिषद् का 'ताप' और महाशय चन्द्रमणि विद्यालंकार का 'महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत' आदि हैं। संभव है कि और भी अच्छे ग्रन्थ निकले हों पर वे मेरे देखने में नहीं आए।

सामयिक पत्र और पत्रिकाओं की भी इस वर्ष अच्छी अवस्था रही। दैनिक पत्रों में 'भारत-मित्र', साप्ताहिक पत्रों में 'अभ्युदय' तथा 'पाटलिपुत्र' और मासिक पत्रिकाओं में 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'विज्ञान' और 'इन्दु' हिन्दी के गौरव के कारण हैं। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि अभ्युदय अकाल काल का ग्रास बनते बनते बच गया। 'विज्ञान' ने हिन्दी के बड़े भारी अभाव की पूर्ति की। आशा है यह हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रन्थों के अभाव की पूर्ति के लिये विशेष उत्साह उत्पन्न करने का साधन होगा। सामयिक पत्रों के सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेख के योग्य है। इनमें से कुछ पत्र समय समय पर अपने विशेष अंक निकालते हैं जो बड़े ही सुन्दर और महत्त्वपूर्ण होते हैं। इस वर्ष 'जयाजी प्रताप' और 'प्रताप' के विशेष अंक जो मेरे देखने में आए, बहुत ही अच्छे निकले थे।

साहित्य-सम्मेलन ने जो हिन्दी परीक्षाएँ नियत की हैं उनसे हिन्दी-साहित्य के अध्ययन की प्रणाली बहुत कुछ स्थिर हो गई है और उनके द्वारा हिन्दी की विज्ञता बढ़ाने के लिये लोगों को अच्छा उत्साह मिल रहा है। यह बड़े आनन्द की बात है कि इसके परीक्षार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही है। हमें आशा है कि इसके द्वारा हिन्दी के उच्चकोटि के साहित्य के पठन-पाठन में विशेष सहायता पहुंचेगी और यह हिन्दी के अच्छे अच्छे विद्वान उत्पन्न करने में कृतकार्य होगा। प्रसङ्ग-वश यहां एक बात के निवेदन की धृष्टता करता हूं। मुझे यह देख कर बड़ा दुःख होता है कि वे संस्थाएं भी जिनका हिन्दी-साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं है और जो उसकी वृद्धि और उन्नति में किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करती हैं, हिन्दी-साहित्य-सेवियों को उपाधि प्रदान करने का भार लेने चली हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार के दुस्साहस से उनकी क्या इष्ट-सिद्धि है। उनके मुख्य मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति में जिन महानुभावों ने उनकी सहायता की हो उनका वे जिस प्रकार से चाहें सम्मान करें, पर जहाँ उनका अधिकार नहीं है वहाँ हस्तक्षेप करने की वे कृपा न करें। हिन्दी-साहित्य-सेवियों का सम्मान करने का कार्य हमारे इस सम्मेलन का है और उसे इसी पर छोड़ देना चाहिए। जब यह उचित समझेगा, इस ओर ध्यान देगा।

महाशयो! मैंने अपने विचारों, भावों और आशाओं को आपके सम्मुख उपस्थित करने में आपका बहुत सा समय ले लिया। आप लोग क्षमा करें। अब मैं दो चार वाक्य और कह कर अपने कथन को समाप्त करता हूं। मैं पहले ही आप लोगों से निवेदन कर चुका हूं कि सामाजिक मस्तिष्क के विकास और वृद्धि के लिये साहित्य की कितनी आवश्यकता है। वह साहित्य किस प्रकार का होना चाहिए, उसके साधन क्या हैं और उन साधनों के मार्ग में कौन कौन सी विघ्न बाधाएं उपस्थित हैं जिनका

निराकरण कर हम उपयुक्त साहित्य का भावी मार्ग इस प्रकार विस्तृत और परिष्कृत कर सकते हैं कि वह अपने लक्ष्य पर पहुंचने में समर्थ हो, इन विषयों के संबंध में भी मैं अपने विचार आप लोगों के सम्मुख उपस्थित कर चुका हूं। मुझे अब आप से केवल इतना ही कहना है कि जो कुछ हम करना चाहते हैं वह एक या दो चार व्यक्तियों के करने से पूरा न होगा। उसके लिये हमें अपनी सारी बिखरी हुई शक्तियों को संयुक्त करके उन्हें ऐसी बलवती बनाना पड़ेगा जिसमें फिर उनके मार्ग में कोई वस्तु किसी प्रकार का अवरोध उपस्थित करने में समर्थ न हो। बिखरी हुई शक्ति से कोई बड़ा कार्य सुसम्पन्न नहीं हो सकता और एकत्रित शक्ति का बल ऐसा प्रबल हो जाता है कि उसका सामना करने का साहस किसी को नहीं होता, उसके आगे सारी विघ्न बाधाएं आप से आप लुप्त हो जाती हैं। इस लिये भाइयों, मित्रों, मातृभाषा के सेवकों! संघशक्ति का मूलमंत्र जपें, उसे अपने हृदय पटल पर भली भांति खचित करो, उसी को अपनी आराध्यदेवी समझकर सदा उसकी सहायता के मुखापेक्षी बने रहो, फिर आपको अपने उद्देश्यों को सिद्ध करने में ज़रा भी विलंब न लगेगा। जिस प्रकार छोटी छोटी नदियाँ नाले और अन्य जलप्रवाह सिमिट सिमिट कर एक बड़ी नदी में जा मिलते और उसके वेग को ऐसा प्रबल कर देते हैं कि जिसके आगे सभी रुकावटें तृणवत् छिन्न भिन्न हो उसकी सहगामिनी होती हैं, उसी प्रकार आप अपनी भिन्न भिन्न शक्तियों को साहित्य रूपी सरिता के सबल और संजीवनी-शक्ति-सम्पन्न प्रवाह में सम्मिलित कर उस प्रवाह को घोर निनाद करते हुए राष्ट्रीय समुद्र में ला मिलाइए। फिर देखिए कि किस प्रकार आपकी प्यारी मातृभूमि संसार के समस्त राष्ट्रों में आदरणीय सिंहासन पर विराजने की अधिकारिणी हो जाती है।

क्या आप लोगों ने कभी शुद्ध हृदय से इस बात पर विचार किया है कि माता, मातृभूमि और मातृभाषा का आप पर कुछ ऋण है भी या नहीं? एक जननी आपको जन्म देती है, एक की गोद में खेल कूद कर और खा पीकर आप पुष्ट होते हैं और एक आपको अपने भावों को प्रगट करने की शक्ति दे आपके सांसारिक जीवन को सुखमय बनाती है। जिनका आप पर इतना उपकार है, क्या उनके लिये कुछ करना आपका परम कर्त्तव्य नहीं है? प्यारे भाइयो, उठो, आलस्य को छोड़ो, कमर कसो और अपनी मातृभाषा की सेवा में तत्पर हो जाओ। अपने को मातृ-ऋण से मुक्त करो, संसार में सपूत कहलाओ और मातृ-सेवकों में अपनी छाप छोड़ जाओ। पर ध्यान रहे, यह व्रत साधारण नहीं, इसके व्रती बन कर पार पाना तलवार की धार पर चलने के समान होगा। क्षुद्राशय, दुर्बुद्धि, दुराग्रही, छिद्रान्वेषी, ईर्षालु लोग आपकी निन्दा करेंगे, आपका उपहास करेंगे, आपको बनावेंगे, सब प्रकार से आपको हेय सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे पर आप अपना अटल सिद्धांत यही बनाए रहें कि चाहे हमारी निन्दा हो चाहे स्तुति, चाहे हमारी आज ही मृत्यु हो जाय चाहे हम अभी बरसों तक जिएं, चाहे हमें लक्ष्मी अंगीकार करे चाहे हमारा सारा जीवन दारिद्र्यमय हो जाय पर हमने जो व्रत धारण किया है उससे न हम कभी विचलित होंगे, न कभी पराङ्मुख होंगे और न कभी सर्वस्व खोकर भी अपने किए पर पश्चात्ताप करेंगे। चुप चाप अपने व्रत को पूरा करने का उद्योग करते जाइए। अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ बने रहिए, अपने धर्म का पालन करने में अग्रसर होते जाइए, निश्चय जानिए आपकी विजय होगी,

आपके उद्योग सफल होंगे और अंत काल में आपको यह संतोष होगा कि जगन्नियन्ता जगदीश्वर ने जो आपको मनुष्य-शरीर दिया था उसका उचित उपयोग करने में आप समर्थ हुए हैं और मातृभाषा की सेवा कर आप इससे उऋण हो सकते हैं।" (देर तक करतलध्वनि)

सभापति का भाषण हो चुकने पर प्रधान मंत्री ने बाहर से आये हुए सहानुभूतिक तार तथा पत्रों का सारांश सुनाया। यह भी शुभ सम्वाद सुनाया कि सम्मेलन में आने से दो तीन दिन पहिले पञ्जाब के देशी राज्य नाभा में थे और चलने के पहिले स्वयम् महाराजा साहब नाभा ने उनसे यह कहा था कि मेरी ओर से सम्मेलन को यह संदेशा सुना देना कि मेरी हिन्दी के साथ पूरी सहानुभूति है और मैं हृदय से सम्मेलन की सफलता चाहता हूं।

सात बजे संध्या के लिये विषयनिर्वाचिनी समिति की सूचना देकर इस दिन का कार्य समाप्त हुआ।

दूसरा दिन।

दूसरे दिन सम्मेलन का कार्य्य ठीक बारह बजे आरम्भ हुआ। प्रथम कुछ बालकों ने मधुर स्वर से मंगलाचरण किया, तदुपरांत सभापति द्वारा निम्नलिखित दो प्रस्ताव उपस्थित किये गये जिन्हें सब सज्जनों ने खड़े होकर सादर स्वीकार किया—

(१)

यूरोपीय राज्यों में इस समय जो भयङ्कर युद्ध हो रहा है, उसमें ब्रिटिश सरकार से इस सम्मेलन की पूरी सहानुभूति है और परमात्मा से उसकी विनीत प्रार्थना है कि हमारे प्रजाप्रिय राजराजेश्वर का पक्ष शीघ्र ही विजयी हो।

(२)

यह सम्मेलन राय देवी प्रसाद जी (पूर्ण), पं० तुलसीरामजी स्वामी, बा० शिवचन्द्र जी भरतिया, स्वामी सत्यानन्द जी, तथा डा० सतीशचन्द्र बनर्जी की असामयिक मृत्यु पर अपना आन्तरिक दुःख प्रकट करता है और उनकी हिन्दी सेवा का स्मरण करता हुआ उनके सम्बन्धियों से अपनी समवेदना प्रकट करता है।

तदनन्तर सभापति जी ने निम्नलिखित तृतीय प्रस्ताव उपस्थित किया—

(३)

इस सम्मेलन को इस बात का अत्यन्त दुःख है कि भारत गवर्नमेंट ने नागरी से परिचित बहुसंख्यक भारतीय प्रजा की सुविधा की ओर ध्यान न देकर नोटों पर से नागरी अक्षरों को उठा दिया है और अनेक बार प्रार्थना करने पर भी इस सम्बन्ध में सम्मेलन के निवेदन को स्वीकार नहीं किया है। इस सम्मेलन ने सिक्कों पर नागरी अक्षर रखने के लिए भी कई बार भारतीय गवर्नमेंट का ध्यान आकर्षित किया है पर अभी तक कोई फल नहीं हुआ। अतः यह सम्मेलन भारत गवर्नमेंट से पुनः सानुरोध प्रार्थना करता है कि नोटों और सिक्कों पर शीघ्र नागरी अक्षरों को स्थान दे।

प्रस्ताव उपस्थित करते हुए सभापति महाशय ने कहा कि किस नीति से गवर्नमेंट हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान नहीं देती है यह जानना कठिन है किन्तु इस पर फिर सरकार का ध्यान दिलाया जाता है कि हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान दे और हम लोगों की सुविधा के लिये विचार करे।

प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

तृतीय प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर सभापति महोदय ने निम्नलिखित पांच प्रस्ताव और उपस्थित किये जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए—

(४)

यह सम्मेलन प्रयाग विश्वविद्यालय को धन्य-बाद देता है कि उसने देशी भाषाओं को शिक्षा में उपयुक्त स्थान देने का विचार प्रकट किया है। इस सम्मेलन की सम्मति में प्रयाग और पञ्जाब दोनों विश्वविद्यालयों को शीघ्र ही देशी भाषाओं की पढ़ाई को भी अन्य विषयों की भांति पाठ्य-क्रम में उपयुक्त स्थान देना चाहिये।

(५)

यह सम्मेलन संयुक्त प्रान्त के शिक्षाविभाग को आठवीं कक्षा तक हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए धन्यवाद देता है और प्रार्थना करता है कि पाठ्यक्रम में ऐसी पुस्तकें रक्खी जायं जिनकी हिन्दी पुष्ट और शुद्ध हो और जिनमें हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों का पूरा पूरा व्यवहार रहे। यह सम्मेलन भारतीय तथा समस्त प्रान्तीय सरकारों से भी प्रार्थना करता है कि ऐसी आज्ञा निकाले कि समस्त स्कूलों में कम से कम आठवीं कक्षा तक सब विषयों की पढ़ाई देशी भाषा में हुआ करे।

(६)

इस सम्मेलन को इसलामिया स्कूलों और मकतबों के खोलने के सम्बन्ध में युक्तप्रान्त की गवर्नमेंट से विरोध नहीं है किन्तु दुःख है कि गवर्नमेंट ने हिन्दी की शिक्षा के लिए ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं किया है जैसा उसने इसलामिया स्कूल खोल कर उर्दू की शिक्षा के लिए किया है। अतः यह सम्मेलन गवर्नमेंट से निवेदन करता है कि हिन्दी की पढ़ाई के लिए भी हिन्दी बोलनेवालों की सङ्ख्या के अनुसार वैसी ही सुविधायें करदे, जैसी उसने उर्दू के लिए की है।

(७)

यह सम्मेलन हिन्दू-विश्वविद्यालय के सञ्चालकों से आग्रह पूर्वक अनुरोध करता है कि उसका नाम और काम सार्थक करने के लिए उक्त विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम हिन्दी रक्खी जाय।

(८)

यह सम्मेलन गुजराती-साहित्य-सम्मेलन तथा महाराष्ट्रीय-साहित्य-सम्मेलन को हृदय से प्रेमपूर्वक धन्यवाद देता है कि उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा होना स्वीकार करके अपने शिक्षा-लयों में उसे दूसरी भाषा की भांति पढ़ाने का मन्तव्य स्थिर किया है। यह सम्मेलन आशा करता है कि ऐसा प्रेमसम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठ होता जायगा।

आठवें प्रस्ताव के सम्बन्ध में सभापति महोदय ने कहा कि हमारे लिए यह अभिमान की बात है कि गुजराती और मराठी सम्मेलनों ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकार किया है और आशा है कि बङ्गाल के सज्जन भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में सहायक होंगे। मराठी वा गुजराती साहित्य-सम्मेलनों का कार्य्य बहुत महत्वपूर्ण है। प्रगट होता है कि देश की गति पर उन्होंने ध्यान दिया है और राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुसार काम किया है। विश्वास है आप आह्लादपूर्ण ध्वनि से इस धन्यवाद देने के प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे। (करतलध्वनि)

इसके पश्चात् परीक्षा समिति के संयोजक अध्यापक बाबू ब्रजराज बहादुर ने पिछले वर्ष की परीक्षा समिति का वार्षिक कार्य विवरण पढ़कर सुनाया जो परिशिष्ट(ख) में दियागया है।

तदुपरान्त परीक्षा समिति के संयोजक महाशय ने परीक्षोत्तीर्ण परीक्षार्थियों को क्रमानुसार सभापति के सम्मुख उपाधि पत्र, प्रमाण पत्र, पदक और पारितोषिक देने के लिए उपस्थित किया और सभापति महोदय ने परीक्षार्थियों को उत्साह बर्धक शब्द कहते हुए उपाधिपत्र, प्रमाणपत्र, पदक आदि प्रदान किये।

इस समय सम्मेलन में विशेष उत्साह और आनन्द दिखलाई देता था और लोग उत्तीर्ण परीक्षार्थियों का करतलध्वनि से स्वागत करते थे।

सं० १६७२ के प्रथमा और मध्यमा में परीक्षोत्तीर्ण और पदक प्राप्त परीक्षार्थियों के नाम परिशिष्ट (ग) (घ) में दिये गये हैं।

उपाधि आदि का वितरण हो जाने पर परीक्षा समिति के भूतपूर्व संयोजक अध्यापक बाबू रामदास गौड़ ने आगामी वर्ष में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को उत्साहित करने के लिए पदक-दान के लिये अपील की, साथ ही उन्होंने स्वर्गवासी पण्डित बालकृष्णजी भट्ट और राय देवी प्रसादजी पूर्ण के दो सुवर्ण स्मारक पदक स्थापित करने के लिए धन की अपील की। उनके वक्तृता का सारांश नीचे दिया गया है—

"आज मुझे इतने विद्यार्थियों को पदक और पारितोषिक प्राप्त होते देखकर जो प्रसन्नता हुई है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरा हृदय आज उमड़ रहा है। गत वर्ष जब मैंने लखनऊ के सम्मेलन में पदक और पारितोषिकों के लिए अपील की थी उस समय आप लोगों ने पदक पारितोषिकों की प्रतिज्ञाएं वर्षा करके अपने अपूर्व हिन्दी प्रेम का परिचय दिया था। अत्यन्त उदारतापूर्वक आपने बहुत से पदक और पारितोषिक प्रदान किये थे। उसी उत्साह के फल स्वरूप आज हम हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में उत्तीर्ण इतने परीक्षार्थियों को सभापति महोदय के कर-कमलों से पदक और पारितोषिक पाते हुए देख रहे हैं। अवश्य ही यह हिन्दी का बड़ा सौभाग्य है कि आज उसके प्रेमी उसकी उन्नति के लिए तन मन धन से सेवा करने को तैयार हैं। आप के उत्साह से उत्साहित होकर अनेक परीक्षार्थी हिन्दी परीक्षाओं में बैठकर उनमें उत्तीर्ण हुए हैं। परन्तु अभी हमारे कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो गई है। अभी हमें हिन्दी का बहुत प्रचार करना है, हिन्दी में अच्छे अच्छे योग्य विद्वान् पैदा करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि इन्हीं परीक्षाओं के द्वारा हो सकती है। परीक्षाओं में बैठने के लिए अधिक संख्याओं में परीक्षार्थी उत्साहित हों इसके लिए हमलोगों को उद्योग करते रहना है। आशा है आप पूर्ववत् उदारता का परिचय देंगे और इस वर्ष भी पदक तथा पारितोषिक देने में कमी न करेंगे। मुझे विशेष निवेदन आज एक दूसरे प्रकार के पदकों के विषय में करना है। कुछ पदक ऐसे होने चाहियें जो चिरस्थायी हों, जिसके लिए कुछ धन इकट्ठा कर दिया जाय, जिसके व्याज से प्रति वर्ष दो एक सर्वोत्तम उत्तीर्ण होने वाले परीक्षार्थियों को प्रति वर्ष पदक दिये जा सकें। ऐसे पदक परीक्षार्थियों के लिए अधिक उत्साह का कारण होंगे। परीक्षार्थी इनको प्राप्त करने के लिए उच्च-स्थान पर आने का अधिक प्रयत्न करेंगे। हमारी इच्छा है कि हम इन चिरस्थायी पदकों के द्वारा अपने उन पुराने हिन्दी प्रेमियों, साहित्य सेवियों का स्मारक स्थापित कर दें, जिन्होंने हिन्दी की जन्मपर्यन्त निष्काम भाव से सेवा की है। अभी हाल ही में हममें से दो ऐसे साहित्य-सेवी जुदे हो गये हैं जिनका स्मारक स्थापित करना हमारा कर्त्तव्य है। वास्तव में इन दो सज्जनों ने हिन्दी की जिस सच्चे भाव से सेवा की है उसका बदला हिन्दी-संसार उन्हें कभी भी नहीं दे सकता, परन्तु तौ भी हम उनका स्मारक स्थापित करके और हिन्दी के विद्वानों को उत्पन्न करके उनकी आत्मा को शान्ति तथा स्वयं अपने को सन्तोष दे सकते हैं। आप समझ गये होंगे कि ये दो महात्मा कौन हैं। मेरा तात्पर्य्य प्रसिद्ध साहित्य सेवी पण्डित बालकृष्ण भट्ट तथा राय देवी

प्रसादजी पूर्ण से है। क्या ये पदक पण्डित बालकृष्ण भट्ट और राय देवीप्रसाद पूर्ण की हिन्दी सेवा का पूरा पुरस्कार हो सकते हैं? कभी नहीं! किन्तु अपने मन के भाव को प्रकट करने के लिये हम प्रयत्न शील हो सकते हैं। स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट जी उन लोगों में थे जो हिन्दी की नाव के कर्णधार कहे जा सकते हैं। गद्य साहित्य के जन्मदाताओं में उनकी गणना है। हमें दुःख है कि उनके जीवित रहने की अवस्था में हम उन्हें सभापति का स्थान देकर अपने को संतुष्ट न कर सके। अब इस समय जब कि वे हम में नहीं हैं हमारा कर्त्तव्य है कि उनके नाम के स्मारक में परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों के लिए चिरस्थायी पदक की व्यवस्था करें। इसी दृष्टि से मेरा निवेदन है कि जिस प्रकार आप लोग प्रति वर्ष अन्य पदक के लिए दान देते हैं उसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट स्मारक चिरस्थायी सुवर्ण पदक देने का भी प्रबन्ध करें। ये पदक प्रतिवर्ष प्रथमा वा मध्यमा के सर्वोत्तम उत्तीर्ण विद्यार्थी को दिये जा सकते हैं। इसके लिये कम से कम १०००) या १२००) रुपये का धन होना आवश्यक है। यह रकम यदि एक सज्जन दे दें तब तो बहुत ही अच्छा है क्योंकि बहुत से सज्जनों का नाम पदक में अङ्कित नहीं किया जा सकता। बालकृष्ण भट्ट के लिए इतना रुपया कुछ अधिक नहीं है। दूसरा प्रस्ताव रायदेवीप्रसाद (पूर्ण) के स्मारक सुवर्ण पदक के लिए है। रायसाहब हिन्दी के अद्भुत विद्वान् और कवि थे। हिन्दी की जो उन्होंने सेवा की है उसके वर्णन करने की आप विद्वानों के सम्मुख आवश्यकता नहीं है। गत वर्ष सम्मेलन में जो अद्भुत काव्य मयी वक्तृता उन्होंने दी थी वह आज भी हमारे कानों में गूंज रही है। उनकी साहित्य सेवा के स्मरण में १०००) रु० या १२००) रु० कुछ भी नहीं है। इन दो स्मारकों से बड़ा लाभ होगा। जो उच्च कोटि के विद्यार्थी होंगे उन्हें ही ये पदक प्राप्त होंगे। उनके हृदय में भट्ट जी तथा रायसाहब के प्रति श्रद्धा का भाव होगा। वे उनका अनुकरण करेंगे? उच्च कोटि के हिन्दी साहित्य से लोगों का परिचय कराना इन परिक्षाओं तथा इन पदकों का उद्देश्य है। इसके सिवाय जिस प्रकार के मेडल और भी दिये जाते हैं उनके देने की भी आवश्यकता है। प्रमाण पत्र तो जीवन में काम आने की चीज़ है पर अधिक उत्साह बढ़ाने वाले पदक अथवा पारितोषिक ही हुआ करते हैं। आप जानते हैं कि प्राचीन Olympic games में क्या पुरस्कार मिलता था! किसी को पत्ती किसी को शाखा। पर पुरस्कार पुरस्कार ही है। उसका बड़ा बल है। उसकी उत्तेजना देनेवाली शक्ति असीम है। मुझे आशा है कि आप इस बात का स्वीकार करते हुए मेरी प्रार्थना को व्यर्थ न जाने देंगे।" (करतल ध्वनि)

बाबू रामदास गौड़की वक्तृता के बाद सभापतिजी ने पदकों के लिए प्रार्थना करते हुए कहा कि इन परीक्षाओं से हमें बहुत कुछ आशा है। जिस प्रकार आपने आज परीक्षार्थियों को पदक एवं पारितोषक पाते हुए देखा है उसी प्रकार हमें आशा है कि एक दिन ऐसा आवेगा जब कि केवल कन्याओं को उपाधिपत्र तथा पारितोषिक इत्यादि देने में एक दिन लग जायगा। और हमें इन सब कामों के लिये अलग दिन नियत करने पड़ेंगे। यह आप लोगों के उत्साह से ही हो सकेगा। आशा है कि आप बालकृष्ण भट्ट तथा पूर्ण स्मारक पदक में दान देकर तथा अन्य पदक प्रदान करके अपनी उदारता दिखावेंगे।

इस पर पदक तथा पारितोषिक देने की प्रतिज्ञाएं आने लगीं और ५० से ऊपर

पदकों के लिए प्रतिज्ञाएं हुईं। बालकृष्ण स्मारक कोष में ५५०) तथा रायदेवी प्रसाद पूर्ण स्मारक कोष में १२०) के बचन मिले। सं० १६७३ की परीक्षाओं के लिये पदक और पारितोषिक देने वाले सज्जनों की नामावली परिशिष्ट (च) में और भट्ट तथा पूर्ण स्मारक में धन देने वाले के नाम परिशिष्ट (छ) में दिये गये हैं।

इस कार्य के समाप्त होने पर स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक का पत्र-सम्पादन कला पर व्याख्यान हुआ। उसका सारांश यह है—

"मुझे आज साहित्य के एक ऐसे अङ्ग के सुधार के विषय में आप लोगों के सम्मुख निवेदन करना है, जिसकी इस समय इस राष्ट्रीय दुर्ग में परमावश्यकता है। यह विषय "पत्र-सम्पादन कला" है।

समाचार पत्रों द्वारा देशोत्थान में बड़ी भारी सहायता मिलती है। यह जनता में शिक्षा प्रचार करने का यह सुलभ साधन है। एक विद्वान लेखक द्वारा सम्पादित पत्र अथवा पत्रिका, थोड़े खर्च तथा कम समय में, बहुसंख्यक लोगों में उन्नत विचारों का प्रचार कर सकता है। एक ग्राम में, यदि एक पुरुष शिक्षित है, तो वह दैनिक अथवा साप्ताहिक पत्र में लिखे हुए विद्वत्तापूर्ण सम्पादकीय लेखों को अपने अशिक्षित ग्रामीण भाइयों को सुना कर उनमें जाग्रति ला सकता है। प्रत्येक सभ्य देश में समाचार पत्रों का बड़ा उच्चस्थान है और पत्रों के सम्पादक अपनी समाज में बड़ी प्रतिष्ठा से देखे जाते हैं।

समाचार पत्रों का इतिहास देखने से पता चलता है कि प्रारम्भ में जिन लोगों ने पत्रों का सम्पादन भार अपने ज़िम्मे लिया था, वे अधिकांश वे लोग थे जिन्होंने किसी उच्च भाव की प्रेरणा से उस काम्र्य को प्रारम्भ किया था, क्योंकि पत्रों के प्रारम्भ काल में पढ़ने वालों की संख्या कम होने के कारण पत्र चलाने वाले को घाटा ही घाटा सहना पड़ता है। वे सम्पादक भावी सन्तान के लिये मार्ग साफ़ करते हैं, और अपने जेब से रुपया खर्च कर पढ़ने वालों की संख्या बढ़ाते हैं।

हमारे हिन्दी पत्रों के इतिहास को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। प्रारम्भ में जो हिन्दी के पत्र निकले उनके संचालक हज़ारों रुपए का घाटा सहते रहे। जो कविता सम्बन्धी पत्रिकायें निकलीं, वे केवल कविता प्रेमी सज्जन के मनोविनोदार्थ थीं। जो साप्ताहिक पत्र निकले उनके सम्पादक अपने मत को अपने देशभाइयों के कानों तक पहुंचाने के निमित्त सैकड़ों रुपये का घाटा उठा बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करते थे।

परन्तु अब इसमें बड़ा परिवर्तन हो गया है। अब पढ़ने वालों की संख्या पहले की अपेक्षा बहुत अधिक हो गई है। हिन्दी भाषा के प्रति शिक्षित समुदाय की रुचि भी बढ़ गई है। अब समय आ गया है कि आगे का विचार कर पत्रों की दशा सुधारने का यत्न किया जाय। अब मातृभाषा के प्रति लोगों का प्रेम बढ़ जाने से उनमें स्वार्थ त्याग का भाव आ गया है। अब आवश्यकता है कि समाचार पत्रों को एक बलवती शक्ति बना कर उनके द्वारा शिक्षा प्रचार का कार्य्य किया जाय। यद्यपि मार्ग में कठिनाइयां बहुत हैं, और कई एक स्वार्थियों का सामना है किन्तु हमें निर्भय हो कर अपने कर्तव्य पद पर आरूढ़ होना चाहिए।

सबसे पहले हमें समाचार पत्रों का उद्देश्य समझना ज़रूरी है, इसलिए मैं इसकी ओर आप सज्जनों का ध्यान खींचता हूं—

(१) समाचार पत्रों का प्रथम उद्देश्य सच्चे समाचारों का फैलाना है। लोगों को सच्ची खबरें मिलनी चाहियें जिसमें वे कूपमण्डूप न

बने रहें ; उनकोअपने पड़ोसियों की स्थिति का परिज्ञान मिलना चाहिए। उनके इर्द गिर्द क्या हो रहा है ? समाज की क्या दशा है ? कौन घटना कहां हुई ? उन्नत अथवा अवनत बातों का आरम्भ अथवा अन्त कहां हुआ ? खाद्य पदार्थों का भाव क्या है ? क्या होने वाला है ? आदि जीवन सम्बन्धि आवश्यक बातों का ब्योरा मिलना उचित है जिससे वे दूसरों से पीछे न रहें।

(२) समाचार पत्रों का दूसरा लक्ष्य सार्वजनिक जाग्रति पैदा कर पबलिक में सार्वजनिक कामों में रुचि पैदा करना है। जिसको Public opinion कहते हैं। पत्रों के पाठक सार्वजनिक कार्योंमें रुचि दिखलायें ; उनमें अपने स्वार्थ त्याग करने का भाव उत्पन्न हो, यह कार्य्य समाचार पत्रोंके सम्पादक जल्द कर सकते हैं।

(३) पत्रों के सम्पादक जनता के पथ-प्रदर्शक होने चाहियें। वे प्रत्येक विषय पर ख़ूब सोच विचार कर टीका टिप्पणी करें। जनता को इतना समय नहीं मिलता कि वह राजनैतिक अथवा सामाजिक विषयों की अच्छी प्रकार छानबीन कर उनपर ठीक सम्मति स्थिर कर सके, वह अधिकतर पत्रों पर निर्भर करती है। इसलिए समाचारपत्रों के सम्पादकों को अपनी कठिन ज़िम्मेदारी को समझना उचित है। यदि वे बिना सोचे समझे अनाप शनाप बकवाद पत्रों में करेंगे तो उससे जनता में भद्दी बातें फैल जाने का भय रहता है। इस कारण सम्पादकों को बिना सोचे समझे इधर उधर का पक्ष ग्रहण कर अपनी सम्मति प्रकाश करना अनर्थकारी हो जाता है।

हमारे वर्तमान हिन्दी पत्रों की दशा सन्तोषजनक नहीं है। उनमें से जो धार्मिक समाचार पत्र हैं वे आपस में लड़ मरते हैं। उनका समय लम्बे लम्बे शास्त्रार्थों में व्यतीत होता है। वे मतों के जहादो झगड़े उठाकर देश में फूट का बीज बोते हैं।

जो राजनैतिक पत्र हैं उनमें एक दो को छोड़ कर अधिकांश राजनीति किस चिड़िया का नाम है यह भी नहीं जानते। वे अंग्रेज़ी पत्रों की नक़ल कर काम चलाते हैं अथवा अपना घरेलू द्वेष निकालनेवाले हैं। हिन्दी का यह दुर्भाग्य है कि इसको ऐसे सम्पादक अधिकतर मिले हैं जो अपने दायित्व को नहीं जानते, जिनके पत्र द्वेषपूर्ण कारटूनें निकालने और अपने प्रतिद्वन्दियों को गाली देने में समय खोते हैं। यहां जिसे कोई काम न मिले और जिसके दो चार लेख किसी समाचारपत्र में छप जायँ वही पत्र सम्पादक बनने का दम भरता है। ऐसा न होना चाहिए।

सभ्यदेशों में सम्पादन कला सीखने के लिए विश्वविद्यालयों में ऊच्चकक्षा की शिक्षा दी जाती है। बड़े बड़े ग्रेजुएट वर्षों रिपोर्टरी का कार्य्य सीखते हैं और किसी अच्छे पत्र का रीपोर्टर होना अपना गौरव समझते हैं। जब सम्वाद-दाता के कार्य्य में उनका नाम प्रसिद्ध हो जाता है तब वे सम्पादक पद के योग्य समझे जाते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षा समिति को इस ओर ध्यान देना चाहिए उसे अपनी परीक्षाओं द्वारा पत्र सम्पादन कला की खास पुस्तकें तय्यार करवा योग्य सम्पादक बनाना उचित है।

मैं अपने प्यारे नवयुक हिन्दी प्रेमी भाइयों से निवेदन करता हूं कि यदि वे इस दायित्व को अपने ऊपर लेना चाहते हैं तो उन्हें इसके लिए भरपूर तय्यारी करनी चाहिए।

वे पहले अच्छी योग्यता सम्पादन कर निबन्ध-रचना सीखें। यदि उनकी इच्छा अपने जीवन में सम्पादक बनने की है तो किसी अच्छे समाचार पत्र के सम्बाद दाता हो जायँ और

नियम पूर्वक सम्बाद भेजा करें। सम्बाद भेजने में निम्नलिखित नियमों को अपने सामने रखना चाहिये।

(क) सदा सत्य समाचार भेजो। कभी भूल कर भी झूठे बनावटी समाचार मत भेजो। चाहे कोई कितना ही लोभ दिखलाए, कभी भी अपनी आत्मा का हनन मत करो।

(ख) पक्षपात-रहित होकर लिखो, अपने मित्र का लिहाज़ न करो और न शत्रु के विरुद्ध अण्ड बण्ड बातें लिख कर अपने हृदय को काला करो।

(ग) किसी संस्था को हानि पहुंचाने, उसको जड़ से उखाड़ने के लिए मत लिखो। आपका उद्देश्य बनाना होना चाहिए, बिगाड़ना नहीं।

(घ) समाचार को थोड़े में परन्तु यथार्थ लिखने का अभ्यास करो, बड़े २ लम्बे बवंडर मत बांधो। थोड़े में सच्चा सुथरा ब्योरा लिखो।

(च) अपने देश बन्धुओं की शिक्षा के हित गम्भीर तथा विद्वत्तापूर्ण लेख लिखने का अभ्यास करो।

(छ) कभी किसी का दिल दुखाने, उसको नीचा दिखलाने के लिए भोंड़ा हास्य मत लिखो। यदि हास्यरस का अभ्यास करना है तो प्रेम से सना हुआ, अश्लीलता रहित निर्दोष हास्य का अभ्यास करो। स्मरण रखो हास्यरस साहित्य का कठिन अङ्ग है। इसको बच्चों का खेल मत समझो। किसी को गाली देना, उस पर झूठे दोष लगाना हास्यरस नहीं है। हास्य-रस वह है जिसको पान कर शत्रु मित्र सभी लोट पोट हो जायँ और प्रसन्नता से भर जायँ।

एक बात और। हिन्दी समाचार पत्रों में झूठे अश्लील विज्ञापन अधिक निकालने लगे हैं। कृपाकर इस व्याधि से समाचारपत्रों को बचाइए। गन्दे अश्लील विज्ञापनों से आप अपने पाठकों का चरित्र बिगाड़ते हैं; भोले भाले पाठक धूर्त वैद्यों के जाल में फंसकर अपनी आरोग्यता और धन खो बैठते हैं। पत्र सम्पादकों को धन का लोभ न कर अपने पाठकों के हित अहित का मुख्य ध्यान रखना उचित है। वह पत्र जो धन के लोभ वश गन्दे विज्ञापन छापता है और बहाना यह करता है कि विज्ञापन के बिना पत्र नहीं चल सकता उसे अपना पत्र बन्द कर देना उचित है। ऐसे पत्र की कोई ज़रूरत नहीं। पत्र बेईमानी से टका कमाने का साधन नहीं है।

मेरे प्यारे बन्धुओ! मैंने पक्षपात रहित होकर निर्भयता से इस विषय पर अपने विचार प्रगट किए हैं। यदि किसी प्रेमी को कोई बात कटु लगी हो तो वह कृपा कर मुझे क्षमा करें। मेरे इस नम्र निवेदन पर ध्यान देकर जो कुछ मैंने कहा है उस पर विचार करें। आइए पक्षपात छोड़कर राष्ट्रभाषा की सेवा करें जिससे भारत जननी का दुख शीघ्र दूर हो जाय।"

स्वामी सत्यदेव के व्याख्यान के अनन्तर कलकत्ते के पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने अपना "अनुप्रास अन्वेषण" शीर्षक लेख* पढ़कर सुनाया जो हास्यरस पूर्ण और अति मनोरञ्जक था।

इसके बाद जबलपुर के पण्डित सुखराम चौबे, गुणाकर ने अपना 'शिशु साहित्य' शीर्षक लेख* पढ़ा।

अब फिर प्रस्तावों की बारी आई और बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डनने निम्न लिखित नवां प्रस्ताव उपस्थित किया—

(९)

प्रयाग के विश्वविद्यालय में हिन्दी साहित्य का यथोचित समावेश करने के लिये इस सम्मेलन की सम्मति में उक्त विश्वविद्यालय को एक स्वतंत्र हिन्दी का वर्ग (Board of studies for Hindi) स्थापित करना चाहिये जिसमें हिन्दी के विद्वान ही सदस्य हों।

* ये दोनों लेख दूसरे भाग में प्रकाशित हैं।

प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए आपने जो थन किया उसका सारांश यह है—

"यह प्रकट बात है कि हमारे देशमें गवर्नमेंट ने पने हाथ में शिक्षा का कार्य रखा है। किन्तु जो न्दी की पुस्तकें पढ़ाई जा रही हैं उनकी भाषा ायः अच्छी नहीं होती, उनसे लाभ के स्थान में ानि होती है। साहित्य-सेवियों की सम्मति के नुसार पुस्तकें चुनी नहीं जातीं। इस लिये यह ावश्यक है कि हिन्दी का एक स्वतंत्र वर्ग स्थापित । इस समय जो भिन्न २ वर्ग स्थापित हैं उनमें न्दी के पण्डितों का अभाव है। यह एक विचित्र ात हमारे ही देश में देखी जाती है कि स्कूल में ढ़ाई जानेवाली हिन्दी की पुस्तकों के लेखक ऐसे ग्रेज़ होते हैं जो हिन्दी से सर्वथा अनभिज्ञ और ारतीय भावों से अपरिचित होते हैं। यह न्दी भाषियों और हिन्दी पढ़ने वालों के ऊपर न्याय है। यह बात नहीं है कि प्रयाग विश्व-द्यालय को हिन्दी के इस प्रकार के अच्छे खक न मिल सकें जो बालकों के पढ़ने योग्य स्तकें न लिख सकें। वास्तविक बात यह जान ड़ती है कि विशेष पुस्तक प्रकाशकों और क्तियों के स्वार्थ की ओर अधिक ध्यान दिया ाता है। यदि हिन्दी का स्वतंत्र वर्ग हो जिसमें न्दी के अच्छे ज्ञाता हों तो इस अप्राकृतिक ली का वे कदापि पोषण न करेंगे। बिना एक न्दी के स्वतंत्र वर्ग के यह कभी आशा नहीं जा सकती कि हिन्दी का पुस्तकों की भाषा र हिन्दी पढ़ाने की शैली के विषय में प्रयाग श्वविद्यालय उचित उन्नति करे।

कुछ ऐसा जान पड़ता है कि विश्वविद्या-य की यह धारणा है कि हिन्दी में अच्छी स्तकें नहीं हैं और हिन्दी के विद्वान् अच्छी स्तकें नहीं लिख सकते। इसी के कारण न्दी के विद्वानों का इलाहाबाद युनीवरसिटी वर्गियों में अभाव है। यदि हिन्दी का ज्ञाता वहां होता तो वह बतलाता कि हिन्दी में कैसी पुस्तकें उपस्थित हैं और बन रही हैं और उसमें विद्वान भी कैसे हैं। वास्तविक बात यह है कि संस्कृत को छोड़कर भारत की किसी भी भाषा का साहित्य बहुत अंशों में हिन्दी साहित्य की समता नहीं कर सकता। हां, यह संभव है कि हिन्दी में कुछ आधुनिक विषय की पुस्तकें तथा अन्य भाषा से अनुवादित पुस्तकें न हों। किन्तु प्रत्येक भाषा का साहित्य उसके प्रतिभाशाली कवियों और लेखकों से गौरव पाता है, और प्रतिभापूर्ण ग्रन्थों की कमी हिन्दी साहित्य में नहीं है।

यदि इङ्गलैंड में जाकर कोई मनुष्य इस बात का उपदेश करे कि जर्मनी अथवा फ्रांस में अमुक व्यक्ति बहुत विद्वान है इस कारण स्कूल में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकें उससे लिखाई जावें और तब उनका अंग्रेज़ीमें अनुबाद कर स्कूलोंमें पढ़ाई जावें तो वह मनुष्य पागल समझा जावेगा। किन्तु हमारे देश में यही शैली सचमुच देखने में आती है। इस रोग की औषधि यही है कि एक स्वतन्त्र हिन्दी का वर्ग हो जो विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के लिये ठीक पुस्तकें निर्वाचित करे और हिन्दी भाषा सम्बन्धी अन्य बातों की भी ठीक देख भाल कर सके।

मुझे यह भी विश्वास है कि वह समय अब दूर नहीं है जब प्रयाग विश्वविद्यालय को अपनी ऊँची परीक्षाओं में हिन्दी को स्थान देना पड़ेगा। इस का र्य की पूर्ति के लिए भी यह आवश्यक है कि हिन्दी का एक स्वतन्त्र वर्ग स्थापित हो जो हिन्दी विषयक बातों पर उचित सम्मति दे सके और जिसकी सम्मतिका हिन्दी ज्ञाताओं में आदर हो।"

लखीमपुर के पण्डित मुरलीधर मिश्र ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। आपके कथन का सारांश यह है--

सरकारी शिक्षा विभाग में हिन्दी और उर्दू की विचित्र मिलौनी की गई है। दोनों भाषाओं को

मिलाने से यह परिणाम होता है कि निरी उर्दू भाषा से भरी हुई पुस्तकें हिन्दी भाषा की कह कर चलायी जाती हैं। इसका कारण विश्वविद्यालय में हिन्दी के ज्ञाता सज्जनों का अभाव है। आवश्यक है कि प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी के एक वर्ग का ऐसा संगठन किया जाय जिसमें हिन्दी साहित्य के जानने वाले सदस्य हों और वे ही हिन्दी पुस्तकों के निर्वाचन इत्यादि के विषय में राय दें।"

सर्व सम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

दसवां प्रस्ताव जो पं० नन्दकुमार देव शर्म्मा ने उपस्थित किया यह था—

(१०)

"यह सम्मेलन उन सनातधर्म्म, जैन, सिक्ख आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, देवसमाज, आदि सभी धर्म्म और सुधारक सभाओं से तथा कायस्थ, खत्री, भार्गव, आदि जातीय सभाओं से जो हिन्दी का व्यवहार नहीं करतीं, सानुरोध प्रार्थना करता है कि

(१) वे अपनी सारी कार्रवाई हिन्दीभाषा और देवनागरी अक्षरों में करें।

(२) अपने स्थानों पर और विशेषकर तीर्थ और मेलों के स्थानों पर हिन्दी वाचनालय और पुस्तकालय खोलें।

(३) अपने आश्रित पाठशालाओं और विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी रक्खें और हिन्दी साहित्य की अभिज्ञता बढ़ाने का प्रयत्न करें।

पण्डित नन्दकुमार देवजी की वक्तृता का सारांश यह है—

"शोक है कि अब भी बहुत सभाएं ऐसी हैं जिनकी कार्य्यवाही उर्दू में होती है। पंजाब में उर्दू में गायत्री और सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद तक है इन सज्जनों ने धार्मिक विचारों में मातृ-भाषा की महत्ता को नहीं समझा। ऐसी ऐसी सभी सभाओं से जो अपनी कार्य्यवाही हिन्दी में नहीं करतीं, सम्मेलन का अनुरोध है कि वे अपनी कार्य्यवाही हिन्दी भाषा में करने लगें। जो भाषा जातीय-भाषा नहीं है, उसके द्वारा कभी किसी जाति का सुधार नहीं हो सकता।

चाहिये कि स्थान स्थान पर हिन्दी के पुस्तकालय तथा वाचनालय अधिक अधिक संख्या में खुलें। तीर्थस्थानों और मेलों के स्थानों पर हिन्दी पुस्तकालयों के खुलने की अत्यंत आवश्यकता है। पैरिस नगर के पुस्तकालयों में इतनी अधिक पुस्तकें हैं कि यदि वे सीधी जमा कर रक्खी जायं तो कई मील तक पहुंच जावें। प्राचीन भारतवर्ष में नालन्द, बुद्ध गया आदि में बड़े २ पुस्तकालय थे। ये सब स्थान बौद्ध लोगों के तीर्थ स्थान थे। इससे जाना जाता है कि प्राचीन समय के तीर्थ स्थानों में बड़े २ पुस्तकालय होते थे।

विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होने ही से शिक्षा का शीघ्र और अच्छा फल हो सकता है और विद्या का प्रचार भी देश में तभी सम्भव है।"

लखनऊ के बा० पुत्तनलाल विद्यार्थी ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुये कहा कि सम्मेलन की स्थायी-समिति ऐसा प्रबन्ध करे कि जब जातीय सभाएं हों तब सम्मेलन की ओर से कोई सज्जन सम्मेलन के प्रतिनिधि रूप से उन सभाओं में जाकर उनसे अपनी कार्य्यवाही हिन्दी में करने का अनुरोध करें।

प्रयाग के पं० रामाधार बाजपेयी ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुये ग्रामों में हिन्दी पुस्तकों के प्रचार तथा चलते पुस्तकालयों के स्थापित होने की आवश्यकता प्रगट की।

तीसरा दिन।

कल रात को विषय निर्वाचनी समिति अपना कार्य्य समाप्त न कर सकी थी, इस लिये आज १० बजे से फिर उसका अधिवेशन हुआ।

सम्मेलन का कार्य्य १२ बजे के लगभग आरम्भ हुआ। दूसरे दिन भी कुछ नये सज्जन, दर्शक

और प्रतिनिधि बाहर से आये थे और आज भी कई सज्जन आये।

प्रथम दारागंज स्कूल के कुछ विद्यार्थियों ने निम्न लिखित मङ्गल गान किया—

ईश-वन्दना ।

पितु मातु सहायक स्वामि सखा,
तुम ही एक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और अधार नहीं,
तिनके तुमहीं रखवारे हो॥
प्रतिपाल करो सिगरे जग को,
अतिशय करुणा उर धारे हो।
भुलि हैं हम हीं तुमको, तुम तो
हमरी सुधि नाहिं बिसारे हो॥
उपकारन को कछु अंत नहीं,
छिन ही छिन जो बिस्तारे हो।
महराज महा महिमा तुम्हरी,
समुझैं बिरले बुधवारे हो॥
शुभ शांतिनिकेतन प्रेमनिधे,
मन मन्दिर के उजियारे हो।
यह जीवन के तुम जीवन हो,
इन प्रानन के तुम प्यारे हो॥
तुमसों प्रभु पाइ "प्रताप" हरी,
किहि के अब और सहारे हो॥
शरणागत-पाल कृपालु प्रभो,
हमको इक आस तुम्हारी है।
तुम्हरे सम दूसर और कोऊ नहिं
दीनन को हितकारी है॥
सुध लेत सदा सब जीवन की,
अति ही करुणा उर धारी है।
प्रतिपाल करै बिन ही बदले,
अस कौन पिता महतारी है॥
जब नाथ दया कर देखत हौ,
छुटि जात बिथा संसारी है।
बिसराय तुम्हैं सुख चाहत जो,
अस कौन नदान अनारी है॥
परवाह तिन्हैं नहिं स्वर्गहु की,
जिनको तव कीरति प्यारी है।
धनि हैं धनि हैं सुखदायक जो
तव प्रेम-सुधा अधिकारी हैं॥
सब भाँति समर्थ सहायक हो,
तव आश्रित बुद्धि हमारी है।
"परताप नरायन" तो तुम्हरे
पद-पङ्कज पै बलिहारी है॥

तदनन्तर ज्वालापुर महाविद्यालय के पं० पद्मसिंह शर्म्मा ने निम्न लिखित ग्यारहवां प्रस्ताव उपस्थित किया—

(११)

यह सम्मेलन कांगड़ी के गुरुकुल, ज्वालापुर के महाविद्यालय, हरिद्वार के ऋषिकुल, वृन्दावन के गुरुकुल तथा प्रेम महाविद्यालय आदि हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षा देनेवाली समस्त संस्थाओं से प्रार्थना करता है कि अपने पाठ्यक्रम में उच्चकोटि के हिन्दी साहित्य को भी स्थान दें तथा हिन्दी की उपयुक्त शिक्षा का प्रबन्ध करें।

पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के अनुमोदन करने पर यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

इसके बाद लखनऊ के डा० पुरुषोत्तमदास कक्कड़ ने बारहवां प्रस्ताव उपस्थित किया जो इस प्रकार था—

(१२)

(क) चुंगी, टैक्स आदि की रसीदें तथा अन्यान्य नोटिस जोकि सर्वसाधारण को म्यूनीसिपलिटी आदि से दी जाती हैं वे अंग्रेजी तथा उर्दू में हुआ करती हैं जिससे हिन्दी जानने वालों को बड़ा कष्ट होता है। अतएव यह सम्मेलन म्यूनिसिपलिटी आदि संस्थाओं से प्रार्थना करता है कि वह अपने नोटिस आदि हिन्दी में प्रकाशित किया करें।

(ख) नहर की सिंचाई के पट्टे और पर्चे गाँव के लोगों को उर्दू में दिये जाते हैं। उर्दू के न जानने वाले ग्रामीण किसानों को उनके पढ़ाने के लिए दूसरे ग्रामों में जाना पड़ता है और प्रायः धोखे में आजाने के कारण हानि भी उठानी पड़ती है। अतएव यह सम्मेलन नहर के अधिकारियों से प्रार्थना करता है कि वे हिन्दी में भी पर्चे और पट्टे दिलाने का प्रबन्ध कर दें।

मुजफ्फरपुर निवासी पं० राजनारायण शुक्ल के अनुमोदन तथा बुद्धिपुरी निवासी पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी के समर्थन करने पर यह प्रस्ताव सर्वसमिति से स्वीकृत हुआ।

इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने पर निम्नलिखित तेरहवें और चौदहवें प्रस्ताव सभापति द्वारा उपस्थित किये गये और सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

(१३)

स्थायी-समिति सम्मेलन की नियमावली पर पूरा विचार कर आगामी वार्षिक सम्मेलन के कम से कम दो मास पूर्व संशोधन का मसौदा विचारार्थ प्रकाशित करदे तथा सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में विचार और स्वीकार करने के लिए उपस्थित करे।

(१४)

यह सम्मेलन प्रार्थना करता है कि स्थायी समिति का प्रत्येक सदस्य आर्थिक सहायतार्थ इस वर्ष समिति को १२) रु० दे।

चौदहवां प्रस्ताव उपस्थित करते हुए सभापति ने कहा कि इस वर्ष स्थायीसमिति को षष्ठ-सम्मेलन करने में आर्थिक हानि उठानी पड़ी है। इसलिए यह उचित है कि इस वर्ष उसे विशेष आर्थिक सहायता दी जाय।

पंद्रहवां प्रस्ताव सतना निवासी राय बहादुर बाबू लाल बिहारीने उपस्थित किया। वह यह था—

(१५)

यह सम्मेलन महाराज साहब इन्दौर, अलवर, दतिया, कोठी तथा राघवगढ़-नरेश को अपने २ राज्यों में देवनागरी लिपि के प्रचार और हिन्दी भाषा की उन्नति में सहायता देने के लिए तथा महाराज नाभा को उनके हिन्दीप्रेम और सहानुभूति के लिए धन्यवाद देता है और दूसरे महाराजाओं से प्रार्थना करता है कि वे भी अपने अपने राज्यों में हिन्दी का प्रचार करें।

अलवर निवासी पं० ब्रजनारायण शर्मा ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए कहा कि "हिन्दी का उपकार करने वाले राजा महाराजा धन्यवाद के भागी हैं कि इन्होंने अपने राज्य में हिन्दी का प्रचार किया। जिस समय अलवर राज्य में हिन्दी में कार्य्य करने के विषय में विचार हुआ तब बहुत से लोगों ने राय दी कि हिन्दी का व्यवहार करने में बहुत सी दिक्क़तें उठानी पड़ेंगी परन्तु श्रीमान अलवर नरेश ने उसका कुछ ध्यान न देकर हिन्दी का प्रचार करने का ही निश्चय किया। एक बार महाराज ने एक वार्षिकोत्सव के अवसर पर हिन्दी में व्याख्यान दिया तो वे लोग जिन्हें हिन्दी का बिलकुल ज्ञान नहीं था समझे कि कदाचित् यह कोई ऐसी भाषा है जिसे हिन्दू लोग नहीं बोलते। व्याख्यान हो चुकने पर महाराज की इस भाषा की बड़ी चर्चा हुई और अंत को यह समाचार महाराज के कानों तक पहुंचा। महाराज ने एक दूसरी सभा में यही बात फिर दोहराई और सगर्व कहा कि जिन लोगों ने यह नहीं समझा है कि मैंने अपनी स्पीच में कौन सी भाषा बोली है उनको मैं बतलाये देता हूं कि मैंने अपनी मातृभाषा में स्पीच दी है और आज ही से अदालतों में हिन्दी शब्दों का व्यवहार होगा। महाराज की इस कृपा का जन साधारण पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनको हिन्दी भाषा से रुचि होगयी और अब सब हिन्दी में बोल लेते हैं और वहां के कागजों में अब ऐसे शब्द लिखे जाते हैं जैसे "न्याय मंत्री महाशय की सेवा में संप्रेषित हो।" वास्तव में अलवर नरेश ने राजपूतानेके एक बड़े भारी कलंकको दूर कर दिया है।"

सोलहवां प्रस्ताव पं० श्रीकृष्ण जोशी ने उपस्थित किया। वह यह था—

(१६)

यह सम्मेलन इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से प्रार्थना करता है कि अपनी परीक्षा के नियमों में वह ऐसा परिवर्तन करे कि जिसमें विद्यार्थी विज्ञान के साथ साथ संस्कृत भी पढ़ सकें।

जोशीजी ने इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए जो वक्तृता दी उसका सारांश यह है—

"एक समय था जब भारतवर्ष की भाषा अन्य देशों में प्रचलित होती थी। जापान में एक ईश्वर प्रार्थना है जो संस्कृत भाषा में है। हमारे देश की भाषा हिन्दी होनी चाहिये। हम चाहते हैं कि हमारी भाषा में विदेशी शब्द न आयें। हमें कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये परन्तु अपनी मातृभाषाके लिये लड़ाई नहीं छोड़नी चाहिये। विज्ञान ने जापान और जर्मनी को ७० वर्ष में क्या बना दिया। विज्ञान हमारे लिए भी आवश्यक है पर वह हमारी भाषा में हो। हमारी किताबें ऐसी हों जिससे हम जान लें कि ये हमारा अंग हैं, ये हमारी वस्तुएँ हैं। हमारे घर में प्रकृति प्रत्यय ही नहीं किन्तु वैज्ञानिक पूरे शब्द भी उपस्थित हैं। मैं उनमें से नहीं हूँ जो यह कहते हैं कि मेरे यहां रेल तार सब थे। पर हां वे हो सकते हैं। विज्ञान में हम भी उन्नति कर सकते हैं। उदाहरण के लिए डाक्टर बोस को लीजिये। पर अंगरेज़ी में विज्ञान के वेत्ता पैदा करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि विज्ञान की पढ़ाई ऐसी दोषपूर्ण है कि भारतवर्ष के बहुसंख्यक बी० एस, सी० एम० एस सी० अब तक कोई भी आविष्कार करने में सफल नहीं हुए हैं। इस समय हम यह चाहते हैं कि हिन्दी पढ़ने वाले संस्कृत के साथ साथ विज्ञान भी पढ़ सकें।"

इस प्रस्ताव का अनुमोदन पण्डित महेशदत्त शुक्ल ने इस प्रकार किया।

"प्रयाग विश्वविद्यालय में अंगरेजी अनिवार्य है। शेष विषय सब नहीं लिये जा सकते। सायंस वाले संस्कृत नहीं ले सकते। प्राचीन सभ्यता और नवीन सभ्यता के मिलाने के लिए संस्कृत और सायंस एक साथ पढ़ने की आवश्यकता है। हिन्दी संस्कृत की बेटी है। अतएव हमको चाहिये कि हम विश्वविद्यालय से प्रार्थना करें कि वह हमारे प्रस्ताव को स्वीकार करे।"

प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ

इस प्रस्ताव के स्वीकृत होजाने के उपरान्त सक्खर (सिंध) निवासी पं० गिरधारीलाल भारद्वाज ने "सिन्ध में हिन्दी की अवस्था" शीर्षक अपना निबन्ध पढ़ा। और इसके बाद बा० राधामोहन गोकुलजी ने अपना लेख पढ़कर सुनाया।*

तदुपरान्त काशी के अध्यापक प्रो० लक्ष्मीचन्द ने ओजस्विनी वक्तृता के साथ निम्न लिखित १७ वां प्रस्ताव उपस्थित किया—

(१७)

यह सम्मेलन इस बात को परम आवश्यक समझता है कि भारतवर्ष में ऐसे विद्यालय अधिकाधिक सङ्ख्या में स्थापित हों जिनमें सब प्रकार की शिक्षा हिन्दी द्वारा हो और जो सम्मेलन की परीक्षाओं के लिए परीक्षार्थी तैयार करें, जिसमें आगे चलकर यह सम्मेलन उन्हें विश्वविद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित कर सके।

आपने कहा कि इस बात की आवश्यकता है कि हमारे देश का सब काम हिन्दी में हो। जापान का अभ्युदय इसी से है कि वहां बात न करके काम किया जाता है। सम्मेलन के जन्मदाताओं तथा परीक्षा समिति के जन्मदाताओं को धन्यवाद है कि जिन्होंने हिन्दी प्रचार के लिए इतना परिश्रम किया, तथा करते हैं। साहित्य के बल से हम उठ सकते हैं। सब प्रकार की उन्नति के लिए देश में एक भाषा की आवश्यकता है। देश को उठाने के लिए हमें वैज्ञानिक उत्पन्न करने होंगे। विज्ञान की पढ़ाई विदेशीभाषा द्वारा होने से ही हमारे देश में बड़े २ वैज्ञानिक उत्पन्न हो सकते हैं। डा० जगदीशचन्द्र बोस जैसे विद्वान कैसे उत्पन्न होंगे? केवल विज्ञान

---

* ये लेख दूसरे भाग में प्रकाशित हैं।

के द्वारा । असीरिया और बैबिलन क्यों नष्ट होगये और हम क्यों बचे हुए हैं ? इस बात पर हमें विचार करना चाहिये । हममें मानसिक शक्ति है। इस देश में बहुत से ग्रेजुएट पढ़ पढ़ कर निकलने लगे हैं । इस मुल्क में ऐसे २ ग्रेजुएट होते जिनसे पढ़ने के लिए जर्मनी के विद्वान आते परन्तु इसके लिए यह आवश्यक था कि सम्पूर्ण विषयों की शिक्षा हमें हमारी मातृभाषा में दी जाती। कुछ भी हो अब पहला ज़माना नहीं रहा । पश्चिमी देश ही संसार को शिक्षा देने में अग्रसर हो यह बात अब नहीं रही । अब बात उलट हो गयी । जापान में सूर्य्य का उदय हुआ है ।

भारत में भी अब उसका उदय होनेवाला है। अब पुरानी बातें बीतीं । हमारा उद्देश्य एक राष्ट्र-भाषा बनाने का है। हिन्दी के द्वारा उच्च शिक्षा दी जावे यह सम्मेलन की परीक्षा समिति का उद्देश्य है। एक बड़े विश्वविद्यालय बनाने के लिए यह एक सीढ़ी है, परन्तु हमें इतने से सन्तुष्ट न होना चाहिये। भारतवर्ष में ऐसे ऐसे विश्वविद्यालय अधिक संख्या में होने चाहियें जिनमें विज्ञान के उच्च विषय मातृभाषा द्वारा पढ़ाये जांय। बिना विज्ञान के भारतवर्ष का उन्नति नहीं हो सकती ।

देहरादून के रईस ला० बलदेवसिंह जी ने ईश्वर भक्तिभावपूर्ण एक मनोहर वक्तृता द्वारा इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया ।

बाबू राधामोहन गोकुलजी ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि इतने ग्रेजुएटों के निकलने पर भी हमारा अभीष्ट सिद्ध नहीं होता। कारण यह है कि हमारे विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी भाषा सीखने में समय नष्ट करना पड़ता है। हमें चाहिये कि हम अपनी शिक्षा को अपने हाथ में लें और अपनी भाषा में शिक्षा दें जिससे हमारे बालक बालिकाओं को उचित शिक्षा मिले।

सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ ।

तदनन्तर सम्मेलन के सहकारी मंत्री पं० रामकृष्ण सारस्वत ने सम्मेलन का वर्षभर का विवरण [परिशिष्ट (क)] पढ़ कर सुनाया जो १८ वें प्रस्ताव द्वारा सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ ।

तदनन्तर पं० श्रीकृष्ण जोशीजी ने पैसाफंड के लिए अपील की। आपने कहा कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन आपकी ओरसे हिन्दी का प्रचार करता है। स्थान २ पर अपकी वकालत करता है तथा सदैव आपकी सेवा करने के लिए प्रस्तुत रहता है। आपही ने इसे अपनी सेवा के योग्य बनाया है। यह आपकी सेवा दृढ़ता पूर्वक करता रहे इसके लिए यह आवश्यक है कि इसके पास सेवा का पूरा पूरा सामान हो । यदि कोई आपत्ति आ पड़े तो यह अपनी रक्षा कर सके । यदि कोई काम आ पड़े तो यह मुस्तैदी से उसे कर सके। आपकी शिक्षा का भार, आपकी सब प्रकार से सेवा का भार, आपके बच्चों को मातृभाषा से प्रीति कराने को उत्तेजित करने का भार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ऊपर है। आपको टैक्स देना पड़ता है। अधिकांश टैक्स आपको आराम देने के लिए आपके ऊपर लगाये जाते हैं। टैक्सों का तात्पर्य यह है कि आपने कुछ द्रव्य अपने पास से दे दिया, बस आपको किसी बात की चिन्ता नहीं । आपकी सड़कों की सफ़ाई, आप के लिए प्रकाश का प्रबन्ध आपके लिए स्वच्छ जल-वायु का प्रबन्ध सब आपही आप हो जाता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन को आप जो दान दें उसे आप चाहे टैक्स समझ लीजिये अथवा दान समझ लीजिये। अपने ऊपर टैक्स आप स्वयं लगाते हैं इस लिए कि आपको सुख मिले। हिन्दी साहित्य सम्मेलन आपको सुखी करने का प्रयत्न करता है। उसके कामोंके लिए जो उसे आपने सौंप रक्खे हैं व्यय की आवश्यकता है। यह व्यय आपही की सहायता से हो सकता है। अपनी मातृ-भाषा, अपनी विद्या का पुनरुत्थान, अपनी उन्नति करना, आपही के हाथ में है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पास अधिक द्रव्य होने पर यह आपकी शिक्षा का भार भी ले सकता है। इसकी परीक्षाएं भविष्य में केवल परिक्षाएंही नहीं रहेंगी

वरन इनके द्वारा शिक्षा दी जायगी। आपको हिन्दी सम्मेलन की सहायता करनी चाहिये।

मैं आप लोगों से भिक्षा मांगने के लिए खड़ा हुआ हूं। ब्राह्मणों का काम भिक्षा मांगना है। प्राचीन काल के ब्राह्मण भी भिक्षा मांगते थे, अपने लिए नहीं वरन सभी का उपकार करने के लिए। मुझे भी इस समय भिक्षा मांगने का काम सौंपा गया है। यह भिक्षा आपही के लाभ के लिए, आपही की सेवा के लिए मांगी जाती है। आपको अभी बहुत कार्य्य करना है, आपको देश सेवा के लिए अपनी सेना तैयार करनी है। अपको सदैव तैयार रहना चाहिये। मातृ-भाषा की सेवा में तन मन धन लगा देना आपका परम कर्तव्य है।

पं० जीवनानन्द शर्म्मा काव्यतीर्थ ने भी परिडत श्री कृष्ण जोशी के कथन का समर्थन करते हुए एक ओजस्वनी वक्तृता में पैसा फण्ड की प्रार्थना की।

पैसाफ़ण्ड की अपील होने पर पैसा देने की प्रतिज्ञाएं आने लगीं। सब मिलाकर ४२०॥≡)॥ रु० के वचन मिले जिसमें से १३१=)रु० नगद दान आया [देखो परिशिष्ट (ज)] जिस समय पैसा फ़ण्ड के लिए धन एकत्र किया जा रहा था उस समय पं० माधव शुक्ल ने अपनी मधुर वाणी से एक सुन्दर गीत गाकर श्रोताओं को प्रसन्न किया।

इसके पश्चात मध्यप्रदेश की ओर से रायबहादुर पं० विष्णुदत्त शुक्ल बी० ए० ने सम्मेलन को जबलपुर में निमंत्रण दिया और १६ वां प्रस्ताव यह उपस्थित किया कि आगामी सम्मेलन जबलपुर में किया जाय।

सर्वसम्मति से निमंत्रण स्वीकृत हुआ।

इसके स्वीकृत होने पर प्रभा के सहकारी सम्पादक—पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने मध्यप्रदेश की ओर से सम्मेलन को धन्यवाद दिया।

तदनन्तर निम्न लिखित २० वां प्रस्ताव सभापति द्वारा उपस्थित किया गया और अधिकांश सम्मति से स्वीकृत हुआ :—

(२०)

"स्थायीसमिति ही परीक्षा समिति के लिए ११ सदस्य चुन दिया करे। इनमें ७ स्थायी समिति के सदस्य हों और शेष ४ सदस्य हों अथवा कोई बाहरी सज्जन हों।"

इसके पश्चात् आगामी वर्ष के लिए स्थायीसमिति का सङ्गठन हुआ और नवीन वर्ष के लिए पदाधिकारी तथा सभासद् चुने गये। [देखो परिशिष्ट (झ)]

इस समय संध्या हो चुकी थी। स्थायीसमिति की ओर से सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधियों का एक उद्यान सम्मिलन हुआ तथा प्रीति भोज दिया गया। मुंशी रामप्रसाद के सुन्दर वाटिका में थोड़ी देर चहल पहल रही और भिन्न २ प्रान्तों के प्रतिनिधि आपस में खुलकर प्रेमपूर्वक मिले।

फिर सम्मेलन का कार्य आरम्भ हुआ। प्रो० राम दास गौड़ एम० ए० ने मैजिक लालटैन से चित्र दिखलाते हुए विज्ञान द्वारा मानवीशक्ति की वृद्धि पर एक अत्यन्त रोचक तथा शिक्षाप्रद व्याख्यान दिया। तदुपरान्त सब के अपने २ स्थान पर बैठ जाने पर रायबहादुर बाबू लालबिहारी लाल ने सभापति को सम्मेलन की ओर से धन्यवाद देने का प्रस्ताव उपस्थित किया जिसका पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने अनुमोदन किया। सम्मेलन के उपस्थित सब प्रतिनिधियों ने इस प्रस्तावको सानन्द करतल ध्वनि से स्वीकार किया।

सभापति महोदय ने अत्यन्त मधुर तथा प्रेमपूर्ण शब्दों में धन्यवाद के प्रस्ताव का उत्तर दिया। उनकी वक्तृता का सारांश यह है—

रायबहादुर लाल बिहारीलाल तथा पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने जिन शब्दों में मेरी तुच्छ सेवा के लिए धन्यवाद दिया है वे मुझे कभी न भूलेंगे। वास्तवमें पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने आपलोगों को अपनी मधुर वाणी से अनुप्रास का अन्वेषण सुना कर जिस प्रकार प्रसन्न किया है उसके लिए हम उन्हें आपकी ओर से धन्यवाद देते हैं। हमारे लिये यह दिन बड़े सौभाग्य का है कि हम

लोग इस प्रकार से एकत्रित होकर मातृ-भाषा की सेवा करने में तत्पर हुए हैं। जिस समय मैं कालिज में था उस समय हिन्दी की यह दशा न थी जो इस समय है। किन्तु मुझे कहना पड़ता है कि यद्यपि इस समय हिन्दी की पहिले से अधिक उन्नति हो गयी है तौ भी वह सन्तोष जनक कदापि नहीं है। हमें मिल कर इसकी उन्नति का बहुत अधिक प्रयत्न करना चाहिये। हिन्दी की उन्नति के लिए पहिले जिन लोगों ने प्रयत्न किया था उनके उत्साह तथा परिश्रम के आगे हमारा आज कल का परिश्रम कुछ भी नहीं है। मुझे उस समय का स्मरण आता है जब कि मालवीय जी और जोशी जी रात के एक एक बजे तक बैठ कर कचहरियों में नागरी प्रचार के विषय में परामर्श करते थे। उसकी तुलना में हमें आज का हमारा परिश्रम कुछ भी नहीं जँचता। इसमें सन्देह नहीं कि हम में मातृ-भाषा सेवा का भाव उतना नहीं है जितना कि उन महानुभावों में उस समय था। जिस दिन हमारे हृदय में भी मातृ-भाषा सेवा का यह भाव उत्पन्न हो जावेगा कि हम अपने कष्ट की परवाह न करके रात दिन इसी विषय का चिन्तन करते रहें उस दिन हम मातृ-भाषा की शीघ्र उत्तरोत्तर उन्नति ही देखेंगे। तौ भी हम लोगों में आज उत्साह है। मातृ-भाषा की सेवा के विषय में विचार करने को हम लोगों का दूर २ से आकर एक स्थान पर एकत्रित होना बतलाता है कि मातृ-भाषा की उन्नति अवश्य होगी। जिसकी हमें आशा है उसका उदय शीघ्र होगा। आप उद्योग करें या न करें मातृ-भाषा की उन्नति अवश्य होगी पर हमें अपने कर्त्तव्य में न चूकना चाहिये। हर समय मातृ-भाषा का ध्यान रख कर उसकी सेवा करनी चाहिये। आपने मुझे मेरी तुच्छ सेवा के लिए धन्यवाद दिया। इसके योग्य मैं नहीं हूं पर तौ भी आपने अपनी उदारता का परिचय दिया है। मुझे आपको भी धन्यवाद देना है। सूचना मिलने के इतने थोड़े समय में आप अपने मातृ-भाषा प्रेम के कारण यहां एकत्रित हुए हैं, इसके लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं। इतने थोड़े समय में इतने प्रतिनिधियों का एकत्रित होना कुछ कम सौभाग्य की बात नहीं है। २०० से अधिक प्रतिनिधियों का एकत्रित होना उनके मातृ-भाषा प्रेम का सच्चा परिचय देता है। और धन्यवाद के पात्र स्वयं-सेवक हैं जिन्होंने मातृ-भाषा प्रेम से उत्साहित होकर हम लोगों की सच्चे हृदय से सेवा की है। वास्तव में इन्होंने जिस प्रकार से हम लोगों की सेवा की है उसे हम कभी भूल नहीं सकते हैं। धन्यवाद की आवश्यकता कार्य्य कर्ताओं को नहीं है क्योंकि उनमें स्वाभाविक ही मातृ-भाषा का प्रेम है, तौ भी सम्मेलन की स्वागत समिति ने इस सम्मेलन के सम्बन्ध में जो प्रशंसनीय परिश्रम किया है उसके लिये उसके सदस्यों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। स्वागत समिति ने अपने सुयोग्य संयोजक पं० लक्ष्मीनारायण नागर की अध्यक्षता में सम्मेलन को सफल बनाया है। हम राय बहादुर बा० लालबिहारी लाल, बा० नवाब बहादुर तथा ला० सांवलदास को भी धन्यवाद देते हैं जिन्होंने सम्मेलन को सफल बनाने के लिए सच्चे हृदय से परिश्रम किया है।

विशेष रीति से बा० नवाब बहादुर और पं० लक्ष्मीनारायण नागर ने ही मिलकर सम्मेलन को सफल बनाया है। ये दोनों सम्मेलन की गाड़ी के दो पहिये हैं। अबतक अलग २ थे, अब सम्मेलन की गाड़ी चलाने के लिये दोनों जोड़ दिये गये हैं अर्थात् इस वर्ष के दोनों मंत्री येही दोनों सज्जन बनाये गये हैं। इनके प्रशंसनीय उद्योग के लिए यही धन्यवाद है।

षष्ठ सम्मेलन का अधिवेशन समाप्त हो गया। आशा है आप यहां से जाकर इसे भूल न जायँगे वरन मातृ-भाषा की सेवा निरन्तर करते रहेंगे जिसमें हमारी मातृ-भाषा का गौरव बढ़े। इस समय मैं अधिक आपका समय नहीं लेना चाहता क्योंकि अभी थोड़ी देर में हिन्दी नाट्य समिति का महाभारत नाटक होनेवाला है और हम सब वहां

जाने को उत्सुक हैं। इसलिए परमपिता से यह प्रार्थना करते हुए कि हम में मातृ-भाषानुराग दिन दूना रात चौगुना बढ़े मैं सम्मेलन के कार्य्य को समाप्त करता हूं और आपसे बिदा लेता हूं।

इस प्रकार सम्मेलन का अधिवेशन सानन्द समाप्त हुआ। रात्रि के समय हार्डिङ्ग थियेटर में प्रयाग की हिन्दी नाट्य समिति ने पं० माधवशुक्ल रचित महाभारत (पूर्वार्द्ध) नाटक खेला।

परिशिष्ट (क)।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का वार्षिकविवरण।

यह बात अब पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है कि देश तथा जाति के उत्थान के लिये, देश में सर्व साधारण के सुभीते के लिये एक सुलभ भाषा की परम आवश्यकता है। अनेक वर्षों से यह प्रश्न भारतवर्ष में उठा है। वास्तव में वर्तमान भारतवर्ष की जागृति के साथ इस भाव की अधिक जागृति हुई है। जातीयता के भावों के साथ साथ भाषा के भाव का उदय होना देश की जागृति का पूरा प्रमाण है। अस्तु एक भाषा की आवश्यकता मालूम पड़ते ही इस प्रश्न पर बहस आरम्भ हुई कि कौनसी भाषा देश की भाषा होने का दावा रख सकती है। अपने २ घर की अपने २ प्रान्त की भाषा सभी को प्रिय है। किसी ने पञ्जाबी, किसी ने मद्रासी, किसी ने बंगाली और किसी ने मराठी को इस दिव्य-सिंहासन पर सुशोभित होने के योग्य समझा, पर प्रत्येक अनुभवशील भाषा के तत्व को समझनेवाले के हृदय में इन में से किसी भी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने में भावी विप्लव की आशङ्का प्रतीत हुई। अन्त में अब अनेक दृढ़ प्रमाणों से यह सिद्ध होगया है कि एक हिन्दी भाषा ही भारत की राष्ट्रभाषा होने के योग्य है। मराठी तथा गुजराती साहित्य सम्मेलनों ने भी अपने अधिवेशनों में हिन्दी के राष्ट्र भाषा होने के अधिकार को सहर्ष स्वीकार किया है। हिन्दी-सहित्य-सम्मेलन अभी ६ वर्ष का बालक है परन्तु अपने जन्म से ही अपने अनेक कार्य्यों में उसने जो सफलता प्राप्त की है वह सच्चे देशहितैषियों की सहानुभूति का पूरा परिचय देती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का उद्देश्य भारतवर्ष भर में हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि का प्रचार करना और हिन्दी-भाषा के साहित्य की वृद्धि के लिये उपाय करना है। अपने इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने समय समय पर जिन मार्गों का अवलम्बन किया है वे सब आप को गत वर्षों के विवरणों तथा समय समय पर सम्मेलन-पत्रिका से विदित होते रहे हैं। यही नहीं, इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिये जिन जिन बातों की आवश्यकता हुई वे सम्मेलन के महाधिवेशनों में उपस्थित प्रस्तावों द्वारा स्वीकृत की गयी हैं। उद्देश्यों की सिद्धि के लिये यथा समय गवर्नमेंटसे प्रार्थना की गयी, हिन्दी के लेखक तथा उपदेशक नियत किये गये, पुस्तकें लिखवायीं गईं, नागरीप्रचारिणी सभाओं के खुलने में सहायता दी गयी, पारितोषिक तथा पुरस्कार दिये गये और हिन्दी-परीक्षाओं की सृष्टि की गयी। अवश्य ही इन सब कामों को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने असङ्ख्य प्रेमियों, अवैतनिक कार्य्यकर्त्ताओं, सुयोग्य सदस्यों के ही भरोसे पर करता रहा और सदैव करता रहेगा। हिन्दी प्रेमी सज्जनों ने इसे जिस प्रकार अपनाया है, सर्व साधारण ने इसे जिस प्रकार की सहायता दी है, इससे सम्मेलन की सफलता अवश्यम्भावी प्रतीत होती है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के प्रस्ताव, प्रस्ताव ही नहीं रह जाते वरन उनके

अनुसार वास्तविक कार्य्य भी होता है। सम्मेलन के अधिवेशनों द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों के अनुसार कार्य्य करते रहना ही सम्मेलन की स्थायीसमिति का मुख्य कर्त्तव्य है और वास्तव में ऐसी ही सभा से देश को कुछ लाभ हो सकता है जिसमें स्वीकृत हुए प्रस्ताव केवल लिखे हुए ही न रह जावें वरन उन पर वास्तविक कार्य्य भी होता रहे। देश की और बहुत सी सभाओं और हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में यही अन्तर है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन आज इतना सर्व प्रिय हो रहा है। बड़े बड़े सार्वजनिक अधिवेशनों द्वारा सर्व साधारण की सहानुभूति अपनी ओर आकृष्ट करना और उनकी सम्मति से वर्ष भर कार्य्य करना सम्मेलन का मुख्य कर्त्तव्य रहा है। गत वर्ष के पूर्व तक सम्मेलन का जो कार्य्य हुआ है वह वार्षिक विवरणों द्वारा आपके सम्मुख पिछले अधिवेशनों में उपस्थित किया जा चुका है। अब मैं आप लोगों के सम्मुख गतवर्ष का कार्य्य विवरण उपस्थित करता हूं।

नागरी-प्रचार

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य देश भर में हिन्दी भाषा और नागरी-अक्षरों का प्रचार करना है। यह एक मानी हुई बात है कि जब तक अदालतों में पूर्ण रूप से हिन्दी का प्रचार नहीं हो जाता तब तक सर्व साधारण में हिन्दी का अच्छा प्रचार होना असम्भव है और यह स्वाभाविक है कि जो भाषा अदालती भाषा होगी उसेही लोग अधिकता से सीखेंगे। बहुतसी भाषाओं के सीखने का बोझ उठाना सर्व साधारण के लिए सम्भव नहीं। अदालतों में सर्व साधारण का काम सदैव बनाही रहता है। बस वे उसी भाषा को सीखने का प्रयत्न करेंगे जो अदालतों की प्रचलित भाषा होगी। अतएव सर्व साधारण में हिन्दी का प्रचार करने के लिए अदालतों में हिन्दी का प्रचार करना आवश्यक समझ कर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने संयुक्तप्रान्त की अदालतों में नागरी प्रचार कराने की व्यवस्था आदि से ही की है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह कार्य्य हिन्दीप्रेमी वकीलों द्वारा जितना अच्छा हो सकता है उतना और किसी के द्वारा नहीं। हर्ष की बात है कि कुछ हिन्दी प्रेमी वकील अपने कर्त्तव्य को समझने लगे हैं पर अब भी बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया और उन्हीं वकीलों से मेरा नम्र निवेदन है कि अब बहुत हो चुका, उन्हें अब अपनी मातृ-भाषा की ओर ध्यान देना चाहिये। यदि सम्पूर्ण हिन्दू वकील इस ओर ध्यान देने लगें तो हमें पूर्ण आशा है कि अदालतों में शीघ्र ही हिन्दी का पूर्ण प्रचार हो जाय। अदालतों में हिन्दी का प्रचार होते ही सर्व साधारण आप ही आप हिन्दी सीख जायंगे और उत्तमता से हिन्दी में काम करने लगेंगे। सम्मेलन की ओर से कई स्थानों में लेखक नियत हैं, वे भी सदैव हिन्दी में काग़ज़ पत्र दाखिल करने का प्रयत्न करते हैं। इनकी रिपोर्टें जो प्रतिमास सम्मेलन-कार्यालय में आती हैं उनसे विदित होता है कि दिन पर दिन हिन्दी का काम अदालतों में बढ़ रहा है। यह हर्ष की बात है। अस्तु इस वर्ष के लेखकों की कार्यवाही से मालूम होता है कि सितम्बर तक कानपुर से ५४३८, अक्टूबर तक बांदा से ३५७२ और प्रयाग से १६१४, सितम्बर तक बुलन्दशहर से १६०५ और हाथरस से १३३५, जून तक गोरखपुर से ७२३ और मिर्जापुर से ३१५ हिन्दी के कागज पत्र अदालतों में दाखिल हुए हैं। अवश्य ही यह संख्या संयुक्तप्रान्त की जन संख्या और अदालती काम की अधिकता को देखते हुए विशेष सन्तोषप्रद

नहीं है, पर हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि यह संख्या भी उन कुल कागज़ों की संख्या नहीं है जो संयुक्तप्रान्त की अदालतों में हिन्दी में दाखिल होते हैं। यह संख्या केवल उन कागज़ों की है जो सम्मेलन की जानकारी में अदालतों में दाखिल हुए हैं। इससे बहुत बड़ी संख्या कागज़ों की ऐसी है जिसके विषय में हमें अधिक ज्ञान नहीं है। कुछ भी हो हमें यह देखकर और जानकर हर्ष होता है कि अदालतों में नागरी के प्रचार का काम दिन पर दिन बढ़ रहा है और हमारे अनेक लेखक और वकील इस सम्बन्ध में प्रशँसनीय उद्योग कर रहे हैं। साधारण लेखकों के उत्साह का पता भी इस बात से चलता है कि कानपुर और बांदा में लेखकों का कार्य अवैतनिक रूप से हो रहा है।

नागरी का प्रचार प्रान्त में विशेष रूप से हो इसके लिये गत वर्ष सम्मेलन की ओर से एक उपसमिति बनाई गई थी। समिति के संयोजक बा० भगवानदास हालना की रिपोर्ट भी आ गई है किन्तु उपसमिति द्वारा कोई उल्लेख योग्य कार्य्य नहीं हुआ है। संयोजक जी की इस सम्मति से हम पूर्णतया सहमत हैं कि इस कार्य में वकीलों की सहायता अधिक अपेक्षित है।

परीक्षा-समिति

संयोजक बाबू ब्रजराज बहादुर बी० एस० सी०, एल० एल० बी० की अध्यक्षता में परीक्षा-समिति का कार्य इस वर्ष बड़ी उत्तमता से सफलता के साथ हुआ है। सम्मेलन की परीक्षाएं दिन प्रति दिन लोकप्रिय हो रही हैं। इसके लिये परीक्षा समिति के कार्य्यकर्त्ताओं की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। परीक्षा सम्बन्धी इस वर्ष क्या क्या कार्य्य हुआ यह आपको संयोजकजी की रिपोर्ट से कल विदित हो गया है*।

सम्मेलन-पुस्तकालय

सज्जनो, आप लोगों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि द्वितीय तथा तृतीय सम्मेलनों में प्रस्ताव द्वारा यह स्वीकृत हुआ था कि हिन्दी लेखक तथा पुस्तक प्रकाशक अपनी अपनी पुस्तकों की एक एक प्रति तथा हिन्दी पत्रों के अध्यक्ष अपने पत्र बिना मूल्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्य्यालय में भेजने की कृपा करें। यह मन्तव्य इसलिए स्वीकृत किया गया था कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन का एक निज का पुस्तकालय ऐसा हो जिसमें हिन्दी की सम्पूर्ण पुस्तकें देखने को मिल सकें। हिन्दी साहित्य के इतिहास का पता लगाने के लिये इससे बढ़ कर और कौन उपाय हो सकता है कि इतिहास की पूरी सामग्री एक स्थान पर सदैव उपस्थित रहे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिए ऐसे इतिहास की सामग्री तैयार रखना जितना आवश्यक है आप सब सज्जन भली भांति जानते हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन साहित्यसम्बन्धनी सब प्रकार की सेवा करने के लिए तैयार रहे इसके लिये यह आवश्यक है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का पुस्तकालय सर्वाङ्ग सुन्दर हो; हिन्दी की सम्पूर्ण पुस्तकें उसमें मौजूद रहें। हिन्दी के मुख्य पत्र अपने जन्म से लेकर वर्तमान समय तक मौजूद हों। सम्मेलन-कार्यालय में बहुधा पत्र आते हैं कि अमुक विषय की हिन्दी भाषा में कितनी और कौन कौन पुस्तकें हैं और वे कहां कहां मिलती हैं? अमुक पुस्तक किस की लिखी हुई है? अमुक पुस्तक किस वर्ष में प्रकाशित हुई है? जब तक सम्मेलन कार्यालय में हिन्दी की सम्पूर्ण

* परिशिष्ट (ख)

स्तकें मौजूद न हों तब तक कहाँ से इन सब तों की सूचना पूंछने वालों को दी जा सकती ? यदि किसी विषय की कोई पुस्तक सम्मेलन-ार्यालय में नहीं आयी है तो लाचार होकर जिज्ञासुओं के पत्र का यही उत्तर देना पड़ता है कि वह पुस्तक हमारे कार्यालय में नहीं है सलिए हम आपकी सेवा करने में असमर्थ ।

हिन्दी के सभी पुस्तक प्रकाशकों, लेखकों था पत्रों के स्वामियों से निवेदन है कि वे सम्पूर्ण हिन्दी-संसार के लाभ के लिये अपनी अपनी स्तकों तथा अपने अपने पत्रों की एक एक ति सम्मेलन कार्यालय में अवश्य भेजें।

इस वर्ष कुल २१७ पुस्तकें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्यालय में आयीं। इस वर्ष जो नये त्र सम्मेलन कार्यालय में आये हैं उनके नाम ये हैं:—तरङ्गिणी, शारदाविनोद, व्यापारी, सारस्वत और हिन्दी-केसरी। समाचार पत्रों भी कई ऐसे पत्र हैं जो सम्मेलन कार्यालय नहीं आते। आशा है कि पत्रों के स्वामी तथा स्तक प्रकाशकगण इस ओर ध्यान देंगे।

साहित्यिक-विवरण

सम्मेलन में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था कि क साहित्यिक विवरण ऐसा बनाया जाय जिसमें हिन्दीसंसार की सम्पूर्ण आवश्यक सूचनाएं , जिसमें हिन्दी के लेखक, प्रकाशक, समाचारपत्र, हिन्दी सभाएं इत्यादि का यथोचित र्णन हो। इस विषय में कार्य हो रहा है और आवश्यक सामग्री एकत्रित की जा रही है, तकों की सूची बहुत कुछ बन गयी है किन्तु स कार्य को पूर्ण सफलता के साथ सम्पादन रने के लिये यह आवश्यक है कि हिन्दी के सम्पूर्ण पुस्तक-प्रकाशक, सम्पादक और सभाएं मारी सहायताकरें और साहित्यिक-विवरण सम्बन्धी सूचनाएं कार्यालय में भेजें।

सम्मेलन-पत्रिका

यह वर्ष सम्मेलन-पत्रिका के लिये कुछ अच्छा नहीं रहा। निश्चित सम्पादक का कुछ समय तक अभाव तथा प्रेस सम्बन्धी असुविधा इसके कारण रहे। सम्पादक के अदल बदल में पत्रिका समय पर नहीं निकाली जा सकी किन्तु इसका भार पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी जी ने अपने ऊपर ले लिया। अतएव अब इसके समय पर निकालने का पूरा प्रबन्ध हो गया है और आशा है कि प्रेस की गड़ बड़ी भी दूर हो जायगी। सम्मेलन पत्रिका अथवा हिन्दी साहित्य-सम्मेलन किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न हो कर सम्पूर्ण हिन्दी-संसार की सम्पत्ति है। सम्मेलन-पत्रिका आपकी है। यदि उसमें त्रुटियाँ रह जायँ जिनके कारण घाटा सह कर सम्मेलन उसका सञ्चालन करे तो इसमें न केवल सम्मेलन-कार्य्यालय का ही वरन सम्पूर्ण हिन्दी संसार का दोष है क्योंकि इससे यह विदित होता है कि हिन्दी के हितैषी सम्मेलन पत्रिका पर अपनी दृष्टि नहीं रखते। प्रत्येक हिन्दी-भाषा भाषी सज्जन का यह कर्तव्य है कि वह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मुख पत्रिका की पूर्णरीति से सहायता करे।

सम्बद्ध-सभायें

इस वर्ष ४ सभायें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से सम्बद्ध हुईं और अब सब मिला कर २४ सभाएं सम्मेलन से सम्बद्ध हैं। अवश्य ही बहुत से स्थानों पर अभी नागरी-प्रचारिणी सभाएं स्थापित नहीं हैं। हिन्दी-प्रेमियों को चाहिये कि प्रत्येक नगर तथा ग्राम में एक एक नागरी-प्रचारिणी सभा स्थापित करें और जो नागरी प्रचारिणी सभाएं अथवा हिन्दी से सम्बन्ध रखने वाली सभाएं अब तक सम्मेलन से सम्बद्ध नहीं है, उनका कर्तव्य है कि वे शीघ्र ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से अपना सम्बन्ध

स्थापित करलें क्योंकि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भारतवर्ष भर का हिन्दी सम्मेलन है और उसको हिन्दी के विषय में कार्य्य करने वाली सम्पूर्ण सभाओं का केन्द्र होना चाहिये।

हिन्दी की अवस्था

कौन ऐसा हिन्दी का सच्चा सेवक होगा जो हिन्दी की उन्नति को देख कर हर्ष से गद् गद् न हो उठे? हर्ष की बात है कि दिनों दिन देश में हिन्दी के प्रेमी बढ़ते जा रहे हैं। नयी नयी पत्रिकाओं से, नये नये समाचार पत्रों से हिन्दी-साहित्य का भण्डार भरा जा रहा है। अवश्य ही यह हमारे लिये बड़े सौभाग्य की बात है। इस वर्ष हिन्दी में तरंगिणी, शारदाविनोद, माधुरी-मयंक, व्यापारी, सारस्वत, हिन्दीकेशरी और सत्यवादी ये पत्रिकाएं नयी निकलीं। इनके अतिरिक्त प्रह्लाद, हिन्दीसमाचार, हरिश्चन्द्र-कला, सत्ययुग इत्यादि पत्र नये निकले। शोक की बात है कि प्रह्लाद अब बन्द हो गया है। हिन्दी के प्रसिद्ध पत्र अभ्युदय से इस वर्ष गवर्नमेंट ने ज़मानत मांगी थी और सम्भव था कि उस पत्र के फिर दर्शन न होते पर हमें हर्ष है कि गवर्नमेंट ने फिर उसे पूर्ववत् निकलते रहने की आज्ञा दे दी और अब वह पुनः हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण होकर अपने कर्तव्य में लग गया है।

इस वर्ष हिन्दी का मान देशी राज्यों में गतवर्ष की अपेक्षा अधिक रहा। हर्ष की बात है कि हमारे देशी नरेश हिन्दी के प्रति अपने कर्तव्य को समझते जाते हैं। मैहर, राघवगढ़ और कोठी राज्यों में हिन्दी का प्रचार हुआ। अलवर नरेश ने हिन्दी के सम्बन्ध में गत वर्ष जो आज्ञा दी थी कि उनके कर्मचारी शीघ्र ही हिन्दी में लिखना पढ़ना सीख लें उसे इस वर्ष श्रीमान् ने कार्य्य रूप में परिणत कर अपनी उदारता का परिचय दिया है। अब अलवर राज्य का सम्पूर्ण काम काज हिन्दी ही में होता है। दतिया राज्य के वर्तमान महाराज ने भी अपने राज्य के सम्पूर्ण काग़ज़ों को हिन्दी में रखने की आज्ञा दे दी है। अपने कर्तव्य-पालन के लिये इन राजा महाराजाओं को जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। हिन्दी के प्रचार के विषय में सब से उल्लेख योग्य बात जो इस वर्ष हुई वह गुजराती और महाराष्ट्रीय साहित्य-सम्मेलनों द्वारा स्वीकृत हिन्दीके लिए उदारता-पूर्ण प्रस्ताव हैं। उक्त सम्मेलनों ने हिन्दी का राष्ट्र भाषा होना स्वीकार कर लिया है। हमें आशा है कि अन्यान्य प्रान्त भी जिनमें हिन्दी का पूर्ण प्रचार है वा नहीं है हिन्दी के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करनेमें तथा इस देश-सेवा के महत्कार्य को पूर्ण करने में अधिक विलम्ब न करेंगे।

विदेश में हिन्दी

अवश्यही यह बड़े हर्ष का समाचार है कि हमारे कर्मवीर दक्षिण अफ्रीकानिवासी भारत-वासी भाई अपनी मातृभूमि के महत्व को दिखलाकर अब अपनी मातृ भाषा हिन्दी की सेवा की ओर दत्तचित्त हुये हैं और वहाँ पर अनेक हिन्दी सभाएं पुस्तकालय और वाचनालय आदि खोलकर ही सन्तुष्ट नहीं हुये प्रत्युत उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की भी स्थापना की है। इस के लिये हम उन की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करेंगे।

अन्तमें मैं उन सब महानुभावों को जिन्होंने इस वर्ष किसी भी प्रकार से हिन्दी के प्रचार में सहायता दी है सम्मेलन की ओर से धन्य-वाद देकर आपके सम्मुख गत वर्ष का आय-व्यय उपस्थित करता हूं जो इस प्रकार है :—

मि० मार्ग शीर्ष शु० ६ स० १६७१ ता० २६ नवम्बर सन १६१४ से मि० पौष कृ० ७ सं० १६ ता० २८ सिदम्बर सन् १६१५ तक के

आय व्यय का चिट्ठा ।

जमा	नाम
४७६०।-)।¾ पिछली बचत	१०४८॥=) कार्यालय खर्च
१७४१-)। पैसा फ़ण्ड	५५२।≡)॥ लेखकों का वेतन
२०) सम्बद्ध-सभा	४६॥=)॥ कागज छपाई
१८-) वकालतनामा	१०६॥≡) स्टाम्प तार
१००≡)॥ बिक्री रिपोर्ट	३३≡)। स्टेशनरी
१८१॥=)॥ ¾ व्याज	८२॥≡) सौ अजान एक सुजान
१५।)॥ बाबू राधामोहन गोकुल जी	२६६।=)॥ पत्रिका
१२) रामप्रकाश	१॥≡)। पुस्तकालय
४५॥=) हिन्दीका सन्देश	७॥-)॥ पिंगल
१३६॥≡)॥ परीक्षा समिति	५०॥=)॥ सामान
१०=) पदक	७६।≡) नागरी अङ्क और अक्षर
२४३॥) सन्दिग्ध खाता	७१≡)॥ इतिहास
	५०) पारितोषिक
	२०॥-)। फुटकर
	२४५४॥≡) कुल व्यय
	४८२६॥≡) ¾ बचत में
	४७५६।)॥ फिक्स्ड डिपाज़िट
	१६।≡)॥ सेविंग बैङ्क
	११-)॥ ¾ चलता खाता
	४०-)। नगदी हाथ में
७२८४॥=)¾ जोड़	७२८४॥=)¾ जोड़

परिशिष्ट (ख)।

परीक्षा समिति की रिपोर्ट

सेवा में सभापति षष्ठ हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

पूज्यवर ! आज मैं परीक्षा समिति की ओर से परीक्षा समिति का द्वितीय-वार्षिक विवरण आप की सेवा में उपस्थित करता हूं। इस से आपको प्रतीत होगा कि संवत् १९७२ में परीक्षा-समिति ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन सम्बन्धी परीक्षाओं के प्रचार तथा प्रबन्ध के लिए क्या काम किया और हिन्दी-साहित्य को इन परीक्षाओं से क्या लाभ पहुँचा। गत वर्ष पहला वार्षिक विवरण उपस्थित करते हुए पञ्चम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में परीक्षा-समिति के संयोजक श्रीरामदास गौड़ एम० ए० ने जिस मधुर वाणी और ललित भाषा में परीक्षा समिति के काम की आलोचना की थी वह मुझे शोक है कि आज आपको न मिल सकेगी। अस्वस्थ होने के कारण श्रीरामदास गौड़ एम० ए० को प्रयाग छोड़ना पड़ा और वे परीक्षा-समिति के काम को जो उनको अत्यन्त प्रिय है, न कर सके; तथापि उन्होंने अपने उत्साह से मुझे भी उत्साहित कर और अपने हिन्दी भाषा के असीम प्रेम के कुछ अंश का सञ्चार मेरे हृदय में करके मुझे परीक्षा समिति के संयोजकका काम करने की आज्ञा दी। इस बात को अनुभव करता हुआ भी कि मुझ में यह काम करने की यथोचित योग्यता नहीं है तथापि गुरुजनों की आज्ञा पालन करना अपना धर्म समझ कर, सदस्यों की सहायता का भरोसा करके मैंने संयोजक पद को स्वीकार किया है। पूज्यवर, जो उन्नति परीक्षा समिति के सञ्चालन में और जो उत्तमता परीक्षा समिति के काम में इस वर्ष होने की आशा गत वर्ष के संयोजक ने अपनी रिपोर्ट में पञ्चम हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में बँधाई थी उक्त महानुभाव के अस्वस्थ होने के कारण फलीभूत नहीं हो सकी। तथापि परीक्षा समिति ने जो कुछ काम इस वर्ष में किया है प्रशंसा के योग्य है।

परीक्षा-समिति की बैठकें

इस वर्ष परीक्षा-समिति की कुल सात बैठकें हुईं। इस वर्ष परीक्षाओं का सब प्रबन्ध करने के अतिरिक्त विशेष काम परीक्षा समिति ने जो किया वह यह था:—

परीक्षा-समिति ने उत्तमा-परीक्षा सम्बन्धी उपनियमों का निर्माण किया तथा सम्वत् १९७३ और ७४ की उत्तमा परीक्षाओं के लिए पाठ्य विषय तथा पुस्तकें नियत कीं। सम्वत् १९७३ की प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षाओं के पाठ्य विषय और ग्रन्थ नियत किये।

पुस्तकों का चुनाव

गत वर्ष के विवरण में संयोजक ने यह कहा था कि "तीसरे नियम के अनुसार विषयों का विभाग करके प्रत्येक वर्ग के सदस्य नियुक्त कर लिये जाते और प्रत्येक विषय की पाठ्य पुस्तकों का चुनाव उन वर्गों को सौंपा जाता तो समिति को बड़ी सुगमता होती, किन्तु इस सुगम रीति से लाभ उठाने को समय चाहिये था"। इसी के अनुसार इस वर्ष के आरम्भ में ही परीक्षा-समिति ने एक विस्तृत सूची प्रत्येक विषय के वर्गियों की बनाई और हर एक विषय के वर्ग में उस विषय को जानने वाले विद्वान हिन्दी प्रेमियों को वर्गी चुना। आशा थी कि परीक्षा-समिति को पाठ्य विषय नियत करने

तथा पाठ्य पुस्तक निर्वाचन में सहायता मिलेगी बहुत से निर्वाचित वर्गियों ने वर्गी होना स्वीकार किया पर बहुतों ने परीक्षा-समिति की प्रार्थना की स्वीकृत की कोई सूचना नहीं दी। परीक्षा समिति ने सं० १९७३ की विवरण पत्रिका बनाने के लिये वर्गियों के पास पत्र भेजे और वर्गिया से प्रार्थना की कि प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा परीक्षाओं के लिये परीक्षा विवरण बना कर भेज दें। वर्गियों की संख्या १५० से ऊपर है परन्तु समिति के पत्रों का उत्तर केवल ४ महानुभावों ने दिया। इनसे परीक्षा समिति को परीक्षा विवरण बनाने में बड़ी सहायता मिली विशेष कर उत्तमा परीक्षा के पुरातत्व और इतिहास विषयों का विवरण बनाने में। इससे आपको ज्ञात होगा कि गत वर्ष के संयोजक वर्गियों से सहायता की जो आशा करते थे वह सर्वथा निर्मूल रही और परीक्षा-समिति को अपने ही सदस्यों के अनुभव के ऊपर निर्भर हो कर यह गहन काम करना पड़ा। विवरण-पत्रिका के देखने से आपको अवश्य कुछ त्रुटियाँ दीख पड़ेंगी परन्तु इसका उत्तरदायित्व वर्गियों की उदासीनता अथवा परीक्षा-समिति के सदस्यों की प्रत्येक विषय से अनभिज्ञता ही है। मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी परीक्षाओं से हिन्दीभाषा की जो सेवा हो सकती है उसको समझ कर भारतवर्ष के सब हिन्दी प्रेमी परीक्षा समिति के विषय तथा पाठ्य पुस्तकें नियत करने में सहायता करेंगे और १९७४ की विवरण-पत्रिका सर्वथा दोषरहित बनेगी। उत्तमा परीक्षा के लिए पुस्तक नियत करते समय परीक्षा-समिति को बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा क्योंकि हिन्दी भाषा में उत्तमा की कक्षा में रखने योग्य पुस्तकों का अभाव सा है। इसलिए परीक्षा-समिति ने परीक्षार्थियों को किसी भी भाषा की पुस्तकें पढ़कर विषय तय्यार करने की स्वाधीनता दे दी है, परन्तु उत्तर-पुस्तक परीक्षार्थियों को हिन्दी-भाषा में ही लिखनी पड़ेंगी। परीक्षा समिति को मध्यमा परीक्षा के लिए भी अच्छी पुस्तकें मिलने में बड़ी कठिनाई हुई इस लिए परीक्षा-समिति ने यह विचार निश्चित किया कि पुस्तक-लेखक तैयार करें। इस विचार की पूर्ति में उत्तमा-परीक्षा का यह नियम बड़ा उपयोगी होगा कि "रत्न" उपाधि पाने की इच्छा रखनेवाले को उत्तमा परीक्षा में बैठने से पहले अपने निर्वाचित विषय में २०० पृष्ठ का एक निबन्ध हिन्दीभाषा में लिख कर परीक्षा समिति के संयोजक के पास भेजना होगा; इस निबन्ध के योग्य समझे जाने पर ही परीक्षासमिति परीक्षार्थियों को रत्न-परीक्षा में बैठने का अधिकार देगी। यही निबन्ध परीक्षासमिति पुस्तकाकार छपवा लेगी और धीरे २ प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षाओं के लिए सुन्दर पुस्तकें तय्यार हो जायंगी।

गत वर्ष की परीक्षाएँ

सं० १९७२ में पहले पहल मध्यमा-परीक्षा ली गयी, उसमें ४७ परीक्षार्थियों ने आवेदनपत्र भेजे जिनमें से १५ परीक्षार्थियों ने परीक्षा दी और १० परीक्षार्थी उत्तीर्ण हुए; ६ प्रथम श्रेणी में और ४ द्वितीय श्रेणी में। इस वर्ष, प्रथमा परीक्षा के लिए १६६ परीक्षार्थियों ने आवेदनपत्र तथा शुल्क भेजे, ७७ परीक्षा में बैठे, और ५५ उत्तीर्ण हुये। ११ प्रथम श्रेणी में २० द्वितीय और २४ तृतीय श्रेणी में। ८ कन्याओं ने प्रथमा परीक्षा के लिए आवेदनपत्र भेजे ५ परीक्षा में बैठीं और ४ उत्तीर्ण हुईं। आवेदनपत्रों की संख्या से प्रतीत होता है कि साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं के लिए हिन्दी-प्रेमियों में आदर हो चला है, उन्नति आशाजनक है। आवेदनपत्रों की इतनी अधिक संख्या होने पर भी मध्यमा में ४७ में से केवल १५ ने परीक्षा दी और प्रथमा में १६६ में

से केवल ७७ परीक्षा में बैठे। इसके दो कारण जान पड़ते हैं। प्रथम, अभी तक सम्मेलन परीक्षाओं का यथोचित प्रचार न होने के कारण परीक्षार्थियों को परीक्षाओं की सूचना तथा विवरण-पत्रिका देर से मिली। हिन्दी के प्रेम के कारण परीक्षार्थियों ने शुल्क तो भेज दिया पर वे परीक्षा के लिए तय्यार न हो सके। दूसरा, और मेरी राय में विशेष कारण यह प्रतीत होता है कि परीक्षार्थियों को नियत पुस्तक मिलने में बड़ी कठिनाई पड़ी। इसका कारण यह है कि हिन्दी भाषा के पुस्तकविक्रेता तथा प्रकाशक कम हैं। गत वर्ष के संयोजक ने इस कठिनाई का अनुभव करते हुए अपने विवरण में कहा था कि हमारे देश के पुस्तक विक्रेता अंगरेज़ी विश्वविद्यालयों की पुस्तकें मँगवा कर रखते हैं, पर हिन्दी-प्रेमी पुस्तकविक्रेता अभी ऐसे नहीं हैं कि हमारी परीक्षाओं के लिए भी वैसाही प्रवन्ध करें। परीक्षा-समिति ने हिन्दीभाषा के समाचारपत्रों में विवरण पत्रिका बनाने के पहले यह सूचना निकाली थी कि पुस्तक लेखक तथा विक्रेता जो पुस्तक सम्मेलन परीक्षाओं में नियत करवाना चाहें उसकी एक प्रति परीक्षा-समिति के पास भेज दें परन्तु परीक्षा समिति को ४, ५ पुस्तकें ही प्राप्त हुईं। मुझे पूर्ण आशा है कि आगामी वर्षों में पुस्तक लेखक तथा प्रकाशक ऐसी उपेक्षा न करेंगे। परीक्षा-समिति ने यह निश्चय किया है कि प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षाओं की नियत पुस्तकें सम्मेलन कार्यालय में विक्री के लिए रक्खें। उत्साही पुस्तक विक्रेताओं के अभाव के कारण ऐसा करना पड़ा। अब यह कठिनाई परीक्षार्थियों को न होगी।

परीक्षा में कन्याएँ

यह बात बहुत ही सन्तोष जनक है कि इस वर्ष की प्रथमा परीक्षा में कन्याओं ने भी परीक्षा दी। अभी तक विवरण पत्रिका में कन्याओं के लिए स्त्री जाति के उपकारक विषय नियत नहीं किये हैं; क्योंकि परीक्षासमिति को ऐसा आशा न थी कि इतनी जल्दी ऐसा सफलता होगी। आगामी वर्ष में विवरण-पत्रिका बनाते समय परीक्षा-समिति कन्याओं के लिए विशेष सुविधा करेगी।

परीक्षक तथा व्यवस्थापक

परीक्षासमिति का अपना काम सफलता-पूर्वक समाप्त करने में व्यवस्थापकों तथा परीक्षकों से जो सहायता मिली है उसके लिए परीक्षा समिति उनकी कृतज्ञ है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि कतिपय हिन्दी प्रेमी सज्जन परीक्षा केन्द्रों में परीक्षाओं का उचित प्रवन्ध न करते और यदि परीक्षक अवैतनिक होने पर भी उत्तमता से अपने काम को न करते तो परीक्षासमिति इन परीक्षाओं का कभी पूरा न कर सकती। लखनऊ केन्द्र में आप (सभापति) व्यवस्थापक थे और प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षाओं में परीक्षक भी थे। आप को पूरा अनुभव है कि इन कामों के करने में कितना समय व्यवस्थापकों तथा परीक्षकों को लगाना पड़ता है। परीक्षासमिति को ही नहीं वरंच सब हिन्दी प्रेमियों को व्यवस्थापक तथा परीक्षक महानुभावों को धन्यवाद देना चाहिए। इस साहित्य-सम्मेलन में दूर दूर से आये हुए प्रतिनिधियों तथा अन्य उपस्थित हिन्दी भाषा प्रेमियों से मेरा अनुरोध है कि भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में मुख्य मुख्य स्थानों पर यदि हो सके तो हर ज़िले में हमारी परीक्षाओं का केन्द्र बनाने का प्रयत्न करें, जिससे हमारी परीक्षाओं में बैठनेवाले परीक्षार्थियों को सुविधा हो जाय और बिना बहुत व्यय किये वे परीक्षा में बैठ सकें। मुझे आशा है कि उपस्थित महानुभाव अवश्य सम्मेलन परीक्षाओं के प्रचार तथा प्रबन्ध में दत्तचित्त होंगे और आगामीवर्ष कितने ही और परीक्षा केन्द्र बन जायँगे।

उत्तर पुस्तकें

इस वर्ष परीक्षार्थियों की उत्तर पुस्तकों पर परीक्षकों ने जो आलोचना की है उससे यह आशा बँधती है कि हमारी परीक्षाओं में उत्तीर्ण परीक्षार्थी शीघ्र ही हिन्दी-साहित्य की सेवा करने के योग्य हो जायंगे। हमारे इस वर्षके विशारदों की उत्तर-पुस्तकें बहुत ही उत्तम कोटि की थीं। हमको विश्वास होता है कि हमारे विशारद अपनी योग्यता के कारण सर्व साधारण में हमारी परीक्षाओं के लिए आदर उत्पन्न कर देंगे।

पदक

इस वर्ष के उत्तीर्ण परीक्षार्थियों में जो पदक तथा पुरस्कार के अधिकारी हुए हैं उनकी सूची आप की सेवा में उपस्थित की जायगी। इससे आप को ज्ञात होगा कि पञ्चम साहित्य-सम्मेलन में जिन महानुभावों ने पदक तथा पुरस्कार देने की प्रतिज्ञा की थी उनमें से किन किन ने अपनी प्रतिज्ञा पालन करने की कृपा की है। जिन महानुभावों ने अपनी प्रतिज्ञा अनुसार पदक तथा पुरस्कार परीक्षासमिति के पास भेज दिये हैं उनको परीक्षासमिति की ओर से मैं धन्यवाद देता हूँ। जिन महानुभावों ने अपनी प्रतिज्ञानुसार पदक नहीं भेजे हैं उनको भी मैं धन्यवाद इस लिए देता हूँ कि उनकी प्रतिज्ञा के कारण ही बहुत से परीक्षार्थी परीक्षा में बैठने के लिए उत्साहित तथा उत्तेजित हुए हैं।

धन्यवाद

सं० १९७२ की परीक्षाओं की विवरणपत्रिका का प्रचार करने के लिए हिन्दी पत्र-सञ्चालकों से प्रार्थना की गई थी कि वे अपने पत्रों में बिनामूल्य विवरणपत्रिका का विज्ञापन छाप दें। मुझे यह कहने में बड़ा हर्ष होता है कि बहुत से समाचार पत्रों ने हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार किया है और ऐसे पत्र बहुत कम हैं जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर ध्यान न दिया हो। मैं समझता हूँ कि इससे शीघ्र ही हमारी परीक्षाओं का हाल सर्व साधारण को मालूम हो जायगा। मातृ भाषा की सेवा से जो सन्तोष पत्र-सञ्चालकों के हृदय में उत्पन्न हुआ होगा वही इनके लिए यथोचित पुरस्कार है।

आप की सेवा में मुझे अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। मेरी सविनय प्रार्थना है कि आप और इस सम्मेलन के प्रतिनिधि मुझे उन त्रुटियों के लिये क्षमा करें जो मेरे इस विवरण में हों क्योंकि मैंने पहले ही निवेदन कर दिया है कि मैं हिन्दी भाषा का ज्ञाता नहीं। भाषा सम्बन्धी भूलें मुझसे बहुत सी हुई होंगी, उनके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। अन्त में परीक्षा-समिति की ओर से मैं उन सब महानुभावों को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने परीक्षा समिति को सहायता दी है।

अन्तिम निवेदन

अन्त में हिन्दी-प्रेमियों से मेरा यह निवेदन है कि वे हिन्दी भाषा के बल का अनुभव करें और हिन्दी भाषा को दीन हीन समझना छोड़ दें। क्या वह भाषा हीन कही जा सकती है जिसका साहित्य कम से कम १२०० वर्ष का पुराना हो, क्या वह भाषा हीन है जिसमें सूर और तुलसी जैसे कवि अपनी कविता कर गये हों और क्या वह भाषा हीन है जिसके १० करोड़ बोलनेवाले हों? नहीं! हिन्दी भाषा हीन इसी लिये समझी जाती है कि हम लोग हिन्दी के साहित्य तथा साहित्य के इतिहास से अनभिज्ञ हैं। हिन्दी प्रेमियों से मेरा अनुरोध है कि सर्व साधारण में हमारी परीक्षाओं का प्रचार करके हिन्दी साहित्य के अच्छे ज्ञाता उत्पन्न करने का प्रयत्न करें।

हमारे विशारद और प्रथमा परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी तथा उत्तीर्ण कन्याएँ आज उपाधिपत्र तथा प्रमाण पत्र आप के करकमलों से पावेंगे। हिन्दी भाषा के लिए वह दिन बड़े सौभाग्य का होगा जब आप के आशीर्वाद से दृढ़ मनोरथ होकर वे आप का अनुकरण करेंगे।

आप इनको आशीर्वाद दीजिये कि वह भी आप जैसे मातृभाषा-प्रेमी तथा सेवक हों।

परिशिष्ट (ग)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

संवत १६७२ की

मध्यमापरीक्षा में उत्तीर्ण परिक्षार्थियों की नामावली

(प्राप्त अङ्कों के क्रमानुसार)

क्रम संख्या	श्रेणी	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	निवास स्थान वा पता	विशेष विवरण
१३	प्रथमा	नर्मदाप्रसाद मिश्र ...	पं० ललिताप्रसाद मिश्र ...	जबलपुर	
४३	,,	लक्ष्मीधर शुक्ल ...	पं० सीताराम शुक्ल ...	लखनऊ	
४६	,,	प्रयागनारायण (सङ्गम) ...	पं० ठाकुर प्रसाद ...	बछगाँव-रायबरेली	
३८	,,	पुत्तनलाल विद्यार्थी ...	ला० छोटेलाल ...	लखनऊ	
५	,,	श्रीकृष्णदत्त शर्मा ...	पं० ब्रजलाल शर्म्मा ...	ग्राम तनौरा-आगरा	
६	,,	रामसूरतसिंह ...	बा० चुन्नीसिंह ...	ग्राम बड़ा बर्थरा चौबेपुर जि० बनारस	
३६	द्वितीया	बुद्धिसागर वर्म्मा ...	बा० कन्हैयालाल ...	खटेली-हरदोई	
२०	,,	शालग्राम द्विवेदी	पं० गोकुलप्रसाद द्विवेदी	जबलपुर	
२	,,	भागीरथ प्रसाद दीक्षित...	पं० भोलानाथ प्रसाद दीक्षित	कोटा	
३५	,,	हृदयराम ...	लाला श्रीराम ...	फ़तेहपुर	

प्रथमा में उत्तीर्ण परिक्षार्थियों की नामावली

(प्राप्त अङ्कों के क्रमानुसार)

क्रम संख्या	श्रेणी	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	निवास स्थान (पता)	विशेष विवरण
११६	प्रथमा	शिवराम (रमेश) शर्मा...	पं० परशुराम शर्म्मा ...	पाठशाला-कुलपहाड़-हमीरपुर	
९६	,,	जगन्नाथप्रसाद शर्म्मा ...	पं० नारायण दास शर्म्मा ...	,,	
३९	,,	शम्भुनाथ सेठ ...	बा० रामभरोस सेठ ...	२२९ जनरल गञ्ज-कानपुर	
१४६	,,	श्यामदत्त मिश्र ...	पं० लोधेश्वर मिश्र ...	पण्डितपुरवा पो० प्रयागपुर बहरायच	
१२२	,,	हरदयालु ...	बा० बलदेव प्रसाद ...	नायब मुदर्रिस टाउन स्कूल-महोबा	
८	,,	घनश्याम शर्म्मा ...	पं० तोताराम ...	अध्यापक अछनेरा-आगरा	
१६१	,,	त्रिविक्रम मिश्र ...	पं० हलधर मिश्र ...	सबअसिस्टेंट सर्जन बिलग्राम हरदोई	
१५७	,,	रामलाल अग्निहोत्री ...	पं० बलदेव प्रसाद अग्निहोत्री ...	अध्यापक टौनस्कूल बिलग्राम जि० ,,	
८७	,,	ब्रजमोहन लाल ...	लाला नत्थूसिंह ...	लाला का बाजार मेरठ	
३५	,,	रघुवर दयाल मिश्र ...	पं० बदरीप्रसादमिश्र ...	अभ्युदय पाठशाला-कानपुर	
३८	,,	बिश्वम्भर मोहले ...	पं० जानकी प्रसाद मोहले ...	हटिया-कानपुर	
४१	द्वितीया	शिवनन्दन लाल पाण्डेय	पं० रामरत्न पाण्डेय ...	अभ्युदय पाठशाला-कानपुर	
१०३	,,	भवानी प्रसाद गुप्त ...	बा० बच्ची लाल	पाठशाला कुल पहाड़-हमीरपुर	
१२०	,,	सुखलाल द्विवेदी ...	पं० बदरी प्रसाद ...	हेड मास्टर तहसील स्कूल-महोबा	
१५	,,	भूरीसिंह पँवार ...	ठा० चन्द्रहंससिंह ...	लतीफपुर स्टेट कोटला-आगरा	
६३	,,	कालूराम बाजपेयी ...	पं० फदालीराम बाजपेयी	गवर्नमेंट हाई स्कूल जबलपुर	
७७	,,	मुन्नालाल मिश्र ...	पं० युगलकिशोर मिश्र ...	तेंदूखेड़ा नृसिंहपुर सी० पी०	
२	,,	देवराज शर्म्मा ...	पं० मदन मोहन शर्म्मा ...	फ़ीरोज़ाबाद-आगरा	
४	,,	{ लक्ष्मीचन्द शर्म्मा पालीवाल ...	पं० रामकृष्ण शर्म्मा पालीवाल ...	फ़िरोज़ाबाद पो० फ़ीरोज़ाबाद आगरा	
१३०	,,	{ ठाकुरदास जैन ...	श्रीवृन्दावन जैन ...	श्री अभिनन्दन दिगम्बर जैन पाठशाला क्षेत्रपाल ललितपुर-झांसी	

१४४	द्वितीया	शिवप्रसाद शुक्ल ...	पं० रामनिवाज शुक्ल ...	गणेशगञ्ज-लखनऊ
३१	,,	गङ्गाप्रसाद गुप्त ...	बा० मानसिंह अहलमद्दी	मु० दलेलपुरवा-कानपुर
१३	,,	बनवारीलाल पचौरी ...	पं० बंशीलाल पचौरी ...	दफ़्तर कलक्टरी, अलीगढ़
६८	,,	दामोदर प्रसाद मिश्र ...	पं० शिवचरण मिश्र ...	चर्च मिशन-हाई स्कूल जबलपूर
४५	,,	स्वरूपचन्द जैन ...	पं० शिखरचन्द्र जैन ...	प्यारेलाल कन्हैयालाल नईसड़क कानपुर
१८	,,	रिखबचन्द ...	बा० मन्नालाल ...	नायब मास्टर कुकड़ेश्वर होल्कर स्टेट इन्दौर
५४	,,	मर्यादसिंह ...	बा० जगेश्वरसिंह ...	मौज़ा डहन ज़िला गाज़ीपुर
१५६	,,	शिवदयाल ...	पं० कालका प्रसाद ...	सहायक-अध्यापक क़स्बाती पाठशाला हरदोई
३	,,	बाबूलाल शर्म्मा ...	पं० शालग्राम पाठक ...	मोहल्ला जयगञ्ज-अलीगढ़
१४८	,,	श्रीकृष्ण स्वरूप श्रोत्रिय ...	पं० चण्डी बसन्त श्रोत्रिय	कोठी हरसामल हीवेटरोड-लखनऊ
२३	तृतीया	श्री निवास मिश्र	पं० लालाराम मिश्र ...	हिन्दी-पुस्तकालय बेलनगञ्ज-आगरा
१५०	,,	त्रिभुवनदत्त शुक्ल ...	पं० जीवनारायण शुक्ल ...	ग्रामटेरुआ तहसील व ज़िला-गोंडा
१०	,,	जयन्ती सहाय ...	बा० रामनारायण ...	गवर्नमेंट हाई स्कूल, एटा
६	,,	जगराम गुप्त	ला० मनीराम गुप्त ...	बमरौली कटरा ज़ि० आगरा
४३	,,	शिवशङ्कर दीक्षित ...	पं० रामस्वरूप दीक्षित ...	शबादाही नाका कानपुर
३६	,,	राधाकृष्ण शुक्ल ...	पं० भगवती प्रसाद शुक्ल	अभ्युदय पाठशाला-कानपुर
६६	,,	गयाप्रसाद तिवारी ...	पं० परमेश्वर दास जी पुजारी ...	तेंदूखेड़ा नरसिंहपुर
४६	,,	हनुमान सिंह ...	बा० माड़नसिंह ...	हेडमास्टर स्कूल दलेलपुरवा कानपुर
८८	,,	बनमाली शरण ...	ला० मुन्नालाल ...	सोतियान स्ट्रीट मेरठ शहर
८३	,,	विश्वम्भर प्रसाद ...	पं० गदाधर प्रसाद गौतम ...	हितकारिणी हाई स्कूल जबलपुर
१४	,,	भजोरी लाल गुप्त ...	मुंशी गङ्गाराम जी गुप्त ...	मुख्य अध्यापक पाठशाला नगरकोट
८१	,,	रामानुज प्रसाद पटैरया ...	पं० राधाकृष्ण पटैरया ...	पटैरया मोहल्ला नरसिंहपुर
६१	,,	कमलादेवी ...	बा० श्रीकृष्णदास	नं० २ काउपर रोड-इलाहाबाद
१०४	,,	यशोदादेवी ...	बा० कन्हैयालाल ...	आर्य्य-कन्या-पाठशाला मुट्ठीगञ्ज-प्रयाग
१५८	,,	लालजी ...	बा० हजारीलाल ...	सहायक अध्यापक टाउन पाठशाला हरदोई
११८	,,	श्यामसुन्दर त्रिपाठी ...	पं० रामसेवक त्रिपाठी ...	कनैली ज़ि० प्रयाग

क्रम संख्या	श्रेणी	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	(निवास स्थान) पता	विवरण
१०६	द्वितीय	राधाकृष्ण झिंगरन ...	पं० बाँकेबिहारी लाल ...	१२० कल्यानीदेवी लेन प्रयाग	
११४	,,	विद्यावती ...	पं० कृष्णबिहारी वाजपेयी ...	चक-प्रयाग	
१२६	,,	जगन्नाथप्रसाद शर्मा ...	पं० रामप्रसाद शर्मा ...	मोहम्मदपुर पो० संडीला ज़ि० हरदोई	
१०५	,,	रङ्गनाथ द्विवेदी ...	पं० जीवनारायण द्विवेदी	बुद्धिपुरी पो० सरायआकिल-प्रयाग	
१०९	,,	रामसुन्दर त्रिपाठी ...	पं० गुरुचरण त्रिपाठी ...	कनैली-ज़ि० प्रयाग	
६४	,,	कुञ्जबिहारी लाल ...	बाबू लक्ष्मी प्रसाद ...	चर्चमिशन हाई स्कूल जबलपुर	
१५२	,,	नरसिंहलाल गुप्त ...	बाबू नाथूलाल गुप्त	नायब अध्यापक गरौट होलकर राज्य	
१००	,,	पावती देवी ...	बाबू हनुमान प्रसाद सेठ	नं० ७ साउथरोड प्रयाग	
३२	,,	दयाशङ्कर मिश्र ...	पं० सुन्दरलाल मिश्र ...	अभ्युदय पाठशाला-कानपुर	

परिशिष्ट [घ]

षष्ठ सम्मेलन में पदक या पारितोषिक प्राप्त परीक्षार्थियों की नामावली

सं०	नाम परीक्षार्थी	पदक या पारितोषिक	नाम दाता और पता	विवरण
१	लक्ष्मीधर शुक्ल ...	स्वर्ण पदक	बा० पुरुषोत्तमदास टण्डन—प्रयाग ...	प्रथमामें प्रथम आनेके कारण सं०१९७१)
२	,,	रजत पदक	पं० गोकुलचंद शर्मा—अलीगढ़ ...	मध्यमाके साहित्य में प्रथम होनेके कारण
३	,,	,,	पं० जनार्दन भट्ट—प्रयाग ...	,,
४	,,	पुस्तकें	पं० बद्रीनाथ शर्मा वैद्य—मिर्ज़ापुर ...	,,
५	,,	,,	नीलकंठ द्वारकाप्रसाद—लखनऊ	,,
६	शिवराम शर्मा ...	स्वर्ण पदक	पं० श्री नारायण मिश्र—लखनऊ ...	सं०१९७२की प्रथमामें प्रथम आनेकेकारण
७	,,	रजत पदक	पं० शिवदयाल द्विवेदी—सीतापुर ...	हमीरपुरसे प्रथमामें प्रथम आनेके कारण
८	श्यामदत्त मिश्र ...	,,	बा० सरयूप्रसाद महाजन—गया ...	प्रथमाके साहित्य में प्रथम आनेके कारण
९	ठाकुरदास जैन ...	,,	भारत जैन महामण्डल ...	प्रथमा के जैनी विद्यार्थियों में प्रथम होने के कारण
१०	मंजोरीलाल गुप्त ...	,,	ठा० युगलसिंह—बीकानेर ...	राजपूतानासे प्रथमामें प्रथम होनेके कारण
११	श्रीमती कमलादेवी	,,	हिन्दी साहित्य सभा लश्कर (ग्वालियर)	प्रथमाकी कन्याओंमें प्रथम आनेके कारण
१२	श्रीमती विद्यावती...	चांदीकी कटोरी	श्रीमती भाग्यवती—कानपुर ...	प्रथमाकी कान्यकुब्ज बालिकाओं में प्रथम आने के कारण
१३	नर्मदाप्रसाद मिश्र...	पुस्तकें	नागरी प्रचारिणी सभा—आरा ...	मध्यमा में प्रथम होने के कारण
१४	,,	स्वर्ण पदक	पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी-कलकत्ता	,,
१५	भागीरथ प्रसाद ... दीक्षित	रजत पदक	अ० जगन्नाथ प्रसाद वि०—भरतपुर	राजपूताने से मध्यमा में प्रथम होने के कारण
१६	श्रीमती यशोदादेवी	,,	पं० ओंकारनाथ बाजपेयी—प्रयाग ...	प्रथमा की उत्तीर्ण देवी होने के कारण
१७	शिवराम शर्मा ...	,,	हिन्दी-प्रवर्द्धिनी सभा-शाहजहांपुर ...	प्रथमा के इतिहासमें प्रथम होने के कारण

सं०	नाम परीक्षार्थी	पदक या पारि-तोषिक	नाम दाता और पता	विवरण
१८	श्रीमती पार्वतीदेवी	पुस्तकें	पं० ओंकारनाथ बाजपेयी—प्रयाग ...	प्रथमा की उत्तीर्ण देवियों में लघु होने के कारण
१९	ठाकुरदास जैन ...	१०) की पुस्तकें	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई ...	प्रथमा के निबन्ध में सर्वोत्तम आने के कारण
२०	हृदयराम ...	रजत पदक	क० ख० ग० प्रयाग ...	मध्यमा में सबसे कम नम्बर पाने के कारण
२१	शिवनन्दन लाल ... पाण्डेय	५) नगद	सेठ बंशीधर—बुलन्दशहर ...	प्रथमा की द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने के कारण
२२	शम्भुनाथ सेठ ...	रजत पदक	पं० रामसेवक पाण्डेय मन्त्री स० ध० सभा—बहरायच	हिन्दी मिडिल पास विद्यार्थी प्रथमा में तृतीय होने के कारण
२३	रङ्गनाथ द्विवेदी ...	१) नगद	पं० रामाधार बाजपेयी—कोटवा जिला प्रयाग	प्रथमा के ग्रामीण परीक्षार्थी होने के कारण
२४	रामसुन्दर त्रिपाठी	१) नगद	,,	,,
२५	श्यामसुन्दर त्रिपाठी	१) नगद	,,	,,
२६	मर्यादसिंह	१) नगद	,,	,,
२७	जगन्नाथ प्रसाद शर्मा	१) नगद	,,	,,
२८	श्रीमती कमलादेवी	कन्या मनोरञ्जन एक वर्ष पर्यन्त	पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी—बुद्धिपुरी प्रयाग	प्रथमा में उत्तीर्ण देवी होने के कारण
२९	श्रीमती यशोदादेवी	,,	,,	,,
३०	श्रीमती विद्यावतीदेवी	,,	,,	,,
३१	श्रीमती पार्वतीदेवी	,,	,,	,,

परिशिष्ट [च]

प्रतिज्ञात पदक और पारितोषिक का वितरण।

सं०	देने वाले का नाम और पता	दातव्य वस्तु	विवरण
१	श्रीमती यशोदादेवी—प्रयाग ...	रजतपदक	प्रथमा परीक्षा में प्रथम आनेवाली विधवा स्त्री को
२	श्रीयुत पं० बदरीनारायण चौधरी ... प्रेमघन (भू० पू० सभापति) मिर्ज़ापुर ...	,,	प्रथमा परीक्षा में उत्तीर्ण सरयूपारीण ब्राह्मण कन्या को
३	श्रीयुत रामदयाल अग्रवाल–प्रयाग ...	२५) रु० की पुस्तकें	प्रथमा में उत्तीर्ण अग्रवाल कन्या को
४	सेठ जगन्नाथ झुनझुन वाला–रानीगञ्ज ...	६०) रु० को सोने की चूड़ी ...	मध्यमा की उत्तीर्ण देवियों में प्रथम को
५	पुरुषोत्तमदास वर्म्मा–प्रयाग ...	स्वर्ण की अंगूठी ...	प्रथमा में प्रथम आने वाली देवी को। यदि खत्री जाति की होगी तो रत्नजटित अँगूठी दी जावेगी।
६	मंत्री आर्य्यकन्या पाठशाला–प्रयाग ...	रजतपदक ...	प्रथमा के साहित्य में प्रथम आने वाली देवी को ५ वर्ष तक देंगे।
७	बाबू लक्ष्मीनारायण रईस–प्रयाग ...	स्वर्ण पदक	मध्यमा में प्रथम आने वाली कन्या को
८	श्रीयुत भालेराव सम्पादक–चित्रमयजगत् पूना	रजतपदक ... ,,	(१) ग्वालियर राज्य से प्रथमा में उत्तीर्ण होने वाली कन्या को। (२) ग्वालियर राज्य से मध्यमा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी को
९	चौधरी केशवचन्द्र सिंह एम. ए. एल. एल. बी.–प्रयाग	१०) की पुस्तकें ...	प्रथमा के साहित्य में प्रथम आने वाली कन्या को
१०	डा० पुरुषोत्तम दास कक्कड़–लखनऊ ...	१५) का स्वर्ण आभूषण ...	प्रथमा में उत्तीर्ण कन्या को
११	पं० ओंकारनाथ बाजपेयी–प्रयाग ...	रजतपदक (प्रति वर्ष)	प्रथमा में प्रथम होने वाली कान्यकुब्ज कन्या को
१२	बा० बैजनाथ गुप्त—मिर्ज़ापुर	रजतपदक ...	मध्यमा के इतिहास में प्रथम आने वाली देवी को
१३	बा० राधामोहन वकील–जौनपुर ...	रेशमी पारसी साड़ी	प्रथमा के इतिहास में प्रथम आने वाली देवी की

सं०	देने वाले का नाम और पता	दातव्य वस्तु	विवरण
१४	मु० अम्बा प्रसाद कायस्थ–जबलपुर ...	रजतपदक ...	प्रथमा के गणित में प्रथम आने वाली कायस्थ देवी को
१५	सेठ जगन्नाथ झुनझुन वाला–रानीगञ्ज ...	स्वर्ण पदक ...	जिस परीक्षार्थी को स्थायी समिति देना चाहे
१६	पं० राजमणि त्रिपाठी–गोरखपुर	रजतपदक ...	गोरखपुर डिवीजन की संस्कृत पाठशाला के विद्यार्थियों में सम्मेलन की परीक्षाओं में प्रथम आने वाले को
१७	पं० शिवनारायण मिश्र–कानपुर ...	स्वर्णपदक	प्रथमा की प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण अंत्यज जाति के विद्यार्थी को—प्रताप कानपुर की ओर से।
१८	बा० पुत्तनलाल विद्यार्थी विशारद लखनऊ	रजतपदक ...	प्रथमा में प्रथम आने वाले काश्मीरी परीक्षार्थी को
१९	बा० भगवानदीन–काशी	रजतपदक ...	उत्तमा के हिन्दी साहित्य में उत्तम आने वाले कायस्थ को
२०	पं० ओंकार नाथ बाजपेयी–प्रयाग ...	१२ पुस्तकें ...	उत्तमा में उत्तम आने वाले परीक्षार्थी को
२१	पं० बदरीनाथ पाण्डेय–काशी ...	रजतपदक ...	काशी प्रान्त से ३ वर्ष के बीच में उत्तमा में उत्तीर्ण होने वाले को
२२	पं० बद्री प्रसाद दुबे–नागपुर ...	४०) रु० का स्वर्णप०	उत्तमा में उत्तम आने वाले कान्यकुब्ज परीक्षार्थी को
२३	पं० गोस्वामी शिवप्रताप–बीकानेर ...	३) रु० का रजतपदक	उत्तमा के साहित्य में उत्तम आने वाले को
२४	शारदा भवन पुस्तकालय–जबलपुर ...	रजतपदक ...	(१) मध्य प्रदेश से प्रथमा में प्रथम आने वाले परीक्षार्थी को
२५	,,	,,	(२) मध्य प्रदेश से मध्यमा में प्रथम आनेवाले परीक्षार्थी को
२६	पं० वेगराज शर्मा–भागलपुर ...	,,	प्रथमा में उत्तीर्ण चमार जाति के परीक्षार्थी को
२७	डा० पुरुषोत्तम दास कक्कड़–लखनऊ...	स्वर्णपदक ...	उत्तमा में उत्तीर्ण होने वाले परीक्षार्थी को
२८	लाला मनमोहन दास–प्रयाग ...	,,	प्रथमा में प्रथम आने वाले खत्री जाति के परीक्षार्थी को
२९	नागरी प्रचारिणी सभा–आरा	१०) रु० की पुस्तकें	विहारी परीक्षार्थियों में मध्यमा के साहित्य में प्रथम आने वाले को।
३०	पं० रामजी लाल शर्मा–प्रयाग ...	१०) रु० की पुस्तकें	प्रथमा में प्रथम आने वाले मुसलमान परीक्षार्थी को
३१	पं० राजमणि त्रिपाठी–गोरखपुर ...	रजतपदक (प्रतिवर्ष)	प्रथमा में प्रथम आने वाले सरयूपारीण ब्राह्मण को
३२	लाल रुद्रनाथ सिंह धेनुगांव बस्ती ...	रजतपदक	मध्यमा में प्रथम आने वाले परीक्षार्थी को
३३	पं० जगन्नाथ प्रसाद–चतुर्वेदी ...	स्वर्णपदक	उत्तमा में उत्तम आने वाले परीक्षार्थी को
३४	प्रो० लक्ष्मीचन्द्र एम० ए०–काशी ...	६ पुस्तकें ...	रसायन शास्त्र में प्रथम उत्तीर्ण परीक्षार्थी को

३५	पं० रामचन्द्र वैद्य-ज्वालापुर ...	रजतपदक ...	मध्यमा के वैद्यक में प्रथम आने वाले परीक्षार्थी को
३६	बाबू नवलकिशोर जैन-कानपुर ...	,,	मध्यमा में उत्तम आने वाले जैनी परीक्षार्थी को
३७	पं० रघुवरदयाल मिश्र डि० क०-लखनऊ	,,	मध्यमा में प्रथम आने वाले परीक्षार्थी को
३८	मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर	,,	प्रथमा में प्रथम आने वाले मध्यभारत के परीक्षार्थी को
३९	पं० रामचन्द्र शुक्ल-बहराइच ...	७) रु० की पुस्तकें	प्रथमा में उत्तीर्ण मुसलमान परीक्षार्थी को
४०	पं० रामरत्न-अध्यापक-आगरा	रजतपदक ...	अछूत जाति के परीक्षार्थी को जो प्रथमा में प्रथम आवेगा
४१	बाबू सदानन्द सेठ हिन्दू आश्रम-प्रयाग	,,	प्रथमा में प्रथम आने वाले खत्री परीक्षार्थी को
४२	बाबू केदारनाथ गुप्त-प्रयाग ...	,,	प्रथमा में प्रथम आने वाले परीक्षार्थी को
४३	नागरी प्रचारिणी सभा-गोरखपुर ...	,,	प्रथमा में उत्तीर्ण मुसलमान परीक्षार्थी को
४४	परोपकारिणी संस्कृत पाठशाला-खँडवा	रजतपदक	प्रथमा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी को
४५	पं० शिवनारायण मिश्र-कानपुर ...	स्वर्णपदक	उत्तमा में उत्तीर्ण अन्त्यजाति के परीक्षार्थी को
४६	पं० बद्रीनाथ शर्मा वैद्य-मिर्ज़ापुर ...	रजतपदक ...	उत्तमा के अर्थशास्त्र में उत्तम आने वाले परीक्षार्थी को
४७	सारस्वत सभा-प्रयाग ...	,,	मध्यमा में सारस्वत ब्राह्मणों में प्रथम आने वाले को
४८	,,	स्वर्णपदक ...	मध्यमा में सर्वोत्तम आने वाले सारस्वत ब्राह्मण को
४९	सेठ बंशीधर-बुलन्द शहर ...	५) रु० और ४) रु० पारितोषिक	प्रथमा के हिन्दी मिडिल पास विद्यार्थियों में प्रथम और द्वितीय होने वाले को
५०	नागरी प्रचारिणी सभा-बुलन्दशहर ...	१५) रु० पारितोषिक	एंट्रेंस या स्कूल लीविंग पास बुलन्दशहर के छात्रों में प्रथमा में प्रथम को
५१	सेठ बंशीधर-बुलन्दशहर ...	१०) रु० पारितोषिक	एंट्रेंस या स्कूल लीविंग पास कमिश्नरी आगरे वा मेरठ के वैश्य व अग्रवाल प्रथमा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी को
५२	क. ख. ग.-प्रयाग ...	लक्ष्मीपदक ...	प्रयाग के ला० शम्भूनाथ रईस के पुत्र ला० लक्ष्मीनारायण के स्मारक में प्रथमा में उत्तीर्ण कन्या को

परिशिष्ट [झ]

बालकृष्ण भट्ट स्मारक।

१ बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन प्रयाग २००)
२ पंडित जनार्दन भट्ट ,, १००)
३ लाला सांवलदास ,, ५०)
४ स्वामी सत्यदेव जी ,, ५०)
५ सेठ गजानन रामकुमार खेमका ... ५०)
६ बा० राधामोहन गोकुल जी, कलकत्ता २५)
७ रामाधार बाजपेयी, कोटरा प्रयाग २५)
८ बा० सूर्यप्रसाद महाजन, मुरारपुर गया १०)
९ पंडित रामनाथ मिश्र, प्रयाग ... १०)
१० ठाकुर शिवकुमार सिंह, बहादुरगंज प्रयाग ५)
११ प्रोफ़ेसर श्यामनारायण, काय० पा० प्रयाग ५)
१२ पं० बसन्तलाल प्रयागवाल, अहियापुर ,, ५)
१३ सावित्री देवी, c/o मूलचन्द मालवीय ,, ५)
१४ श्रीयुत बद्रीप्रसाद सिंह, दारागञ्ज ,, ३)
१५ लाला बुलाकीलाल खन्ना ,, २)
१६ बाबू सूर्य्यदीन टीचर, अहियापुर ,, २)
१७ पं० राजमणि त्रिपाठी, अहलमद गोरखपुर १)
१८ पंडित श्यामसुन्दर दास कर्पूरीया, मंत्री— हिन्दी मित्र मंडल लखनऊ ... १)
१९ बाबू पुरुषोत्तमदास वर्मा एजन्ट— स्वदेशी बटन प्रयाग ... ... १)

५५०)

देवीप्रसाद (पूर्ण) स्मारक।

१ कुंवर जंगबहादुर सिंह, अमेठी राज्य ५१)
२ सेठ लक्ष्मीनारायणजी डिडवानिया भागलपुर २५)
३ पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद वकील, मुज़फ्फ़रपुर २०)
४ पं० बदरीनाथ शर्मा बी० एन० कालेज बांकीपुर .... २०)
५ पंडित रघुबरदयाल मिश्र डिपुटी कलक्टर, नरही, लखनऊ ... ... १०)
६ पं० राजमणि त्रिपाठी, अहलमद गोरखपुर १)

१२७)

परिशिष्ट [ज]

पैसाफ़ण्ड में वचन देनेवाले सज्जनों के नाम।

१ श्रीमती माहेश्वरी देवी, स्थान बा० नवाब बहादुर वकील, प्रयाग ५०)
२ श्रीमान् लक्ष्मीनारायण बावड़िया भागलपुर २५)
३ ,, बद्रीनाथ शर्मा एम० ए० बी० एन० कालेज बांकीपुर ... २५)
४ ,, राजकुमार बलदेवसिंह जी रईस, देहरादून ... ... २५)
५ ,, नवाब बहादुर वकील, प्रयाग २३।≡)।
६ ,, पं० गणेशदत्त मंत्री-भारतीय व्यायाम पाठशाला ३७ खेंगरा पट्टी कलकत्ता ... ... १५॥=)
७ ,, रामनारायणजी ... १५॥=)
८ ,, राधेश्याम शर्मा मंत्री- एडवर्ड पुस्तकालय, हाथरस १४।-)
९ ,, रायबहादुर बा० लालबिहारी लाल बी० ए० वकील, सतना १०)
१० ,, हरिवंश साहय, प्रयाग ... १०)
११ ,, बद्रीनाथ शर्मा वैद्य, मिर्ज़ापुर ७॥≡)॥
१२ ,, पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी पो० सराय आकिल ... ७॥-)।
१३ ,, पं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद त्रिपाठी बिरौली पो० मूरतगंज प्रयाग ७॥-)।
१४ ,, ठा० लालसमर बहादुर सिंह, खैरहा, रीवां स्टेट पो० बुढ़ार ७॥-)
१५ ,, पं० नर्मदाप्रसाद मिश्र दीक्षितपुर जबलपुर .... ७॥-)
१६ ,, पं० श्रीनारायण मिश्र हेडक्लर्क नं० १४ हीवेटरोड लखनऊ ... ५-)।
१७ ,, ठा० शिवकुमार सिंह, प्रयाग ५)
१८ ,, ठा० बिन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह असरवली पो० सलेमपुर गोरखपुर ५)

१९ श्रीमती रानी महराज कुवाँरी देवी, धेनुगावां (बस्ती) .... ५)
२० श्रीयुत भगवान प्रसाद मुख़ार, गद्दी-बाबा बाघंबरी दारागञ्ज प्रयाग ५)
२१ ,, सूर्यप्रसाद महाजन मुरारपुर गया ५)
२२ श्रीमती प्रियम्वदा देवी, खुसरूबाग प्रयाग ५)
२३ श्रीयुत भगवानदास जायसवाल मिर्ज़ापुर ५)
फुटकर ५) से कम ... १२७॥-)॥

कुल जोड़ ४२०॥≈)॥

परिशिष्ट [भ]

षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में निर्वाचित स्थायी समिति के पदाधिकारी और सभासद।

पदाधिकारी।

सभापति—बा० श्यामसुन्दर दास बी० ए०, कालीचरण हाई स्कूल लखनऊ
उपसभापति—पं० श्रीकृष्ण जोशी
,, माननीय पं० विष्णुदत्त शुक्ल बी० ए० रायबहादुर
प्रधान मन्त्री—बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन एम०ए० एल एल० बी०
मन्त्री-पं. लक्ष्मीनारायण नागर बी. ए. एल एल. बी.
बा० नवाब बहादुर बी० ए०, एल एल० बी०
आयव्यय परीक्षक-रायबहादुर बाबू लालबिहारीलाल बी० ए०

पूर्व सम्मेलनों के सभापति ५

माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय
,, गोविन्दनारायण मिश्र, गोमठ काशी
,, बदरीनारायण चौधरी, मिरज़ापुर
महात्मा मुन्शीराम जी, गुरुकुल काँगड़ी
पंडित श्रीधर पाठक, लूकरगंज-प्रयाग

सभासद ६५

संयुक्त-प्रान्त २१

बा० रामदास गौड़ एम० ए० प्रयाग
पंडित इन्द्रनारायण द्विवेदी, बुद्धिपुरी प्रयाग
,, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल आयुर्वेद पञ्चानन, प्रयाग
पंडित कृष्णाकान्त मालवीय सम्पादक अभ्युदय प्रयाग
,, रामजीलाल सम्पादक विद्यार्थी प्रयाग
,, द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, दारागंज प्रयाग
,, चन्द्रशेखर शास्त्री ,, प्रयाग
प्रो० ब्रजराज बी०एस० सी०, एलएल० बी० प्रयाग
डा० शिवकुमार सिंह प्रयाग
पंडित राजमणि त्रिपाठी गोरखपुर
पंडित महेशदत्त शुक्ल बी० ए० एलएल० बी० कानपुर
बाबू नरेन्द्रदेव एम० ए० फ़ैज़ाबाद
पंडित बदरीनाथ शर्मा वैद्य, चौमुहानी मिरज़ापुर
बाबू गौरीशङ्करप्रसाद बी० ए० एलएल० बी० बुलानाला, बनारस
बाबू श्रीप्रकाश एम० ए० बैरिस्टर पटला, आगरा
पंडित केदारनाथ भट्ट, आगरा
बाबू पुत्तनलाल विद्यार्थी-विशारद, लखनऊ
डा० पुरुषोत्तमदास कक्कड़, ,,
पंडित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० बुलन्दशहर
,, मुरलीधर मिश्र बी० एल० एल० बी०, खीरी
,, पद्मसिंह सम्पादक 'भारतोदय' ज्वालापुर

बङ्गाल ८

,, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, भारतमित्र कार्यालय, कलकत्ता
,, बाबूरावविष्णुपराड़कर, भारतमित्र कार्यालय, कलकत्ता
बा० राधामोहन गोकुलजी, १५९ डी मछुआ बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता

बाबू राजेन्द्रप्रसाद एम० ए० बी० एल० भवानीपुर, कलकत्ता
पंडित नन्दकुमारदेव शर्मा, ४२ शिवठाकुरलेन कलकत्ता
,, अमृतलाल चक्रवर्ती, कलकत्ता समाचार कार्यालय, कलकत्ता
बाबू घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता
सेठ जगन्नाथप्रसाद झुन्झुनवाला, रानीगंज

बिहार १०

बा० मुरलीधर सराफ बी० ए० एल एल० बी०, भागलपुर
साहित्याचार्य्य पंडित रामावतार शर्मा एम० ए० प्रोफेसर, पटना कालेज बाँकीपुर
पंडित गिरीन्द्रमोहन मिश्र दरभङ्गा
,, सकलनारायण पाण्डेय, आरा
बाबू व्रजनन्दनसहाय वकील, आरा
बाबू सूर्यप्रसाद
बाबू रामरणविजय सिंह खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर
बाबू जगन्नाथप्रसाद एम०ए० एल० एल० बी० वकील, मुज़फ्फ़रपुर
प्रो० बद्रीनाथ वर्मा
बा० नरेन्द्रनारायण सिंह खड्गबिलास प्रेस, बाँकीपुर

मध्यप्रदेश ८

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी सहकारी सम्पादक प्रभा, खण्डवा
बाबू जगन्नाथप्रसाद भानु, बिलासपुर
पंडित रविशङ्कर शुक्ल बी० ए०, रायपुर
,, प्यारेलाल मिश्र बैरिस्टर एटला, छिन्दवाड़ा
,, रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए० हेडमास्टर हितकारिणी हाई स्कूल जबलपुर
पंडित गोविन्दलाल पुरोहित, जबलपुर
रायबहादुर पाण्डेय हनुमानप्रसाद आनरेरी मजिस्ट्रेट, जबलपुर
बाबू माणिकचन्द्र जैन बी० ए० एल एल० बी० वकील, खण्डवा

मध्यभारत ७

रायसाहब पं० सरयूप्रसाद, इन्दौर
चौबे गोविन्दप्रसाद, रियासत पालदेव
लालसूर्यबली सिंह जू देव, दरबार रीवाँ
पंडित गणपतिजानकीराम दुबे हिन्दी-साहित्य-सभा, लश्कर ग्वालियर
रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्द्र ओझा, अजमेर
अधिकारी जगन्नाथ दास विशारद, विरक्त मन्दिर भरतपुर
सेठ दामोदरदास राठी, ब्यावर

बम्बई ४

पंडित भास्कर रामचन्द्र भालेराव सम्पादक हिंदी चित्रमयजगत्, पूना
प्रो० चिन्तामणिगङ्गाधर भानु
पंडित गिरधारीलाल भारद्वाज, हेडमास्टर मित्रमण्डली संस्कृत विद्या स्कूल सक्खर सिन्धि
पंडित नन्दनाथ केदारनाथ दीक्षित, नायब विद्याधिकारी बड़ौदा

मद्रास २

श्रीमान् स्वामी अनन्ताचार्य्य जी काञ्जीवरम्
पंडित मुरलीधर चतुर्वेदी

पञ्जाब ५

श्रीयुत सत्यदेव जी परिव्राजक
पंडित जगन्नाथ पुच्छरत, अमृतसर
प्रो० गोवर्द्धन जी बी० ए०, दिल्ली
लाला हंसराज, लाहौर
दीवान मङ्गलसेन

परिशिष्ट [ट]

षष्ठ सम्मेलन में सहानुभूति-सूचक पत्र तथा तार भेजनेवालों की नामावली।

(पत्र)

१ श्रीयुत् चम्पालाल जौहरी (सुधाकर) खण्डवा
२ ,, क्षेत्रपाल शर्म्मा सुखसंचारक कम्पनी मथुरा
३ ,, मि० चेलाराम डालूराम, करांची
४ ,, रामलाल आर्य्य अमीरवाटिका बांका ज़िला भागलपुर
५ श्रीयुत तारानाथ मिश्र घुरसेना
६ स्वा० हरिनामदास जी, श्री साधुबेलातीर्थ सक्खर सिंध
७ राजा शिवराजसिंह, दुबधापुर ज़ि० बहरायच
८ पंडित झाबरमल शर्म्मा जनरल मैनेजर कलकत्ता-समाचार, कलकत्ता
९ श्रीयुत गोपालराम गहमर
१० ,, रामलोचन पांडे, भागलपुर
११ महाराजा साहब बहादुर बड़ौदा
१२ श्रीयुत लाला पन्नालाल, अम्बाला
१३ ,, कोड़ीमल मालू, नीमच
१४ ,, रामनन्दन प्रसाद नारायणसिंह सेक्रेटरी रामजन्म सरस्वती भवन रियासत सहेंडा पो० भरथपुरा (पटना)
१५ श्रीयुत कालीदत्त, श्रीनगर बेतिया
१६ ,, एम० आर० बोडस, १०२ खोटाचीवाड़ी गिरगाँव बम्बई
१७ ,, चौबे गोविन्दप्रसाद जू देव युवराज, रियासत पालदेव चित्रकूट
१८ ,, बाबू गौरीशङ्कर प्रसाद काशी (बम्बईसे)
१९ पं० सोमदेव शर्मा गुलेरी जयपुर (राजपूताना)
२० श्रीयुत पं० लज्जाराम शर्मा बूंदी (राजपूताना)
२१ ,, घनश्यामसिंह गुप्त दुर्ग
२२ ,, लक्ष्मीनारायण, "लक्ष्मीनारायण प्रेस" मुरादाबाद
२३ ,, जगन्नाथ पुच्छरत, अमृतसर
२४ ,, बैद्यनाथ, मिरज़ापुर
२५ ,, अयोध्याप्रसाद वर्मा, कलकत्ता

(तार)

१ श्रीयुत भगवानदास हालना, हाथरस
२ ,, हीरानन्द पाठक, गोरखपुर
३ ,, सुरेन्द्रनाथ उपाध्याय, गोरखपुर
४ ,, सम्पादक, इन्दु, काशी
५ ,, पंडित व्रजनाथ शर्मा गोस्वामी मंत्री प्रांतीय सम्मेलन, आगरा
६ ,, पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा सम्पा० मनोरंजन आरा
७ ,, पंडित कृष्णशङ्कर तिवारी, बीकानेर
८ श्रीयुत अमरनाथ, मंत्री देवसदन बुटारी
९ ,, साँवलजी नागर, काशी
१० ,, पंडित केदारनाथ पाठक, काशी
११ श्रीमती भाग्यावती धर्मपत्नी पं० रामाधीन तिवारी कानपुर
१२ श्रीयुत पंडित कृष्णकान्त मालवीय, (बम्बई से)
१३ ,, ,, गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, अजमेर
१४ ,, पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अजमेर
१५ ,, पुरुषोत्तमराय उपमंत्री नागरी प्रचारिणी सभा, कलकत्ता
१६ मंत्री श्री एडवर्ड हिन्दी पुस्तकालय, हाथरस
१७ श्रीयुत केदारनाथ गोयनका मंत्री नागरी प्रचारिणी सभा, दिल्ली
१८ श्रीयुत जगन्नाथ पुच्छरत भू० पू० मंत्री—नागरी प्रचारिणी सभा, अमृतसर
१९ श्रीयुत मनीराम कपूर, कानपुर
२० मंत्री बङ्गीय साहित्य परिषद, कलकत्ता
२१ मंत्री अपरइंडिया एसोसियेशन, कलकत्ता

परिशिष्ट [ठ]

प्रतिनिधि सूची।

अलवर।

श्रीयुत ब्रज नारायणजी।

आगरा।

,, रामरत्नजी।

आरा।

,, सुपार्श्वदासजी गुप्त।
,, माहेश्वरीप्रसादजी पांडेय।
,, शुकदेवसिंहजी।
,, शिवपूजन सहायजी।
,, शिवशङ्करप्रसादजी।
,, श्यामाकान्तजी।

इटावा।

,, पुत्तूलालजी शर्मा।

इन्दौर।

,, प्रयाग नारायणजी सङ्गम।

एटा।

,, जयन्तीप्रसादजी।

कलकत्ता।

,, जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी।
,, राधामोहन गोकुलजी।
,, बिट्ठलदासजी कुठारे।
,, नन्दकुमारदेव शर्म्मा।
,, बाबूराव विष्णु पराड़कर।
,, गणेशदत्तजी शर्म्मा।

कानपुर।

,, देवीप्रसादजी द्विवेदी।
,, सेठ रामगोपालजी।
,, महेशदत्तजी शुक्ल।

काशी।

,, जगन्मोहनजी वर्मा।

श्रीयुत रामचन्द्रजी वर्मा।
,, लाला भगवानदीनजी।
,, बालमुकुन्दजी वर्मा।
,, अमीरसिंहजी।
,, लक्ष्मीचन्दजी।
,, रामचन्द्रजी शुक्ल।

खंडवा।

,, मुन्नालालजी।
,, नर्मदाशंकरजी शुक्ल।

गया।

,, सूर्यप्रसादजी महाजन।
,, गङ्गाधरजी शर्म्मा।
,, भगवतीप्रसादजी।
,, रामचीज पांडेय।
,, सत्यानन्द शिवलाल।

गाज़ीपुर।

,, देवनन्दन त्रिपाठी।

गोंडा (नवाबगंज)

,, छेदीलालजी।

गोरखपुर।

,, अयोध्यासिंहजी उपाध्याय।
,, महावीरप्रसादजी पोद्दार।
,, शिवकुमार शास्त्री।
,, राजमणिजी त्रिपाठी।

चित्रकूट।

,, चौबे दरियावसिंहजी।
,, बलदेवप्रसादजी।
,, जानकीप्रादजी।

जबलपुर।

,, दयाशङ्कर झा।
,, विष्णुदत्तजी शुक्ल।
,, सेठ बृजराजजी।
,, महन्त चतुर्भुजदासजी।
,, मुन्नालालजी मिश्र।

श्रीयुत् नर्मदाप्रसादजी मिश्र।
,, सुखरामजी चौबे।
,, तुलसीदासजी।
,, अम्बाप्रसादजी।

ज्वालापुर।

,, पद्मसिंहजी शर्म्मा।
,, रामचन्द्रजी शर्म्मा।

झांसी।

,, भगवन्नारायण भार्गव।

नरसिंहपुर।

,, दौलतसिंहजी वकील।

पूना।

,, राशचन्द्र भालेराव।

प्रयाग।

,, रामदासजी गौड़।
,, गङ्गाधर टंडन।
,, चन्द्रशेखर शास्त्री।
,, ज्वालाप्रसाद चतुर्वेदी।
,, श्रीधर पाठक।
,, रामजीलाल शर्मा।
,, इन्द्रनारायणजी द्विवेदी।
,, महादेवप्रसादजी भट्ट।
,, गुरुनारायण खन्ना।
,, विश्वम्भरनाथजी।
,, सत्यानन्दसिंहजी।
,, परमानन्दसिंहजी।
,, हनुमानप्रसादजी।
,, द्वारकानाथजी।
,, हनुमानप्रसादजी।
,, सन्तलालजी।
,, मुरली मनोहरजी।
,, सङ्गमलालजी वैश्य।
,, बाँकेलालजी।
,, खुशबख़्तरायजी।
,, प्रयागनारायणजी।

श्रीयुत् ब्रजमोहनलालजी।
,, साँवलदासजी।
,, रामदीनजी वैश्य।
,, शम्भूनाथजी।
,, सदनलालजी।
,, कन्हैयालालजी।
,, छेदीलालजी।
,, मुन्नीलालजी।
,, ब्रजमोहनदासजी।
,, रामदास बरई।
,, सरदार सन्तोषसिंहजी
,, शैलनाथमुकुर्जी।
,, जनार्दन भट्ट।
,, नवाब बहादुर सिंह।
,, लक्ष्मीशङ्कर अवस्थी।
,, पुरुषोत्तमदास टंडन।
,, रुद्रनारायणजी।
,, ओंकारनाथ वाजपेयी।
,, शिवकुमारसिंहजी।
,, रामाधारजी वाजपेयी।
,, रासबिहारी शुक्ल।
,, मुद्रिकाप्रसादजी प्रधान।
,, बैजनाथ शर्मा।
,, लक्ष्मीकान्तजी शर्मा।
,, काशीरामजी।
,, रावबहादुर केशवकृष्ण गोरे।
,, शिवशङ्करराय शोकहा।
,, लक्ष्मीनारायणजी।
,, शेषधरजी शर्म्मा।
,, महन्त बालकपुरीजी।
,, सिद्धिनाथ दीक्षित।
,, नरेन्द्रनारायणसिंह।
,, रामकृष्णानन्दगिरि।
,, द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी।
,, क्षेमकरणदास त्रिवेदी।
,, हरिरामजी झा।
,, रामलालजी राजवैद्य।

श्रीयुत् द्वारकाप्रसादजी ।
,, मांगीलालजी ।
,, उमाशङ्करजी ।
,, रेवतीप्रसादजी ।
,, रामलाल चतुर्वेदी ।
,, शीतलप्रसाद तिवारी ।
,, जानकीप्रसादजी ।
,, केशवचन्द्रसिंह ।
,, महावीरप्रसाद त्रिपाठी ।
,, लक्ष्मीनारायणजी नागर ।

फ़तेहपुर ।

,, मन्नूलालजी ।
,, विष्णुदत्तजी गुप्त ।

बस्ती ।

,, लालरुद्रनाथसिंहजी ।

बांकीपुर ।

,, बद्रीनाथ वर्म्मा ।
,, रामानन्दजी द्विवेदी ।

बुलन्दशहर ।

,, हरप्रसादजी शर्म्मा ।

भरतपुर ।

,, अधिकारी जगन्नाथदासजी विशारद ।
,, हीराशङ्करजी ।
,, गयाप्रसादजी ।
,, शचीकान्तजी ।
,, जगन्नाथप्रसादजी ।
,, बनवारीलालजी ।
,, देवकीनन्दनजी ।
,, नत्थनलालजी ।
,, शालिग्रामजी ।
,, किरोड़ीमलजी ।
,, रामप्रसादजी ।
,, मोतीलालजी ।
,, हरिप्रसादजी ।
,, सुखलालजी ।

श्रीयुत् गुलाबजी ।
,, गङ्गाचरणजी ।
,, रामप्रसादजी ।
,, बालकृष्णजी दुबे ।

भागलपुर ।

,, लक्ष्मीनारायणजी डिडवानिया ।
,, चतुर्भुजजी ।
,, बेगराजजी शर्म्मा ।
,, मुरलीधरजी सराफ़ ।
,, जीवानन्दजी शर्म्मा ।

मिरज़ापुर ।

,, प्रमथनाथ भट्टाचार्य ।
,, भगवानदासजी जायसवाल ।
,, वैद्यनाथजी गुप्त ।
,, बदरीनाथजी शर्म्मा वैद्य ।
,, रामानन्दजी त्रिपाठी ।

मुजफ्फ़रपुर ।

,, वैष्णव पुरुषोत्तमदासजी ।
,, जगन्नाथप्रसादजी पाण्डेय ।
,, आद्याप्रसादजी शर्म्मा ।

मोतीहारी ।

,, वागीश्वरीप्रसादजी ।

रायबरेली ।

,, महावीरप्रसादजी ।

रानीगंज ।

,, कन्हैयालालजी झुनझुनवाला ।
,, जगन्नाथप्रसादजी ।
,, आशुतोष चक्रवर्ती ।
,, रामयशजी उपाध्याय ।
,, भवानीचरणजी श्रीवास्तव ।

रीवां ।

,, लालबद्रीप्रतापसिंहजी ।
,, भानुसिंहजी ।
,, लालसूर्यबलीसिंहजी ।
,, कृष्णवंशसिंहजी ।

लखनऊ।

श्रीयुत् हरप्रसाद ओकामल।
,, लक्ष्मणस्वरूप श्रोत्रिय।
,, नाथूरामजी।
,, बालमुकुन्द वाजपेयी।
,, श्यामसुन्दरजी।
,, रघुबरदयालजी मिश्र।
,, लक्ष्मीधर शुक्ल।
,, पुरुषोत्तमदास कक्कड़।
,, महेशनाथ शर्म्मा।
,, पुत्तनलालजी विद्यार्थी।
,, चन्द्रिकाप्रसादजी।
,, श्यामसुन्दरदासजी।
,, गोपाललालजी खत्री।

लखीमपुर।

,, मुरलीधरजी मिश्र।

लालगंज।

,, राजनारायणजी शुक्ल।

शाहजहांपुर।

,, शालिग्रामजी।

सतना।

,, रायबहादुर लालाबिहारीलालजी।
,, शारदाप्रसादजी।
,, भरतसिंहजी।
,, भवानीदत्तजी।
,, गुरुप्रसादजी।

सक्कर (सिन्ध)

,, गिरधारीलालजी भारद्वाज।

सरदार शहर (राजपूताना)

शोभाचन्द्रजी।

हरिद्वार।

,, वैद्य मित्रजी।
,, प्राणनाथजी।

परिशिष्ट [ड]

षष्ठ सम्मेलन के सहायतार्थ धन देनेवालों की सूची।

श्रीयुत् जगन्नाथप्रसाद झुनझुनवाला, रानीगंज १००)
,, पुरुषोत्तमदास टण्डन प्रयाग २५)
,, गोपालशरण ठाकुर नईगढ़ी, रीवां २०)
,, गुरू बख्सराय सराफ, गुजरानवाला १५)
,, गणेशविहारी मिश्र, लखनऊ १०)
,, बल्देवसिंहजी, मोहनीभवन देहरादून १०)
,, उपाध्याय पं बद्रीनारायण चौधरी, मिर्ज़ापुर १०)
,, हिन्दी प्रवर्द्धिनी सभा, शाहजहांपुर ८)
,, अयोध्याप्रसाद जी वकील, बलरामदे स्ट्रीट कलकत्ता ५)
,, बांके बसन्तलाल अग्रवाल, मिर्ज़ापुर ५)
,, गोकुलचन्द ,, ५)
,, साहू महादेवप्रसाद काशीप्रसाद मिर्ज़ापुर ५)
,, बैजनाथप्रसाद, मिर्ज़ापुर ५)
,, बालगोविन्दराम रेलवे स्टेशन गया ५)
,, बालगोविन्द प्रसाद, गया ५)
,, भवानीप्रसाद नायक, मछलीगांव पो० फरेंदा, गोरखपुर ५)
,, कोलडराम महादेवराम, मिर्ज़ापुर ३)
,, गोविन्दराम छेदीराम ,, ३)
,, कन्हैयालाल ओंकारनाथ ,, २)
,, साहू माधोप्रसाद ,, २)
,, विश्वेश्वर प्रसाद ,, २)
,, बलदेवप्रसाद सरजूप्रसाद ,, २)
,, गोपाललाल खत्री, लखनऊ १)
,, राय विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिर्ज़ापुर १)
,, जगतनारायण टंडन ,, १)
,, रामकुमार मुन्दड़ा ,, १)
,, लक्ष्मीनारायण शर्म्मा ,, १)

२५७)

पेज ३३ से ७७ तक व टाइटल पेज बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव के प्रबन्ध से स्टैन्डर्ड प्रेस प्रयाग में छपा।

षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग।

कार्यविवरण-दूसरा भाग।

षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग--संवत् १९७२

कार्यविवरण-दूसरा भाग

[सम्मेलन में उपस्थित किये गये लेखों और कविताओं का संग्रह]

सम्मेलन की स्थायी समिति द्वारा प्रकाशित ।

मूल्य ।।।)

लेखमाला की विषय-सूची

कविता

साहित्य

नागरी लिपि

प्रारम्भिक शिक्षा

सामयिक अवस्था

सम्मेलन का कार्य

मिश्रित

षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

कार्यविवरण-दूसरा भाग

लेखमाला

कविता

साहित्य।

[लेखक-बाबू राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

(१)

है वही साहित्य जिसमें हो अनूठी सुठि झलक।
अभ्युदय जीवन नया हो खोलदें सोते पलक॥
भूतकालिक तत्त्व हों इतिहास के हस्तामलक।
इक कड़ी टूटी नहो जिस शृङ्खला की अब तलक॥
जातियों औ व्यक्तियों का व्यक्ति दर्शक दर्श हो।
राष्ट्रों के भाव गत स्वातन्त्र्य का आदर्श हो॥

(२)

आत्मा हो राष्ट्र की अरु चाल जनपद की प्रकट।
व्यर्थ मन की कल्पना के जायँ सारे जाल कट॥
भाव भाषा की गुलामी का कटे बन्धन विकट।
दृश्य सारे प्राकृतिक हों व्यक्त पूरे निष्कपट॥
जनपदों के भाव की प्रति मूर्त्ति शुचि साहित्य है।
कालपात्र स्वभाव मत दर्शक सुरुचि साहित्य है॥

(३)

भिन्न देशों के पढ़ें साहित्य के इतिहास को।
भिन्न कालों के गुनें भावों के हम आवास को॥
भिन्न जातों के लखें साहित्य मूल निवास को।
भिन्न वर्गों व्यक्तियों के जो गिने प्रश्वास को॥
रंग शैली ढंग शोभा में बड़ा अन्तर मिले।
लक्ष्य इच्छा नीव सीवों की पृथक् रङ्गत खिले॥

(४)

रोक बिन जब देस में साहित्य का पौदा पले।
स्वान्ध कर जल वायु में मनवाञ्छित फूले फले॥
धर्म्म, जनपद, राज्य का फन्दा न हो उसके गले।
तब अमर साहित्यका संसार में शाका चले॥
है कहां साहित्य तरु जो वृद्ध परिमित भूमिपर।
जो हुआ हो लोक में आनन्द-प्रद निर्भय अमर॥

(५)

है यथेच्छाचार का साहित्य पर डंडा बुरा।
कंठ पर साहित्य के अच्छा नहीं चलना छुरा॥
जो दबा साहित्य यथेच्छाचार से हो बापुरा।
बन कभी सकता नहीं संसार का उत्तम धुरा॥
ईश दक्षिण दृष्टि का साहित्य सच्चादान है।
जाति का निर्माण भी साहित्य का निर्माण है॥

(६)

कब समुन्नत हो सके उस देश की कौशल कला।
हो जहां हर बात पर साहित्य का घुटता गला॥
राज पाधा अरु यथेच्छाचार का भारत छला।
हो गया मिट्टी कभी जो था भला फूला फला॥
आज भी हम देखते हैं शिर पै यह त्रयशूल है।
चार दिक् सुनते हैं हम यह भूल है वह भूल है॥

(७)

दर्शनों विज्ञान के लिखने का कब साहस परे।
प्राकृतिक सौन्दर्य्य चिन्ता चूरका क्या चित हरे॥
नीति वो इतिहास के कथते जो जिह्वा खो धरे।

शीश परलख असि लटकती है कठिन जो कुछकरे॥
वृद्धि कर सकते नहीं साहित्य के मैदान को।
भूमि भारत और नभ की क्या दिखावें शानको॥

(८)

चाहिये उस राष्ट्र के इतिहास को पढ़ना उन्हें।
राष्ट्र के साहित्य की सूरत समझूत की जिन्हें।
खोज है संसार में और चाह हैं देखें सुने।
अन्यतर भ्रम जाल के पीछे बुरा जाना गिने॥
व्यक्तियों की भाँति ही है राष्ट्रों की भी गती।
बद्धक्रम औ श्रृङ्खलित है राष्ट्र जीवन संस्थिती॥

(९)

सर्व देशी औ स्वयम्भव भाव जो उद्भासता।
सो प्रजा मस्तिष्क फल साहित्य देता है बता॥
रंग क्या था ढङ्ग क्या था और कैसी सभ्यता।
भूष्टता उत्कृष्टता स्वातन्त्र्य वा परतन्त्रता॥
नीतिका मर्य्याद का गुण ग्राम आविष्कार का।
दिन दशा का राज नैतिक पात का उद्धार का॥

(१०)

काल दर्शक कक्ष है साहित्य का निर्मल भला।
दे मिला इतिहास की खोई हुई सब श्रृङ्खला॥
अन्धकारावृत समय को देखलो दीपक जला।
जाति की संस्था व रुचिका पूर्वका पर्दा टला॥
उपनिषद दर्शन न होते आज भारत में कहीं।
धरम वा इतिहास होता बेकदर जाता जहीं॥

(११)

स्नेह ऐसा भूत है जब जातियों के शिर चढ़ा।
कौन फन्दे से बचा इसके सुकवि पंडित पढ़ा॥
कौनसा साहित्य है जिसमें नहीं है यह गढ़ा।
पर हमारा ही गला यह फांस कर आगे बढ़ा॥
बेंच हर हर व्यक्तिको दिखला दिया नर-योषिता।
है इन्हीं का प्रेम जग में और सब कुछ लापता॥

(१२)

है वणिज व्यवसाय कृषि उद्योगथल साहित्य का।
चित्रकारी मूरती विज्ञान बल साहित्य का।
न्याय शासन धर्म दर्शन नीति दल साहित्य का।
एक थोथी शब्द रचना मल विमल साहित्य का॥
देश कालरु पात्र की पहिचान इन रचनों से है।
उर प्रकटता व्यक्तिका क्या जातिका वचनोंसे है॥

(१३)

न्याय शासन राष्ट्र के साहित्य समानान्तर चले।
वर्ष त्रयदश सौ तलक की हम दशा को देखलें॥
दीर्घठंडी श्वास लेकर हाथ से आंखें मलें।
क्या कहें किससे कहें कैसे कहें जो दिल जलें॥
नीच औ अतिशय नपुंसक हाय कैसे हो गये।
रत्न कैसे हाथ से हा शोक! कैसे खो गये॥

(१४)

पागलों की बात से जिनको तनिक भी प्यार है।
जिस हृदय में दीन भारत प्रेम का सञ्चार है॥
जन्म भर साहित्य जननी जिनको प्राणाधार है।
सद्गुणों के ग्रहणमें जिनका सुखद संसार है॥
उन मनुष्यों के लिये यह प्रेम का उपहार है।
कर श्रवन राधे सतत साहित्य का यह सार है॥

सम्मेलन-स्वागत-पञ्चदशी

—:o:—

[ले०—पंडित सुन्दरलाल शर्मा त्रिपाठी]

षट्पदी

जय जय भारत-भव्य केर, भूषण प्रधानतर।
अति उदार सुविचार सकल साहित्य सुजसधर॥
मूर्त्तिमन्त गुणवन्त-कन्त मण्डपहिं विराजत।
एक साथ इहि भाँति देखि आवत अनन्द कत॥
सबको उमंग इक संगही, इहि औसर फूटो परै।
फिर हिन्दुनके प्रतिगेह महँ, किहिं प्रकार हिंदीभरै॥१॥
यहै उच्च अभिलाष खास है हृदय हिलोरत।
यहै प्रेरणा एक आज, हम सब कहँ जोरत॥
हिन्दी हूँ के हेत कबहुँ अस औसर ऐहै।
तैंतिस कोटि सपूत याहि जिहि दिन अपनैहैं॥
यह हिन्दी हिन्दुस्तानकी मुख्य राष्ट्र भाषा बनै।
जब भारतीय छोटे बड़े याको पढ़ि गौरव गनै॥२॥
अति अमूल्य यह समय शिशुनकर जनि खराब हो।
बुधि बल निर्बल करनि न डिक्शनरी किताब हो॥
विषय ज्ञान को समय मिलै, निकलैं गुणज्ञ नर।
विद्वानों से बहुरि अहो भारत जावै भर॥
हों हिन्दुनकी 'युनिवर्सिटी' हिन्दी-धुनि उसमें मचै।
प्रति प्रांत और प्रति ग्राम, घर मत कोई खाली बचै॥३॥
फिर भो तुलसी सूर और केशव प्रकटावैं।
फिर भी कितनेहु हरिश्चन्द्र भारत महँ आवैं॥
कितनेहु कपिल, कणाद, व्यास, गौतम समान नर।
भारत भर महँ भरैं, गुणी निकरैं सब घर घर॥
फिर शंकर मंडन मिश्र से भारत की शोभा करैं।
फिर दयानन्द दस पांच होकरके सत् शिक्षा भरैं॥४॥
बहुरि राम औ कृष्ण धर्म अर्जुन समकारी।
भीम समान असीम शक्ति औ पौरुष-धारी॥
जनमैं फिर भी भोज शिवा परताप सिंह सम।
करहिं देशको शीश बहुरि उन्नत अनन्यतम॥
फिर सावित्री सीता सरिस, रमणी से भारत भरैं।
फिरभी लक्ष्मीबाई प्रभृति लीलावति 'जगमग' करैं॥५॥
प्रगट हकीकतराय होंहि सारे घर घर महँ।
भरत और अभिमन्यु सरिस सुत मिलहिं सबन कहँ॥
फिर भारत अवतरहिं, गुरू गोविन्दसिंह सम।
तिलक और गोखले होंहि अगणित पुरुषोत्तम॥
निकरैं रमेश और रानडे जिनसे यश प्रभुता बढ़ै।
हर प्रान्त बीच इस हिन्दके फिर दादाभाई कढ़ै॥६॥
श्री रवीन्द्र बाबू सुरेन्द्र अरविन्द अमित हों।
श्री जगदीश प्रफुल्लचन्द्र आदिक जित तित हों॥
फेर राम मोहन प्रकटैं केशव पुनि आवैं।
जहां तहाँ प्रति ठौर विवेकानन्द दिखावैं॥
फिर रामकृष्ण स्वामी यहां वाक्य-सुधा वरषणकरैं
इस आलस-प्लावित हिन्द कहँ, फिर चेतन*चेतनकरैं
विप्र वंश महँ होंय अम्बिकादत्त व्यास दस।
और अयोध्यानाथ सरिस जनमहिं गृह गृह बस॥
तुकाराम औ रामदास नानक पुनि आवैं।
फिर कबीर गंभीर नाद सों भजन सुनावैं॥
फिर रामानुज बल्लभ निकरि जाति देश उज्वल करैं।
सौ दो सौ मुंशीराम हों गुरुकुल से भारत भरैं॥८॥
रामतीर्थ अवतरैं लाख दो लाख यहां पै।
कई लाजपतराय, लाजपत हमरी राखैं॥
दरभंगा पति सरिस जहां तहँ नृप-वर पावैं।
नृपन बीच दस पांच सयाजी राव दिखावैं॥
फिर मालवीय महराज कइ विप्रवंश जावैं गने॥
टोली समेत झोली भरे, राष्ट्र हेत भिक्षुक बने॥९॥
आल्हा ऊदल बहुरि यहां कितने ही आवैं।

*श्री चैतन्य महाप्रभु।

कई सैकड़े रामभूर्ति मनुसई दिखावैं ॥
देश जाति हित लड़ें, सहैं दुख, मुख नहिं मोरैं।
ऐसे व्रती अनेक देख परिहैं, प्रति खोरैं ॥
बिन आह किये जो हिम्मती बड़े कड़े प्रणमें अड़े ॥
ऐसे अनेक गांधी यहां घर घर में पैहैं खड़े ॥ १० ॥
जा दिन शिक्षा उच्च देश-भाषा अपनैहै ।
हिन्दी हिंदुन बीच राष्ट्र-भाषा बनि जैहै ॥
लैहौ देख प्रत्यक्ष गुणी तब घर घर कढ़िहैं ।
यह प्रस्ताव सुकार्य-रूप में, जब अनुसरिहैं ॥
यह देश शेष-विपदा करे, फिर भी उन्नति पै चढ़ै ।
ऊपर सारे संसार में फिर अपनो मस्तक करै ॥११॥
कविवर लेखकवृन्द ! नहीं कुछ बड़ी बात है।
यह युग लैबो सिर्फ आपही केर हाथ है॥
चलौ उठौ भिड़ पड़ौ, देस साहित से पाटो।
मत कलंक मढ़ सकैं, अमुक ह्यां पर है घाटो ॥
नूतन सिरजौ मौलिक रचौ अनुवादित चाहे करौ
पर 'येन केन, परकार सत साहित से हिन्दी भरौ१२
भाषा-भेद विहाय व्यक्तिगत द्वेष भुलावौ।
'गीत गपोड़ी' छांड़ि, गुणीजन को गुण गावौ।
गद्य होहि की पद्य सरस उपदेश प्रचारौ।
सभी विषय में सब प्रकार के ग्रंथ निकारौ ॥
कृषि-सिल्प आदिही क्यों नहो,जिनको जिनमें ज्ञानहो
सन्मुख समाजके वह धरैं,छोटे हों कि महान हो१३
धनिक द्रव्य-बल देंय गुणी निज ज्ञान बगारैं।
शारीरिक कर्तव्य-दक्ष-गन, प्रेस निकारैं ॥
पुरस्कार औ पदक देहु सत्कार करावौ।
ग्रंथ- प्रणेतन को पहिले उत्साह बढ़ावौ ॥
फिर ग्रंथ प्रकाशक-मंडली, ठौर ठौर जारी करौ।
व्यय-मात्र द्रव्य लै पुस्तकें, पढ़वैयन आगे धरौ॥१४॥
सुचि मासिक साप्ताहिक दैनिक पत्र निकारो।
कूड़ो करकट तें 'कालम' को करो न कारो ॥
सुकवि सुलेखक ढूंढ़ ढूंढ़ कर लेख लिखावौ।
जहां तहां प्रति ग्राम, वाचनालय खुलवावौ ॥
फिर चलते फिरते घूमते, वाचन-गृह चालू करौ।
कवि सुन्दर जो उन्नति चहत,यह शिक्षा हियमें धरौ१५

हिन्दी-साहित्य ।

——:o:——

[लेखक—श्रीयुत् ज्ञानदत्त विद्यार्थी]

विस्तीर्ण करना है हमें हिन्दी के सब उद्देशको।
लेखनी की नोक से अब है जगाना देश को॥
हिन्दी विरोधी भाइयों का भ्रम मिटाना है सभी।
कल्प वृक्ष स्वरूप में हिन्दी दिखाना है अभी ॥ १ ॥
दुःख है संताप है अरु शोक है भारी अभी।
देख करके हिन्द की यह दुर्गती न्यारी सभी ॥
शोक से हैं कह रहे अरु रो रहे ये जन सभी।
हिन्द हिन्दी भी कहीं ये भाग्यशाली थे कभी ॥२॥
उन्नती की शक्तियां अरु जाति का वैभव कहां।
छाई छटा है नागरी परिपूर्ण हो करके कहां ॥
अद्भुत मनोहर युक्तियां अरु काव्य रचना है कहां।
साहित्य हिन्दी है जहां साहित्य हिन्दी है जहां ॥३॥
सर सब्ज़ खेती की तरह वह ज्ञान जोती है कहां।
गुरु पदों में प्रेम अरु अनुराग वेदों में कहां ॥
हतभाग्य भारतवर्ष की वह उन्नती भी है कहां।
साहित्य हिन्दी है जहां साहित्य हिन्दी है जहां ॥४॥
गुरुकुलों की चाल अरु पुरुषार्थ पौरुष है कहां।
ब्रह्मचर्य्य की वह शक्तियां कल्याणकारी है कहां।
प्रेम का पीयूष घट अरु एकता भी है कहां।
साहित्य हिन्दी है जहां साहित्य हिन्दी है जहां ॥५॥

बाप के कहने से मित्रो बन का जाना है कहां।
जानकी सी पत्नियों का प्रेम पति पै है कहां॥
भरत सम लघुभाइयों का त्याग व्रत वह है कहां।
साहित्य हिन्दी है जहां साहित्य हिन्दी है जहां॥६॥
धर्म्म पै बलिदान अरु गौओं की रक्षा है कहां।
कंस का विध्वंस अरु वंशी बजाना है कहां॥
अरि जनों का नाश अरु वह सिंह पदवी है कहां।
साहित्य हिन्दी है जहां साहित्य हिन्दी है जहां॥७॥
कुन्ती तनय वह वीर योधा धनुषधारी है कहां।
चाप शर की शूरता अरु धीरता रण में कहां॥
विश्वकर्मा के सरीखे चित्रकर्ता हैं कहां।
साहित्य हिन्दी है जहां साहित्य हिन्दी है जहां॥८॥
दान में नैपुराय और स्वराज्य त्यागन है कहां।
वचन पालन के लिये नृप डोम घर जाता कहां॥
नागरी की धूम अरु वह शास्त्र चर्चा है कहां।
साहित्य हिन्दी है जहां साहित्य हिन्दी है जहां॥९॥
व्याकरण की फक्किका अरु न्याय वैशेषिक कहां।
पाणिनि पतंजलि आदि मित्रो शास्त्र कर्ता हैं कहां॥
बुद्धि बलकी अतुलता का बुद्ध स्वामी है कहां।
साहित्य हिन्दी है जहां साहित्य हिन्दी है जहां॥१०॥
शंकर सरीखे स्वामियों का त्याग प्यारा है कहां।
गिन्नियों के ढेर पर धिक्कार करना है कहां॥
हाय भारतवर्ष की वह शान बाकी है कहां।
साहित्य हिन्दी है जहां साहित्य हिन्दी है जहां॥११॥
ईंट औ ढेलों को सहकर देश की सेवा कहां।
स्वामी दया आनन्द मित्रो प्राण देता है कहां॥
अभ्यागतों का मान अरु सच्ची कथायें हैं कहां।
साहित्यहिन्दी है जहां साहित्य हिन्दी है जहां॥१२॥
गुरुकुलों की धूम अरु ब्रह्मचर्य्य का धारण कहां।
ऋषि दया आनन्द की वह वेद वाणी है कहां॥
आर्य्यभाषा की प्रणाली ज्ञान कवि वह है कहां।
साहित्यहिन्दी है जहां साहित्यहिन्दी है जहां॥१३॥

* * * *

हिन्दी का सत् प्रेम हृदय में आय बसा है।
चित में, मनमें, प्राण, नयन में धाय धँसा है॥
हिन्दी की यह कीर्ति विमल मन में छाई है।
जहां देखता वहीं ज्योति पलटा खाई है॥ १४॥
चन्द्र सूर्य्य नभ आदि तेरे बहु विधि उस बल से।
चमक रहे हैं आज पुष्प किस प्रेम विमल से॥
ज्यों ज्यों विकसै तेज प्रेम दृढ़ त्यों त्यों होता।
त्यों त्यों रचता छन्द याद तेरी कर रोता॥ १५॥
तेरीही वह कीर्ति हृदय में राज रही है।
रूप रहित तू ज्ञानदत्त को साज रही है॥
इस कविता की कीर्ति पान कर मैं जीता हूं।
यदपि देह से युक्त जगत से अब रीता हूं॥ १६॥

बन्दना

[ले०—पंडित रमाशंकर अवस्थी (रमेश)]

हिन्दी

(१)

हे वैदिक भाषा की सुचिन्ह ।
हे शौर्यक मागध रूप-भिन्न ॥
हे संस्कृत की पुत्री विशेष ।
हे पाली डिङ्गल युक्त-भेष ॥

(२)

क्यों हुई देवि संकुचित आज ।
क्यों गुप्त हुआ वह राज-साज ॥
क्यों लुप्त हुई अवधान हाय !
क्यों रही कालिमा हिन्द छाय ॥

(३)

अब कृपया कीजै दया-दृष्टि ।
अब कर दीजै वरदान वृष्टि ॥
अब करहु अनुग्रहपूर्ण काज ।
अब मेटहु यह सब दुःख लाज ॥

(४)

हे देवि होय चहुं दिशि प्रचार ।
हे देवि मिटै अब अन्धकार ॥
हे देवि विहित हो सर्वमान्य ।
हे देवि राष्ट्रभाषा न अन्य ॥

साहित्य

(१)

हे सर्व मान्य साहित्य देव ।
हे विश्वविदित नित स्वयं एव ॥
हे हिन्दी भाषा-कीर्त्तिदान्य ।
हे पुराभूत इतिहास मान्य ॥

(२)

क्यों निम्न दशा यह हुई आज ।
क्यों हीन छीन छाये कुसाज ॥
क्यों नहीं रही प्राची-प्रसिद्धि ।
क्यों मिटी हाय ! वह जगत-सिद्धि ॥

(३)

अब वेग करहु शुभ कृपा-दान ।
अब होय सदा को अचल मान ॥
अब बनें ग्रन्थ भूषण अमोल ।
अब उपमा जिनकी हो अतोल ॥

(४)

हे देव रहो तुम अनुपमेय ।
हे देव सर्वदा ध्येय श्रेय ॥
हे देव होय यदि सुकृत-सेव ।
हे देव हिन्दि-साहित्य एव ॥

सम्मेलन

(१)

हे हे सम्मेलन अति अनूप ।
हे प्रीति-दान मैत्री-स्वरूप ॥
हे हिन्दी भाषा के अधार ।
हे उन्नतिकारक शुभ विचार ॥

(२)

क्यों हिन्दी की है दशा हीन ।
क्यों हुई संकुचित मुखमलीन ॥
क्यों अधोगण्य साहित्य आज ।
क्यों चहुंदिशि है छाया कुसाज ॥

(३)

अब होय स्वभाषा महामान्य ।
अब उपमा जिसकी हो न अन्य ॥
अब उन्नत हों साहित्य अंग ।
अब स्थिरता होवे न भङ्ग ॥

(४)

हे देव तुम्हारा बढ़ै मान ।
हे देव अचल हों कृति-विधान ॥
हे देव राष्ट्र भाषा न अन्य
हे देव यही हो वर प्रदान्य ॥

साहित्य

——:०:——

गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थोंका परिचय और उनकी आलोचना

[लेखक—पण्डित विनायकराव]

कहां तो महाकवि, भक्तशिरोमणि, दीर्घजीवी महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी की अनुपम, गम्भीर सर्वोत्तम कविता और कहां मुझ सरीखे अल्पमति विषयी जीव की बुद्धि! इसी कारण से तुलसीदास जी के विषय पर लेखनी उठाते समय महाकवि कालिदास जी के इस कथन का मुझे स्मरण आने लगा—कि "बावना अपने छोटे हाथों से दुस्तर सागर को पार करने का विचार करे तो वह कहां तक सफल मनोरथ होगा"। इस प्रकार से मानो विचार सागर में मग्न होना ही चाहता था कि अकस्मात् गोस्वामी जी के कथन रूपी बेड़े का यह सहारा पा गया।

"सब जानत प्रभु प्रभुता सोई।
तदपि कहे बिन रहा न कोई॥

इसी के आधार से इस कार्य महोदधि के पार जाने का साहस हो गया। प्रार्थना है कि विद्वज्जन महानुभाव भी अपनी महानुभावता रूपी पतवारों से सहायता देकर मेरा बेड़ा पार लगावेंगे।

हिन्दीके धुरंधर कवि तुलसीकृत ग्रंथोंका परिचय करानेमें मैंने अपनी बुद्धि और अनुभवके अनुसार यह क्रम मानकर उनकी आलोचना भी क्रमशः लिखी है। आठ वृहत् ग्रंथ, सात मझोले और पांच छोटे, इनके अतिरिक्त छः पुस्तकें ऐसी हैं जो बहुधा देखने में नहीं आतीं।

(क) वृहत् ग्रंथ—(१) रामचरित मानस (२) विनय पत्रिका, (३) गीतावली, (४) कवित्त रामायण, (५) दोहावली, (६) रामाज्ञा, (७) कुंडलिया रामायण, (८) राम सतसई।

(ख) मझोले ग्रंथ—(९) जानकी मंगल, (१०) पार्वती मंगल (११) बरवै रामायण, (१२) वैराग्य सन्दीपनी (१३) कृष्णावली (१४) रामलला नहछू, (१५) राम नाम कला मणि कोष मंजूषा,

(ग) छोटे ग्रंथ—(१६) कलिधर्माधर्म निरूपण, (१७) छप्पय रामायण, (१८) हनुमत बाहुक (हनुमान् बाहुक) (१९) हनुमानचालीसा, (२०) संकट मोचन

(घ) वे ग्रन्थ जो बहुधा देखने में नहीं आते—(१) राम सलाका, (२) छन्दावली, (३) कड़खा रामायण (४) रोला रामायण (५) झूलना रामायण और (६) पद्यावली

१—रामचरित मानस (रामायण)

हिन्दी साहित्य में तुलसीकृत रामायण से बढ़कर अन्य प्रसिद्ध ग्रंथ नहीं है। इसका प्रचार सब श्रेणी के लोगों में किसी न किसी रूप से है। इसका उल्था उर्दू, मराठी, बंगाली और अंग्रेज़ी भाषाओं में भी हो गया है।

यह ग्रंथ धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति-युक्त सभी आर्षग्रन्थों के अनुसार सीधी सादी भाषा में इस प्रकार से उदाहरण के साथ पक्षपात रहित लिखा गया है कि शैव, शाक्त, वैष्णव किसी के सिद्धान्तों से इसका विरोध नहीं पड़ता है इसी से तो सभी इसका सम्मान करते हैं।

डाक्टर ग्रियर्सन साहब कहते हैं कि गोसाईं जी ने कबीर, नानक आदि की नाईं अपना कोई पंथ नहीं चलाया और इस प्रकार इसकी रचना की है कि किसी पंथ का हिन्दू इनके बताये हुए सन्मार्ग का अनुसरण करने में आगा पीछा न करेगा।

आज कल के हिन्दुओं के प्रसिद्ध प्रचलित धर्म के निमित्त यह पुस्तक बहुत ही विश्वसनीय मार्गदर्शिका है।

रामायण का प्रभाव प्रायः सारे भारत वर्ष पर है। इसकी कहावतें अपढ़, कुपढ़ और सुपढ़ सभी लोगों के कहने सुनने में आती हैं। तभी तो केवल रामायण पढ़कर ही कई लोग ज्ञानी बन जाते हैं और विरक्त भी हो जाते हैं। धर्मशासन के लिये यह धर्मशास्त्र का काम देती है।

मुसलमानी राज्य के अंतिमभाग में और उसके पश्चात हिन्दुओं के चरित्रों में सुधार के निमित्त यह एक विशेष कारण है।

विद्या प्रचार में भी इससे बहुत कुछ सहायता मिली है। बहुत से लोग इसके पढ़ने ही के लिये हिन्दी लिखना पढ़ना सीखते हैं। इस ग्रंथ का आदर रंक और राजा सभी करते हैं।

सादी भाषा होने पर भी रामायण के भाव साधारण तथा गंभीर भी हैं। तभी तो इसे पढ़ कर ग्रामीण सीधे भाव में मग्न रहते हैं, साधारण लोग साधारण भाव में और पंडित लोग अनेक अनूठे गंभीर और वेदान्ती विचारों से सन्तोष पाते हैं।

हिन्दी के प्राचीन ग्रंथ बहुधा कविता ही में लिखे गये हैं और उनकी रचना ब्रजभाषा ही में की गई है, परन्तु तुलसीदास जी ने एक नई ही भाषा की सृष्टि की, जो ब्रज भाषा, बैसवाड़ी, भोजपुरी, और खड़ी बोली के मिश्रण से बनी है। ऐसा करने से कविको अपने भाव सरलता से प्रकट करनेका सुभीता हुआ है और इसी कारण से यह ग्रन्थ सर्व साधारण के लिये मनोरंजक और आबाल वृद्ध वनिता सब को रुचिकर हो रहा है। बाल्मीकीय रामायण के अंग्रेज़ी कवितावद्ध उलथा करने वाले ग्रिफ़िथ साहब ने लिखा है कि इंग्लिस्थान के साधारण लोगों में बाइबिल का जितना आदर और प्रचार है उससे बढ़कर आदर और प्रचार संयुक्त प्रान्त के हिन्दुओं में तुलसीकृत रामायण का है।

निदान रामायण के बारे में जो कुछ कहा गया है उसे अत्युक्ति न समझना चाहिये, क्योंकि इस ग्रंथ में अनेक उत्तम बातों का समावेश है और वे संक्षेप में यों हैं:—

१

राजन समाजन के काज लख्यो चाहौ जोपै,
चाहहु जो देखनि रहनि भाई भाई की।
सभा माहिं बोलन त्यों छोटे औ बड़ेन हू की,
चाहहु विलोकनि सम्हार रघुराई की॥
जांचन चहहु जो परख 'अम्बादत्त' हू की
रस की बरस औ निरख सरलाई की।
रीति चाहौ नीति चाहौ प्रीति जो पै चाहौ कछू,
कविता पढ़ौ तौ सिरी तुलसी गुसाईं की॥

२

गाथा रामचरित्र का सांसारिक व्यवहार।
ईश भक्ति नृप गुरु भगति, मात पिता को प्यार॥
मात पिता को प्यार, सत्यता की दृढ़ताई।
अटल तिया पति प्रेम, मंत्रिवर की चतुराई॥
कहत "विनायक राव" भाइ भाई को साथा।
सेवक सेव्य सुप्रेम, पूर्ण रघुनायक गाथा॥

इस महाकाव्य को लोग हिन्दी भाषा का मुकुट मानते हैं, क्योंकि काव्यों के जो मुख्य भेद माने गये हैं, उनका समावेश इस में है। यथा—

(१) गीत काव्य अर्थात् गाने योग्य काव्य। सो इस रामायण की कविता को लोग अनेक राग रागनियों में वाद्यों के साथ गाते हैं।

(२) श्रव्य काव्य अर्थात् श्रवण योग्य कविता, सो यह मुख्यतः है ही।

(३) दृश्यकाव्य अर्थात् नाटक की रीति पर देखने योग्य, सो इसी के अनुसार रामलीला तथा नाटक के अनेक अभिनय देखने में आते हैं।

इस ग्रंथ में राम कथा सात कांडों में सविस्तर वर्णित है, जिसे प्रायः सब लोग जानते ही हैं इस हेतु विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखी गई।

अनेक कवियों द्वारा स्थान २ पर जो क्षेपक कथाएँ हैं वे गोस्वामी जी की नहीं हैं, अतएव बहुतेरे ग्रंथकारों ने उन्हें अपनी छापी हुई रामायण में स्थान ही नहीं दिया।

इस की अनेक चौपाइयाँ मूलमंत्र मानी जाती हैं। इस ग्रन्थ का पाठ बहुधा लोग करते रहते हैं। बहुतेरे सुन्दर कांड ही को श्रेष्ठ मानते हैं और कोई उसको कतिपय चौपाइयों को मूलमन्त्र मान कर केवल उन्हीं का जाप करते हैं।

कहां तक लिखें, इस ग्रन्थ की प्रशंसा करते समय बुद्धि लेखनी सभी कुण्ठित होजाती हैं क्योंकि इसमें न्याय, वेदान्त, योग और ज्योतिष आदि तथा भक्ति सभी का कथन है और श्लेष तथा गूढ़ आशयवाली कविता लिखी जाय तो एक छोटा सा ग्रन्थ अलग ही बन जाय। यथा—

(१) बन्दौं राम नाम रघुबर के।
हेतु कृशानु भानु हिम करके॥

(२) पुनि आउब इहि बिरियां काली।
यह कहि मन बिहँसी इक आली॥

(३) मुक्ति जन्म महि जानि,
ज्ञान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस शंभु भवानि,
सो कासी सेइय कस न॥

इत्यादि (देखो श्री विनायकी टीका)

कवि गुलामी तथा रसिक विहारी की कविताओं से भी इस ग्रन्थ का मर्म खुलता है। यथा—

(१)

अष्टादश पुराण चारि वेद षट शास्त्रन को,
ग्रन्थनि सहस्र मत राम यश वै गये।
पाप को समूह कोटि कोटिन्ह सिराने धर्म,
राजस महान के कपाट द्वार दै गये॥
भनत 'गुलामी' धन्य तुलसी तिहारी बानी
प्रेम सानी भक्ति मुक्ति जीवन सु कै गये।
योगसुख ब्रह्मसुख लोकसुख भोगसुख,
ये ते सुख सुकृत गोसाईं लूटि लै गये॥

(२)

दूजो गुरु ज्ञाता ना वशिष्ठ वामदेव ऐसो,
सचिव सुमंत सम स्वामी सुखदाता ना।
दशरथ राजा सो न ताता दृढ़प्रीति वारो,
राम सो सुपुत्र है जहान धर्म त्राता ना॥
कौशिला सुमित्रा सी न माता है विवेकी पुनि,
सीता सी सुतीय कहुँ पति अनुराता ना।
'रसिक बिहारी' नेहकारी नीतिधारी सत्य,
कहू ठौर भरत समान और भ्राता ना॥

२—विनय पत्रिका

इस ग्रन्थ के नाम तथा रचना से प्रकट होता है कि इसमें गोस्वामी जी ने श्री रामचन्द्र जी से विनय की है कि जो कुछ उनके अकर्म और अपराध हों, उन्हें वे दयालु क्षमा करदें। इसी निमित्त से इसमें श्री गणेश जी, शिव जी सूर्य आदि अनेक देवताओं की स्तुतिकी गई है। सबका अंतिम आशय यही है कि ये देवगण कवि की प्रार्थना को श्रीरामचन्द्र जी तक पहुँचा देवें अथवा रामभक्ति में उनका चित्त लगावें। ग्रन्थ में २८० पद हैं; उनमें से बहुतेरों की भाषा सरल तथा पद लालित्य गंभीरता और आशययुक्त है। बहुतेरे बड़े बड़े विशेषण, समास और संधि युक्त हैं। तौ भी भाषा माधुर्य लिये है। पंडितों का मत है कि यह ग्रन्थ गोस्वामी जी के उत्तम ग्रन्थों में से एक है। कोई २ तो यहाँ तक कहते हैं कि इस प्रकार का विनय संबन्धी भावपूर्ण अद्भुत ग्रन्थ उनके देखने में नहीं

आया। एक उदाहरण लीजिए—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिन वेद बड़ाई भानी॥
निज घर की बर बात बिलोकहु हौ तुम परम सयानी
शिव की दई सम्पदा देखत श्री शारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नाहिं निशानी
तिन रंकन्हि को नाक सँवारत हो आयो नकवानी॥
दुखी दीनता दुखियनके दुख याचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि भीख भली मैं जानी॥
प्रेम प्रशंसा विनय व्यंगयुत सुनि विधिकी बरबानी।
'तुलसी' मुदित महेश मनहिं मन जगतमातु मुसुकानी॥

३-गीतावली

यह ग्रन्थ राग रागिनियों में बनाया गया है। इसमें ३३० पद सात कांडों में विभक्त हैं। इसकी रचना कथा के क्रम से की गई है। विशेषता यह है कि निषाद ने अयोध्या में इस आशय का पत्र लिखा था कि श्री रामचन्द्र जी विराध का बध करने के पश्चात् चित्रकूट को छोड़ नर्मदा और विंध्याचल के बीच में जा बसे हैं। बालि और सुग्रीव की लड़ाई का कुछ हाल नहीं लिखा। लंका-युद्ध का वर्णन भी कम है। पद लालित्य और माधुर्य तो कवि ने मानो कूट २ कर भरा है। विनय पत्रिका की नाईं इसकी रचना भी उत्तम और सराहनीय है। उत्तर कांड में कृष्ण चरित्र के अनुसार ही इसग्रंथ में होली और हिंडोला का भी वर्णन है। परन्तु धन्य है इन महात्मा जी को कि ऐसे विषयों के वर्णन में भी इन्होंने अश्लीलता को स्थान नहीं दिया।

४-कवित्त रामायण या कवित्तावली

इसमें ३१८ छन्द हैं जिन में से बहुतेरे कवित्त और घनाक्षरी हैं और कई एक सवैया तथा छप्पय हैं। इसके सात कांड रामायण के अनुसार ही हैं परन्तु कथा-प्रसंग पूर्णरूप से नहीं है। बहुतेरे कथा भाग लिखे ही नहीं गये। अरण्यकांड में केवल एक ही सवैया और किष्किन्धा कांड में एक ही कवित्त कहा है। उत्तरकांड में अनेक-कथा प्रसंग हैं। यथा—श्रीरामचन्द्र जी और हनुमान जी की वन्दना, गोपी-उद्धव-सम्वाद, प्रहलाद-कथा, काशी की दशा और महामारी (प्लेग) का वर्णन है। तथा निज दशा के साथ ही साथ देश दशा की उत्तम छटा भी दिखलाई है।

उदाहरणार्थ--(कवित्त)

खेती ना किसानको भिखारीको न भीख बलि, बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी। जीविका विहीन लोग विद्यमान सोच वश, कहे एक एकन्ह सों कहाँ जाय का करी॥ वेदहू पुराण कहीं लोकहू विलोकियत, सांकरे सबै को राम रावरी कृपा करी। दारिद दशानन दबाई दुनी दीनबन्धु, दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी॥

५—दोहावली।

यह ग्रन्थ ५७३ दोहों का संग्रह है जिनमें आधे तो रामायण, रामाज्ञा, राम सतसई और वैराग्य संदीपनी से संकलित किये गये हैं, और शेष नवीन जान पड़ते हैं। इन दोहों में उपदेश सार, कलि दुर्दशा, वेदान्त, राजनीति, परन्तु विशेषकर भक्ति ही श्रेष्ठतर कही गई है। भाषा उत्तम है।

६—रामाज्ञा।

यह ग्रंथ सात अध्यायों में विभाजित है। प्रत्येक अध्याय में उन्चास दोहे हैं। रचना अच्छी है। इसमें गोस्वामी जी ने चिन्तित प्रश्नोत्तरावली की रीति पर रामचरित वर्णन किया है, परन्तु अध्यायों में कथा-क्रम का नियम नहीं रक्खा।

पहिले अध्याय में बहुत ही संक्षेप से बालकांड की कथा, दूसरे में अयोध्याकांड का सार और तीसरे में अरण्य और किष्किन्धा की कथा वर्णित है। चौथे में फिर से राम जन्म और राम विवाह का वर्णन है। पांचवें में सुन्दर और लंका कांड का संक्षिप्त हाल लिखा है। छठवें कांड में उत्तर कांड की कथा सूचित है। सातवें में केवल शकुन

बताने वाले दोहे कहे गये हैं।

जान पड़ता है कि यह ग्रंथ प्रश्न बताने ही के अभिप्राय से लिखा गया है, क्योंकि अंत में प्रश्न पूछने और उसके उत्तर निकालने की विधि समझाई गई है।

७—कुण्डलिया रामायण।

४२२ कुंडलियों में राम कथा प्रायः क्रम से वर्णन की गई है। प्रत्येक कांड में कुंडलियों की संख्या इस प्रमाण से है—बालकांड में १७३, अयोध्या कांड में १२६, अरण्य में ३७, किष्किन्धा में १६, सुन्दर में १७, लंका में २४ और उत्तर कांड में २६ कुंडलिया हैं। भाषा इसकी साधारणतः अच्छी है।

८—राम सतसई।

७४० दोहों का यह ग्रन्थ है। इसमें सात सर्ग हैं। चातक और जलद की प्रीति अद्भुत रीति से सराही गई है। कविता प्रायः अनेक स्थानों की सराहनीय है। रामभक्ति से यह ग्रन्थ परिपूर्ण तो है ही; लक्ष्मण, भरत, सीता आदि अनेक सम्बन्धियों के नाम, उस नाम को दर्शा कर उलट पलट कर भी नवीन युक्ति से उनकी वन्दना प्रशंसा आदि लिखी हैं।

९—जानकी मंगल।

इस पुस्तक की रचना पार्वती मंगलसे मिलती जुलती है। कथा १६२ सोहर छन्दों में लिखी है। जिनके बीच बीचमें २४ हरिगीतिका छन्द और भी अधिक हैं। इसमें सीता रामचन्द्रजी का विवाह वर्णन किया है। विवाह का आरंभ धनुष यज्ञ से है, और परशुराम लक्ष्मण का संवाद है ही नहीं। विवाह के पश्चात् बारात लौटने के समय मार्ग में परशुराम जी का क्रोधित होकर आना और तुरंत ही शारंग धनुष श्रीरामचन्द्र जी को सौंप कर चला जाना केवल चार ही पंक्तियों में कह दिया है। इसमें जानकी जी के पाणिग्रहण के पश्चात् का छन्द प्रायः रामायण के छन्द से मिलता है। यथा—

"संकल्प सिय रामहि समर्पी,
शील सुख शोभा मई"।
"जिमि शंकरहिं गिरिराज गिरिजा,
हरिहिं श्री सागर दई"॥

इस की रचना साधारण होने पर भी प्रशंसनीय और मनोहर है। और छन्दोंकी छटा रामचरित मानस के छन्दों से मिलती है।

१०—पार्वती मङ्गल।

इस पुस्तक में १६४ छन्द हैं। जिनमें पार्वती जी की तपस्या, शिव जी का बटु-भेष धारण कर उनकी प्रेम-परीक्षा करना तथा शिव-पार्वती का विवाह वर्णन किया गया है। प्रेम-परीक्षा की छटा बहुधा उन छन्दों से मिलती है जो महाकवि कालिदास जी ने कुमार सम्भव में लिखे हैं अथवा शिवपुराण और ब्रह्मपुराण के इसी आशय के छन्दों से मिलती है। भाषा इस पुस्तक की उत्तम है और अनेक स्थानोंमें रामायण में लिखे हुए शिव-पार्वती-विवाह से मिलती जुलती है।

स्त्रियों की लज्जा, शील स्वभाव तथा अपने मुख से वर प्राप्त के हेतु तपस्या करने का समाचार बटु-भेष धारी अज्ञातपुरुष से स्वतः न कह कर अपनी सखी-द्वारा कहलाना प्रशंसनीय है। यथा—

"गौरी निहारेउ सखी मुख,
रुख पाइ तेहि कारण कहा"।
"तप करहि हर हितु सुनि बिहँसि
बटु कहत मुरखाई महा"॥

ऐसे अनेक प्रसंग थोड़ेही में बड़ी चतुराई से वर्णन किये गये हैं। शंकर जी के प्रकट होकर वर मांगने के लिये कहने पर भी पार्वती जी ने जो उत्तर दिया है उसमें कितने अनूठे भाव भरे हैं सो सुहृदय जन नीचे लिखी पंक्तियों से स्वतः समझ लेंगे। यथा—

"परिपाय सखि मुख कहि
जनायी आपबाप अधीनता।

'परितोष गिरिजहिं चले
वर्णत प्रीति नीति प्रवीनता" ॥

११—बरवै रामायण

यह छोटी सी पुस्तक ६६ बरवै छन्दों में रची गई है। यह भी सातकांडों में विभक्त है परन्तु कथा भाग यथार्थ कुछ भी नहीं है। केवल यहां वहां का आभास मात्र है।

१२—वैराग्य सन्दीपनी

यह पुस्तक ६२ छन्दों की है जिन में कुछ दोहे और कुछ चौपाइयाँ हैं। इनमें सन्त-स्वभाव, सन्तों की महिमा और शान्ति वर्णन की गई है। अनुमान किया जाता है कि यह ग्रंथ महात्मा जी ने उस समय पर लिखा होगा जब कि ये सत्संगति में भ्रमण करते रहे और इन्हें सच्चे सन्तों से भेंट होती रही। उनके कुछ उत्तम लक्षण इन्होंने इस छोटी सी पुस्तक में लिखे हैं। (सन्तों के लक्षण महात्मा जी ने रामचरित्र मानस में सविस्तर अनेक स्थानों में कहे हैं)।

इसकी भाषा उत्तम तथा विचार प्रशंसनीय और अनुकरणीय हैं।

१३—कृष्णावली (कृष्ण-गीतावली)

समय समय पर जो कृष्ण चरित्र के पद गोस्वामी जी ने ब्रज भाषा में उत्तम रीति से बनाये थे। उन्हीं को एकत्र करके ६१ पदों की यह उत्तम अनूठी छोटी सी पुस्तक रची गई है। कथा का क्रम यथोचित न होने पर भी गोपी उलहना, उद्धव सम्वाद और भ्रमर-गीत की, विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। शृंगार रस में पूर्ण प्रेम तो झलकता है, परन्तु आधुनिक कवियों की दूषित रीति उसमें नहीं है। कैसी ही भाषा में रचना करके काव्य कुशलता दिखलाना तथा कैसे ही चरित्रों को सुललित कर दिखाना इन्हीं महात्मा जी का काम था।

१४—रामलला नहछू

"नहछू" एक रस्म है जिसमें निकासी के पहिले वर की मा मंडप में वर को नहला कर गोद में लेकर बैठती है और नाइन वर के पैर के नखों को काटती है तथा महावर लगाती है। किसी २ का कथन है कि यह रस्म यज्ञोपवीत के पहिले भी की जाती है और इस समय सोहर गाये जाते हैं।

"रामलला नहछू" बीस सोहर छन्दों की एक पुस्तक है जिसमें श्री रामचन्द्र जी के नहछू की रस्म का वर्णन है।

यह पुस्तक गोस्वामी तुलसीकृत है या नहीं, इसमें मत भेद है।

(१) पुस्तक तुलसीकृत है ऐसा कहने वाले यह प्रमाण बतलाते हैं कि इस ग्रंथ में "तुलसी" नाम की छाप पड़ी है और यह रस्म चारों भाइयों के यज्ञोपवीत धारण करने के समय की गई थी, ऐसा अनुमान किया जाता है।

(२) बहुतेरों का यह सिद्धान्त है कि यह ग्रंथ किसी अन्य तुलसीदास नामक कवि का रचा हुआ है, गोस्वामी तुलसीकृत नहीं है। प्रमाण

(१) यदि मान लें कि यह रस्म चारों भाइयों के यज्ञोपवीत धारण करने के समय की है, तो ठीक नहीं जँचता। क्योंकि इसी पुस्तक के एक छन्द में लिखा है कि—

"गोद लिये कौशल्या बैठी, रामहि वर हो।
शोभित "दूलह" राम शीस पर आंचर हो"

इससे स्पष्ट है कि यह श्री रामचन्द्र जी के दूलह बनने के समय का है न कि यज्ञोपवीत के समय का, जिस समय कि बालक शुद्ध ब्रह्मचारी बनाये जाते हैं।

(२) यह विवाह के समय का भी नहीं हो सकता, क्योंकि जिस समय अयोध्या से बरात चली थी उस समय राम लक्ष्मण तो जनकपुर में थे और भरत शत्रुघ्न का विवाह निश्चित ही नहीं हुआ था। इससे नहछू की रस्म कौशल्या जी न

कर सकी थी।

(३) सब से बढ़कर प्रमाण तो यही जँचता है कि इस ग्रंथ की अनेक पंक्तियों की रचना शिथिल और अश्लील है जो गोस्वामी जी के स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध है। ऐसी रचना उनके किसी ग्रंथ में नहीं पाई जाती।

इन्हीं कारणों से मैं भी इस ग्रंथ को गोस्वामी तुलसीदास-रचित मानने में सन्देह करता हूं।

१५—श्री राम नाम कलामणि कोष मंजूषा

यह एक नवीन ही ग्रंथ मेरे देखने में आया है जो गोस्वामी तुलसीदास कृत माना गया है! इस पर मानपुर के नम्बरदार परमभक्त बैजनाथ जी की टीका भी है और यह पहिली ही बार मुंशी नवलकिशोर (सी० आई० ई०) के छापे खाने में सन् १८६४ ई० में मुद्रित हुआ है। इस ग्रंथ में पांच प्रकाश और १६१ दोहे इस क्रमसे हैं। पहिले प्रकाश में ४५, दूसरे में १०, तीसरे में ३४, चौथे में ३१ और पांचवें में ४१ दोहे हैं।

इसके नाम ही से प्रकट होता है कि "राम" इस शब्द के अक्षरों की कितनी अलग २ अनूठी कलाएँ हैं। वे रत्न के तुल्य हैं। संसार की बहुतेरी अद्भुत अद्भुत बातों तथा पदार्थों का यह ख़जाना है और इसी ख़ज़ाने की मानो अनेक सन्दूकें भरी पड़ी हैं। ठीक ठीक हाल पुस्तक देखने से विदित होगा। उदाहरणार्थ एक दोहा लिखा जाता है, जिसका आशय गंभीर अर्थ पूरित है। यथा—

दो०—रस मो शर गोचर लसै, रेफ रमे शर गात।
राम ब्रह्म उर में यथा, तुलसी जानत जात॥

अर्थात् रस नाम छः कलाएँ जो राम नाम में हैं उनसे प्रणव अर्थात् ॐ बनता है इस हेतु "शर" अर्थात् पांच कला दृष्टि गोचर हुईं। रकार का अकार, दीर्घ अकार, मकार का अकार, हल मकार और रेफ़ अनुस्वार रामनाम में ये छः कलाएँ हैं। इनसे जब ॐ बना तो तीनों अकार एकत्र कर तीन का अंक हुआ, उसकी तारक संज्ञा है और रेफ का ओकार हुआ उसकी दंडक संज्ञा है मकार का अनुस्वार हुआ उसकी कुंडल संज्ञा है अर्द्धचन्द्र और बिन्दु मिलकर पांच कलाएँ हुईं। "शर गात" अर्थात् पांचों कलाओं के मध्य रेफ रम रहा है (व्यापक हो रहा है)। जिस प्रकार ब्रह्म शब्द के उर में राम व्यापक है अर्थात् बकार में रकार व्यापक हो "ब्र" बन गया और हकार में मकार व्यापक हो 'ह्म' बन गया। उस प्रकार ब्रह्म शब्द में व्यापक 'राम' को जो जानते हैं वे परम-पद को जाते हैं। यह आशय 'तुलसी जानत जात" इन शब्दों का है।

१६—कलिधर्माधर्म निरूपण

१०२ चौपाइयों के बीच बीच पच्चीस दोहे और एक सोरठा लिखकर अंतमें पाँच सोरठे मिला कर १३३ छन्दों की रचना का यह ग्रंथ उत्तम है जिसमें कलियुग के अनुसार लोगों की प्रतिष्ठा, धूर्त्तता, कपट व्यवहार, निन्द्य-आचार आदि अनेक कुरीतियों का वर्णन स्पष्ट रूप से सरल और मनोहर भाषा में लिखा है। यह ग्रंथ अपने नाम को ठीक सार्थक करते हुए लोगों के दुराचरणों का मानो चित्र ही पढ़ने वालों के सन्मुख खड़ा कर देता है। इसमें भी कवि के रचना सौंदर्य से स्पष्ट होता है कि इसके निर्माण कर्त्ता गोसाईं जी ही हैं, क्योंकि इसकी कुछ छटा उत्तरकांड में भी दिखलाई गई है।

१७—छप्पय रामायण

इस में ३१ छप्पय छन्द इस प्रमाण से हैं—चार छन्द सङ्कटहरण वंदना के लिखकर एक छंद में बालकाण्ड, एक में अयोध्या और एक छन्द में अरण्यकाण्ड लिखा है। ग्यारह छन्द सुन्दर में, सात छन्द लंका में और पांच छंद उत्तर कांड में लिखकर ३१ वें छन्द में फल स्तुति कही गई है।

१८—हनुमद्‌बाहुक (हनुमानबाहुक)

यह ४४ छन्दों की पुस्तक है जिसमें हनुमान

जी की स्तुति बड़ी ओजस्विनी भाषा में की गई है गोस्वामी जी ने अपने बाहु—पीड़ा निवारणार्थ हनुमान जी की प्रसन्नता ही को उत्तम उपाय समझा था। यह तुलसीदास जी का बनाया हुआ है यह निर्विवाद है।

१९—हनुमान चालीसा

यह ४० अर्धालियों की, जो यथार्थ में बीस चौपाइयाँ हैं, एक बहुतही छोटी पुस्तक है। बहुधा लोग स्नान करके इसका पाठ प्रतिदिन करते हैं।

२०—संकट मोचन

यह ८ घनाक्षरी छंदोंकी हनुमानजी की स्तुति में बहुत ही छोटी पुस्तक है।

यहां तक तुलसीकृत ग्रंथों के गुणों का ही बहुधा वर्णन किया गया है। अब कदाचित् कोई कहे कि आलोचना करते समय दूषणों का भी विचार करना उचित है तो महाकवियों की भाषा रचना तथा कथित विचारों पर आलोचना करना साधारण मनुष्य का काम नहीं है। तथापि कोई कोई महात्मा तुलसीदास जी के ग्रंथों पर भी इन दो बातों में दूषण आरोपित करते हैं।

(१) मेरी अल्प बुद्धि में यह आता है कि भाषा शैली के विषयमें यदि ठीक ठीक खोज किया जाय तो ज्ञात होगा कि गोस्वामी जी के पहिले हिन्दी भाषा किस रूप में थी और उसे स्वतः गोस्वामीजी ने ऐसा उचित रूप दिया जिसकी आज कल के विदेशी विद्वान् भी मुक्तकण्ठ से सराहना कर रहे हैं। गोस्वामी जी के समय से आज तक ३०० वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके हैं और अनेक कवियों और लेखकों ने भाषा के सुधार में बहुत प्रयत्न किये हैं, तौ भी भाषा पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं हुई और नियमित प्रणाली का अभी तक मुँह ताक रही है। अब सोचने का स्थान है कि गोस्वामी जीने भाषा को दूषित किया या भूषित।

(२) महात्मा जी के कथित विचारों के बारे में कहीं कहीं दोष बतलाये जाते हैं। इसमें मेरी यह विनय है कि प्राकृत मनुष्यों के सम्बन्ध में 'विशेष बढ़ावे के साथ वर्णन करना' अथवा 'अयोग्य अधिकार आदि दे देना' तो दूषित होना स्वाभाविक ही है। परन्तु बहुधा देखा गया है कि प्रतिष्ठित मनुष्यों के विषय में अनुचित कथन भी विशेष दूषित नहीं समझा जाता है। तो फिर परब्रह्म परमात्मा के बारे में उन्हीं के अवतार रूप श्री रामचन्द्र जी की प्रशंसा आदि में जो कुछ ऐसे परमभक्त की लेखनी से निकल गया सो कैसे दूषित समझा जा सकता है। उनके संपूर्ण ग्रन्थों में मुख्य नायक और नायिका श्री रामचन्द्र जी तथा सीता जी हैं, जिनके ये परमभक्त थे और जिन्हें हिन्दूमात्र अवतारिक तथा पूज्य मानते हैं।

उदाहरण—बड़े बड़े महाराजाओं तथा प्रतिष्ठित पुरुषों को आशीर्वाद देने में "मारकंडेय की आयु हो" अथवा "जब तक गंगा यमुना में पानी रहे, तब तक आप सुख भोग करें," इत्यादि वचनों में कितनी सत्यता है सो भी विचारणीय है। परन्तु तुलसीदास जी ने जो सीता जी को आशीर्वाद दिलाया है कि—

"दीन्ह असीस हरषि मन गङ्गा।
सुन्दरि तव अहिवात अभंगा" ॥

सो यह तो यथार्थ ही है कि परमात्मा-रूप श्री रामचन्द्र जी सनातन से हैं और रहेंगे तो सीता जी का अहिवात भी निरंतर अटल है।

निदान महात्मा जी के पक्षपात रहित शुद्ध वचनों का स्मरण दिलाना मैं अनुचित नहीं समझता। वे कह गये हैं कि—

"जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संतहंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ॥"

गोस्वामी जी तो महात्मा और परम रामभक्त हो करके भी अपने को श्री रामचन्द्र जी का दास मानते रहे। अतएव इतना कह कर मैं अपने कथन को समाप्त करता हूं कि दोष मनुष्य मात्र में देखे जाते हैं दोष रहित तो केवल परमात्मा ही है ॥

अनुप्रास का अन्वेषण

[लेखक—पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी]

वर्षों व्यतीत हुये, मेरे आदरणीय अध्यापक श्रीयुत ललितकुमार वन्द्योपाध्याय विद्यारत्न एम० ए० महाशय ने कलकत्ता कालेज स्क्वायर के युनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट में सन्ध्या समय सभापति के स्थान पर सर गुरुदास बनर्जी को बिठा "अनुप्रासेर अट्टहास" शीर्षक बंगला प्रबन्ध पाठ किया था जिसमें उन्होंने बङ्गभाषा में व्यवहृत, प्रयुक्त और प्रचलित संस्कृत, अंगरेजी, उर्दू, हिन्दी और बंगला शब्द, महावरे और कहावतें उद्धृत कर अनुप्रासका अधिकार बंगला भाषा पर दिखाया था। प्रबन्ध पढ़े जाने पर बंगला बंगवासी के (सम्पादक) बाबू बिहारीलाल सरकार बोले कि, "बांगलाई कोबीतार भाषा। कारोन एते ओनेक ओनुप्रास आछे। ओतो अनुप्रास आर कोनो भाषाते नाइं। ओनुप्रास कोबीतार एकटी गून।" अर्थात् 'बंगला ही कविता की भाषा है क्योंकि इस में जितना अनुप्रास है उतना और किसी भाषा में नहीं। अनुप्रास कविता का एक गुण है।'

मुझे बूढ़े बिहारी बाबू की यह बात बहुत बुरी लगी। क्योंकि भारत के भालकी बिन्दी इस हिन्दी को म कविता की भाषा जानता था क्या अब तक जानता और मानता हूं। मैंने सोचा, क्या हिन्दी भाषा में अनुप्रास का अभाव है? यदि नहीं, तो बंगला ही क्यों कविता की भाषा घोषित की जायगी? यह सोच विचार मैंने हिन्दी में अनुप्रास का अन्वेषण आरम्भ कर दिया। इस अनुसन्धान में जो कुछ अपूर्व आविष्कार हुआ वही आज आप लोगों के आगे अर्पित करता हूँ।

संस्कृत साहित्यमें अनुप्रास का अनुसन्धान अनावश्यक जाना क्योंकि एक तो वह भारत की प्रायः सब ही भाषाओं की जननी है। उसपर सब की समान श्रद्धा है। दूसरे उसके स्तोत्र तक जब अनुप्रास से अधिकृत हैं तब काव्यों की कथा ही है? निदर्शन के लिये निम्नलिखित स्तव ही पर्याप्त होगा—

"गांगं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारि शिरश्चारि पापहारि पुनातु माम्॥"

"पापापहारि दुरितारि तरङ्ग धारि
शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि।
झंकारकारि हरिपादरजोपहारि
गांगं पुनातु सततं शुभकारिवारि॥"

एक और सुनिये—

"नमस्तेऽस्तु गंगे त्वदंगप्रसंगात्
भुजङ्गास्तुरङ्गाः कुरङ्गाः प्लवंगाः।
अनङ्गारि रङ्गाः ससङ्गाः शिवांगा
भुजङ्गाधिपांगी कृतांगा भवन्ति॥"

हिन्दी साहित्य में भी मैंने पद्यकी ओर प्रस्थान नहीं किया क्योंकि मैं जानता हूं कि, वहाँ अनुप्रास का अड्डा अद्भुत रूप से जमा हुआ है। यथा—

चम्पक चमेलिन सों चमनि चमत्कार,
चमू चंचरीक के चितौत चोरे चित हैं।
चाँदी को चबूतरा चहूँघा चमचम करे,
चन्दन सों गिरधरदास चरचित हैं।
चारु चाद तारे को चँदोवा चारु चाँदनीसो,
चामीकर चोवन पै चंचला चकित हैं।
चुन्निन की चौकी चढ़ी चन्दमुखी चूड़ामनि,
चाहनसों चैत करें चैन के चरित हैं॥

अन्य भाषाभाषी अपनी अपनी भाषा के दो

चार शब्दों में अनुप्रास आता अवलोकन कर आनन्दित और गद्गद हो जाते हैं। पर यहां तो चारों चरणों में चकार की भरमार है! अफसोस है, तो भी हम हिन्दी की हिमायत न कर उर्दू अंगरेज़ी का ही आल्हा अलापते हैं। खैर;

इसलिये मैंने पद्य परित्याग कर गद्य की ओर ही गमन किया और वहाँ राजारईस, राजारंक रावउमराव, सेठसाहूकार, कविकोविद, ज्ञानीध्यानी, योगीयती, साधुसन्यासी से लेकर नौकर चाकर, तेलीतमोली, बनियाँ बक्काल, कहार कलवार, मेहतरचमार, कोरीकिसान और लुच्चेलफंगे तक की बातचीत, गपशप, बातविचार, रहनसहन, खान पान, रफतारगुफतार, चालचलन, चालढाल, मेलमुलाकात, रंगरूप, आकृतिप्रकृति, जानपहचान, हेलमेल, प्रेमप्रीति, आवभाव, जातपांत, रीतरस्म, रस्मरवाज, रीतनीत, पहनावेओढ़ावे, डीलडौल, ठाठवाठ, बोलचाल, संगसाथ, संगतसोहबत में अनुप्रास का अमल दखल पाया। मैंने अपनी ओर से न कुछ घटाया न बढ़ाया न काटा न छांटा और न चुस्त दुरुस्त ही किया। शब्दों को जिस सूरत शकल में जहाँ पाया वहां से वैसे ही उठाकर ठौरठिकाने से मौकामहल देख रख भर दिया है।

अन्वेषणके पहले अनुप्रास का नामधाम, आकार प्रकार, रंगढंग और नामोनिशान जान लेना ज़रूरी है। अंगरेजी के Alliteration & Assonance उर्दू फ़ारसी का काफिया रदीफ और संस्कृत हिन्दी का अनुप्रास नाममें दो होने पर भी काम में एक ही हैं।

स्वर के बिना व्यञ्जन वर्ण के साम्य को अनुप्रास कहते हैं। यानी वाक्य और वाक्यांश में बारबार एकही प्रकार के व्यञ्जन वर्ण के आने को अनुप्रास कहते हैं। इसके अनेक रूपरूपान्तर हैं पर प्रधान पांच ही हैं; जैसे—

(१) छेकानुप्रास—भोजन बिना भजन।

(२) वृत्यनुप्रास—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति का सुन्दर सिंहासन।

(३) श्रुत्यनुप्रास—खेलकूद जङ्गलझाड़ी।

(४) अन्त्यानुप्रास—अत्रतत्र सर्वत्र है, भारतमित्र सुपत्र।

(५) लाटानुप्रास—शिक्षिता अबला अबला नहीं है।

अच्छा अब असली हाल सुनिये। अनुसन्धान के अर्थ कमर कसते ही मुझे अपने इर्दगिर्द, अगल बगल, अड़ोसपड़ोस, टोलेमुहल्ले, घरबाहर, भीतरबाहर, आसपास, इधरउधर. नातेरिश्ते, बन्धुबांधव, भाईबन्द, भाईभतीजे, कुटुमकबीला, पुत्रकलत्र, बालबच्चे, लड़के बाले, जोरूजांते, चूल्हेचक्की, घरबार, अपनेबेगाने, मानभानेज, भाईबिरादरी, खानदान, परिवार, तमाम अनुप्रास ही अनुप्रास नज़र आने लगा। इसका अनुमान नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाण लीजिये मेरा नाम जगन्नाथ प्रसाद स्टेशन जमुई ससुर जहांगीरपुर निवासी जौनमाने जसवन्तराय जी के जेठेबेटे जयन्तीप्रसाद जी मामा जयकृष्णलाल जी और लड़का यदुनन्दन है। मेरा आदि निवास मथुरा मध्य मिरजापुर और वर्तमान मलयपुर जिला मुंगेर प्रवास मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट (कलकत्ता) अल्ल मईमिश्र हिस्सेदार मिरजामल जी और चाचा मुरलीलाल जी तथा मथुराप्रसाद महोदय हैं। उपाधि चौबे चतुर्वेदी काम चपड़े का और उमर चालीस की है। गोत्र सौश्रव है। किस्सा कोताह परिजन पुरजन अरिजन स्वजन सब की मोहममता मायामोह छोड़ मुंह मोड़ सजधज और बनठनकर अनुप्रास की तलाश में निकल पड़ा।

वाणिज्य व्यापार।

चूंकि अपना धर्मकर्म वाणिज्य व्यापार से चलता है—नौकरी चाकरीसे कुछ लेनादेना नहीं। बस, जवानी दीवानीके फन्देमें फँस मनमानी घरजानी करता पहले बंगाल बङ्ककी बड़ाबाजार ब्रेञ्चमें

जा पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि रोकड़ जाकड़, हिसाबकिताब, खातेपत्तर, उचन्तखाते, खर्चखाते, खैरातखाते, खुदरागखर्चखाते, बट्टेखाते, व्याज-बट्टे, लेनदेन, नकराई सकराई, मितीके भुगतान, खोखे, पैठ परपैठ, देने पावने, नाम जमा, लेवाल देवाल, लेवाल बेचवाल, साझे शराकत, सौदासुल्फ़, तारवार, लेनेबेचने, खरीदबिक्री, खरीद फरोख्त, बेचनेखोचने, मोललेने, क्रयविक्रय, मालटाल, मालजाल, मालमता, बिलटीवीजक, बाकीबकाये, मत्थेपोते, जमीनजायदाद, धनदौलत धनधान्य, अन्नधन, सौकेसवाये, नफेमुनाफे, नफे नुकसान, आमदनी रफ्तनी, आगतनिर्गत, रूंकधोक, दरदाम, मोलतोल, बोहनीबट्टे, बाजारदर, देनदार, दुकानदार, सर्राफ, बजाज,मुनीम गुमाश्ते, और बसनेके ब्राह्मणोंकी कौन कहे दिवाले निकालने टाट उलटने, बमबोलने, आफीशियल असायनी और इनसालवेंट अदालत तक में अनुप्रासका आसन जमा है। केवल यहीं नहीं दल्लाल, नमूने, कामकाज, कारबार, कारव्योहार, कामधन्धे, खुशी के सौदे, कलकारखाने, कलके कुली, जहाजकी जेटी और बट्टेचट्टे में भी आप आ बैठे हैं।

बाजार बढ़े चढ़े या घटे, गिरे या उठे, तेज हो या मन्दा, सुस्त या समान रहे, मारवाड़ी महाजन हो चाहे बंगाली व्योपारी, व्योहरे बनिये हों चाहे ब्राह्मण, अनुप्रासके चक्करमें सब ही हैं। उत्तमर्ण अधमर्ण में, स्वदेशी शिल्पमें, सूची शिल्प में, श्रम शिल्प में, शिल्प सभा में, श्रम जीवी समवाय में, कृषिशिल्पप्रदर्शिनी में, वैश्यवृत्तिमें, व्यवसायात्मिका बुद्धि में, विज्ञान वाणिज्यमें, अर्थशास्त्र में, कला कौशल में, "व्यापारे बसते लक्ष्मी या लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये" इस मूलमन्त्र में भी अनुप्रास आ गया है। अमानतमें खयानत करो, धनगबन करो चाहे बचत बचा कर नौ नकद न तेरह उधार करो; कच्चे चिट्ठे को पक्का समझो या सफेद को स्याह करो, बङ्कसे बंधक का बन्दोबस्त कर व्याज बढ़ाओ, जूट पाटका फाटका या सट्टा करो, पर अनुप्रासका अदर्शन न होगा।

हमारे लाखके लेनेवाले रेलीब्रदर्स, अर्नथौजन बेकरग्रे, टौमसनलेजन और लालमारसलपर तथा बेचने-वाले मिरजापुरी महाजन गरीब फकीर, बन्धू बुझावन, मंगन झंगन, शिवचरनसहाई, झब्बूलाल, चुन्नीलाल लुनावत और रामस्वरूप रामसकलराम-पर भी अनुप्रासका अनुग्रह है। यह दूकानदारी या बनावटी बात नहीं, सच्चा सौदा है।

अग्रसर हुआ तो कलकत्तेके बड़े बाजारमें, दिल्ली के चांदनी चौकमें, बनारस के ठठेरी बाजारमें, आगरेके किनारी बाजारमें,मिरजापूर के धुंधीकटरे-में, कानपुर के कलक्टरगञ्ज में, जयपुर के जौहरी बाजार में,प्रयाग के जानसेनगञ्ज में, मुंगेर के बेलन बाजार में भागलपुर के सूजागञ्ज में, मैनपुरी के मदार दरवाजे में, पटने के खुचकल्ले में, बम्बई के कालबा देवी में अनुप्रास को अकड़ते पाया। अस्तु;

साहित्य

अर्ज्जन उपार्ज्जनके उपरान्त साहित्यसेवा है। संस्कृतसाहित्यकी कौन कहे, राष्ट्र भाषा हिन्दीके साहित्यसंसारमें भी अनुप्रासकी आंधी आ गयी है। दिव्य दृष्टिसे नहीं चर्म्मचक्षु ओंसे ही चश्मा लगा आप देखेंगे कि कविकुल कुमुदकलाधर, काव्यकाननकेसरी और कविताकुञ्जकोकिल कालिदास भी काव्य कल्पनामें अनुप्रासका आवाहन करते हैं। कहीं कहीं तो कष्ट कल्पनासे काव्यका कलेवर कलुषित हो जाता है। यह कपोलकल्पना नहीं कवि कोविदोंका कहना है। खैर, वंशीवट यमुना निकट, मोर मुकुट, पीतपट, कालिन्दीकूल, राधामाधव, व्रजवनिता, ललिता, विधुवदनी, कुँवर कन्हैया, नन्द यशोदा, वसुदेव देवकी, वृन्दावन, गिरि-गोवर्द्धन, ग्वालबाल, गो गोप गोपी,ताल तमाल, रसाल, साल, लवंगलता, विपिनविहारी, नन्दनन्दन, विरहव्यथा, वियोगव्यथा,संयोग वियोग, मधुर मिलन, मदनमहोत्सव और मलयानिल ही नही झिल्लियोंकी झंकार, वीरबादर, घनगर्ज्जन

वर्षण, दामिनीकी दमक, चपलाकी चमक, बादरकी गरज, शीतल सुगन्ध मन्द मारुत, कुसुमकलिका, मदनमञ्जरी, बीरबहूटी, चोआचन्दन, अतर अरगजा, तेलफुलेल, मेंहदी महावर, सोलहश्रृङ्गार, मृगमद, राहु-रद, कुमुदकमलकल्हार, स्थलकमल, सरसिज, सरोरुह, पद्मपत्र, पलाशलता, लज्जावती लता, छुईमुईकी पत्ती, कोयलकी कुहक, कूजितकुञ्जकुटीर, शशि, बसन्ती वायु, मलयमारुत, मधुमास, युवक युवती नवयौवन, षोड़शी, स्मरशर, पवित्र प्रेम, प्रेमपाश, प्रेमपिपासा, यामिनी-यापन रमणीरत्न, रससागरसुखसागर, दुःखःदावानल, अंध अनुराग, मुग्धामध्या, प्रोषितपतिका, वासकसज्जा, अथवा विधवा सधवा, चित्तचोर, मनमोहन, मदनमोहन, दिलदारयार, प्राणनाथ, प्राणप्रिय, पीनपयोधर, प्रेमपत्र, प्रेमपताका, प्राणदान, सुखस्वप्न, आलिङ्गन चुम्बन, चूमाचाटी, पादपद्म, कृत्रिम कोप, भ्रूभङ्ग, भृकुटीभङ्गी, मानमर्द्दन और मानभञ्जन भी अनुप्रासके अधीन हैं।

कम्बुग्रीव, बाहुवल्ली, करकमल, पद्मपलाशलोचन, कुचकमल, कुचकलश, कुच कुम्भ, निविड़ नितम्ब, पदपल्लव, गजगमन, हरिणनयन, केसरिकटि, गोल कपोल, गुलाबी गाल, कोमल कर दाड़िमदसन और साफ सुथरी गोरी नारीकी मधुर मुसकानमें अनुप्रासका जैसे वास है वैसे ही काली कलूटी, मैलीकुचैली, नाटीमोटी, खोटी, छोटी, कर्कशा, कलहकारिणी कुलटाके बिखरे बालोंमें भी है। तात्पर्य्य यह कि, प्रेममें नेम नहीं तकल्लुफमें सरासर तकलीफ है। प्रेमका पन्थ ही पृथक् है। निराला होनेपर भी आला है। इसमें सुख दुःख और जीवन मरण दोनों हैं। हँसा सो फँसा। इश्क हकीकी हो या मजाजी उसमें मार और प्यार दोनों हैं। भगतके वशमें हैं भगवान। आशिक माशूक और प्रेमिकप्रेमिकाओं के हाव भाव, नाजनखरे, चोचले ढकोसले भुक्तभोगी ही जानते हैं। जो दिलजले हैं उनका दिल भला कहीं क्यों लगने लगा। जो सदा सर्व्वदा मक्खियाँ मारा करते हैं उनसे भला क्या होना जाना है। जिसका सनेह सच्चा है वह लाख आफत विपत होते भी सही सलामत मंजिले मकसूदको पहुँच जाता है। उसके लिये विघ्नबाधा विपदबाधा कुछ है ही नहीं। यहां तक तो अनुप्रास आया। अब आगे राम मालिक है।

व्याकरणके वर्त्तमानभूतभविष्यतमें, संज्ञासर्व्वनाममें, विशेष्यविशेषणमें, सन्धिसमासमें, कर्त्ताक्रिया कारकमें, कर्ताकर्म्म करणमें, उपादानसम्प्रदानअधिकरणमें, सम्बन्धसम्बोधनमें, उद्देश्यविधेयमें, कर्त्तरि कर्म्मणि प्रयोगोंमें, तत्पुरुष कर्मधारय, बहुब्रीहि द्वन्द्व द्विगु समासोंमें, विभक्तिप्रत्ययमें, प्रकृतिप्रत्ययमें, आसक्तिआकांक्षामें, सार्थक निरर्थक शब्दोंमें, जातिव्यक्ति और भाववाचक संज्ञाओंमें जब अनुप्रासका निवास है तब सामयिक साहित्यकी सामग्री कागजकलम, कलमपेनसिल, रूलपेनसिल, हेन्डल होलडर, स्याही सोख, निब पिन, चाकूकैंची, एडीटर, कम्पोजीटर, प्रिन्टर, पबलिशर, सम्पादक; मुद्रक प्रकाशक, प्राप्तपत्र, प्रेरितपत्र, सम्पादकीय स्तम्भ, साहित्यसमाचार, तार समाचार, तड़ित समाचार, तार तरङ्ग, विविध समाचार, मुफस्सिलसमाचार, साहित्य समालोचना, क्रोड़पत्र, वेल्युपेबल, पारसल और प्रेस सेन्सर में भी अवश्य ही है।

भारतमित्र, अभ्युदय, बङ्गवासी, प्रताप, जयाजी, प्रताप, सज्जनकीर्त्ति सुधाकर, वीरभारत, पाटलिपुत्र, बिहारबन्धु, मिथिलामिहिर, सत्यसमाचार, सत्यसनातन, चित्रमयजगत, सद्धर्म्मप्रचारक, अवधवासी, आनन्द, वेंकटेश्वर समाचार, दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों में, और सरस्वती, मर्य्यादा, नवनीत, जासूस, नवजीवन, शारदाविनोद, स्त्रीदर्पण, मनोरञ्जन, वैष्णवसर्वस्व, सुधानिधि, चतुर्वेदीचन्द्रिका, महामण्डल, मेगजीन, ब्रह्मचारी नामक मासिक पत्रों में अनुप्रासका अंश है।

लेखकों में बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा, गंगाप्रसाद

गुप्त, लाला भगवानदीन, ब्रजराज बहादुर बी.ए., नरेन्द्रनारायण, भास्कर भालेराव, हरिहरस्वरूप शास्त्री, तीर्थत्रय सकलनारायण शर्म्मा, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, वासुदेव, बाबूराव विष्णु पराड़कर, यशोदानन्दन अखौरी, रामनारायण चतुर्वेदी, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्म्मा, विद्यावारिध ज्वालाप्रसाद मिश्र, नन्दकुमारदेव शर्म्मा, गिरिजाकुमार घोष, चन्द्रधर गुलेरी, कृष्णकान्त, मन्नन द्विवेदी गजपुरी, गोपालराम गहमरी, रामजी लाल, लज्जाराम, रुद्रदत्त, गौरीशङ्कर हीराचन्द, राधाचरण, द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, रामावतार, रामरणविजयसिंह, अयोध्यासिंह उपाध्याय, देवकीनन्दन, राय देवीप्रसाद पूर्ण, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अम्बिकादत्त व्यास, माधव मिश्र, श्रीनिवासदास, सदानन्द मिश्र, तोताराम, लल्लूलाल और लेखिकाओं में यशोदा देवी, राजमन्नी देवी, कृष्णकला, कृष्णकुमारी, तोरन देवी, लली, रामेश्वरी नेहरू, और हेमन्तकुमारी चौधरी, अनुप्रास के अन्तर्गत ही मिलीं।

द्विवेदी कृत 'कालिदास की निरंकुशता', मनसाराम लिखित 'निरंकुशता निदर्शन', आत्माराम रचित 'अनस्थिरता' मौजीराम का विचार वैचित्र्य शिवशम्भु शर्म्मा के चिट्ठे मस्तराम के मन्तव्य, मनसुखा का मनसूबा, गिटपिटानन्द गोलमालकारी, कलकत्ते की साहित्यसंवर्द्धिनी सभा, प्रयाग या फीरोजाबाद का भारतीभवन, पाठकजीका पद्म कोट, पद्मसिंहजीका सतसई संहार, व्यासजी का विहारी विहार, प्रतापनारायणजी का सांगीत शाकुन्तल, श्याम + शुक + गणेश विहारी मिश्रों का बन्धुविनोद या कविकीर्त्तन तथा 'नवरत्न', मैथिलीशरणकी 'भारत भारती', अयोध्यासिंहजी का 'प्रिय प्रवास' तथा 'ठेठ' हिन्दीका ठाठ', अयोध्यानरेशका 'रसकुसुमाकर', जोधपुरी मुरारिदानजीका 'यशवन्त यशोभूषण, और मेरा 'संसारचक्र' तथा 'विचित्र विचरण' भी अनुप्रास आमेज़ हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति होनेके सबब ही माननीय मदनमोहन मालवीय, गोविन्दनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, महात्मा मुन्शीराम और पंडित श्रीधर पाठक तथा महामन्त्री पुरुषोत्तमदास टनडनको भी अनुप्रासने अछूता न छोड़ा।

अनुप्रासके अत्यन्त आग्रहसे ही बाबू श्यामसुन्दर दास इस बार सभापतिके आसनपर आसीन हुए। पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा स्वागतकारिणी समिति के मन्त्रिपदको त्याग जड़ीबूटी जमा करने हिमशैल शिखरपर सिधारे और पं० राजाराम शास्त्री उक्त पदपर पधारे थे। अनुप्रासके अनुरोधसे ही राय रामशरणदास बहादुरने भी स्वागतकारिणी समितिका अध्यक्ष होना अङ्गीकार किया और मनहूस मुहर्रमकी तङ्ग तातील तजकर क्रिसमसका सुहावना समय स्थिर हुआ। लोगोंको लखनऊसे ही लाहौर चलनेकी लालसा लगभग साल भरसे लगी हुई थी पर दानापानीने सबपर पानी फेर दिया। अन्न जल बड़ा प्रबल है। पग्गड़बाज पञ्जाबियोंकी परिवर्त्तनप्रियता अथवा लहरी लाहौरियोंकी लथड़धौंधोंसे हमारे तुम्हारे सबके छक्के छूट गये। हक्के बक्के हो इधर उधर ताक झांक करने लगे। घिघ्घी बंध गयी, बोल बन्द हुए। पर स्थायी समिति स्थिर रही। किंकर्त्तव्यविमूढ़ न हो उसने सोचा समझा और अलाहाबादमें ही अधिवेशनका आयोजन कर एक सख्त सवाल या मुफीद मसला हल कर डाला। लिहाजा लाचार हो लाहौरकी लम्बी मुसाफरीसे मुँह मोड़ अनुप्रास के अनुसन्धान में मैं भी पञ्जाब मेलसे पटने होता प्रयाग पहुँच ही गया।

धर्म्म

साहित्यसेवाके बाद धर्म्म कर्म्म है। धर्म्मान्ध, धर्म्मधुरन्धर, धर्म्मधुरीण, धर्म्मावतार और सनातन धर्म्मावलम्बी बनकर पोथीपुराण, श्रुतिस्मृति, शास्त्रपुराण का पठनपाठन और श्रवण मनन निदिध्यासन करो, प्रतिमापूजन प्रतिपादन, मूर्त्तिपूजा-

मण्डन और श्राद्ध तर्पणका शङ्कासमाधान करो; पाखण्डी पंडों, पुरोहितों और पण्डितों के पैर पूजो, लकीरके फकीर बनो, संयमनियम, तीर्थ-व्रत, योगभोग, जपतप, यागयज्ञ,ज्ञानध्यान, स्नान-ध्यान, पूजापाठ कर कर्मकांडी कहाओ, हव्य कव्य गव्य, पञ्चामृतपञ्चगव्य, धूपदीप, चन्दन, पुष्प, कुमकुम, गङ्गाजल, तुलसीदल और ताम्बूल पुङ्गी फल से परमात्मा का पूजन अर्चन करो, चाहे आर्यसमाजी हो बालविवाह, विधवा विवाह, बहु-विवाह, वृद्ध विवाह, बेमेल व्याह का विरोधकर समाज संस्कार, समाज सुधार के साथ नियोग निरूपण करो या खन्डनमण्डन, शास्त्रार्थ, सन्ध्यावन्दन, होमहवन कर मांसपार्टी, घासपार्टी पैदा करो पर अनुप्रास सदा सर्वत्र अनुसरण करता है। केवल यहीं नहीं,प्रवृत्ति निवृत्ति,स्वर्गनरक,पाप पुण्य, अर्थ धर्म काम मोक्ष, मुक्ति मोक्ष, लोक पर लोक, यमयातना,साकार निराकार, निर्गुण सगुण, काशीकरवट, दानपुण्य,जन्म,मरण,जन्ममृत्यु, विषय वासना ब्रह्मविद्या मुक्तिमार्ग ज्ञाननेत्र आगम निगम वेद उपनिषद, वेद वेदाङ्ग वेदान्त, ब्रह्मवैवर्त्त, श्रीमद्भगवद्गीता, शास्त्रसिद्ध विधि निषेध और वेद विहित कर्मों में भी अनुप्रास का आदर देखा।

आचार विचार नेमधरम नित्य नैमित्तिक क्रिया कर्म्म ध्यानधारणा, स्तवस्तोत्र, यन्त्रमन्त्र-तन्त्र, ऋद्धि, शुभलाभ, भजनपूजन, भगवच्चिन्तन, प्रायश्चित्त पुरश्चरण, वृद्धिश्राद्ध, आद्यश्राद्ध, सपिण्डश्राद्ध, पितृ प्रेतकृत्य, पिण्डप्रदान, कपालक्रिया, जलाञ्जलि, तिलांजलि, पितृपक्ष औरगोग्रास में भी अनुप्रास का अनुभव किया।

दरसपरस मज्जन पान करो, सत्सङ्ग या साधु-समागम से दुस्पारासार से संसार को अनित्य समझो, या सांसारिक सुख सम्भोग में सारा समय समर्पित कर दो, मारवाड़ी सहायक-समिति संस्थापित करें या श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय बनवावें पर वह अनुप्रास से अलग नहीं हो सकते। झुनझुनूवाले का लछमन झूला, रामचन्द्र गोइनका का जनाना घाट, सोदपुरका पिंजरापोल रायबहादुर बदरीदास मुकीमका माणिकतल्लेवाला मन्दिर, मिर्जापुर की गोवर्द्धनगोशाला, सहारनपुर का (मेरी) सारदासदन, कांगड़ी का गुरुकुल हिन्दीहीन हिन्दू विश्वविद्यालय, बाबा ज्ञानानन्द का शरीर और निगमागम मण्डली, व्याख्यान वाचस्पति महामंत्री दीनदयालुजी का श्रीभारत धर्म महामण्डल, प्रयाग की सेवा समिति और थूकापन्थी भी अनुप्रास के आश्रित ही हैं।

हिन्दुओं के परब्रह्म परमात्मा, ब्रह्मा विष्णु शिव, वरुण कुवेर, जय विजय नामक दोनों द्वारपाल, सूर्यचन्द्र, ग्रहनक्षत्र, काली कमला शीतला सरस्वती, महामाया, इन्द्राणी शर्वाणी कल्याणी, देवदानवों, देवीदेवताओं, नरीकिन्नरी अप्सराओं, गन्धर्वों और भूतप्रेत पिशाचों में ही नहीं मुसलमानों के पाकपरवरदिगार, अकबर हजरत मुहम्मद पीर पैगम्बर, पांचपीर, हसन हुसैन, मक्के मदीने, कलामअल्लाह, जामा मसजिद,मोती मसजिद, मीनामसजिद, रोजारमजान, अलहम दुलिल्लाह, शीया सुन्नी में; ईसाइयों के ईसामसीह बाइबल, मरियम, देवदूत, प्रभातप्रार्थना में, तथा बौद्धों के बुद्धदेव शाक्यसिंह, पद्मपाणि, प्रज्ञापारमिता, बौद्धविहार, दलाईलामा में सिखों के नानक और गुरुगोविन्द में; जैनियों के पार्श्वनाथ पहाड़ में, आर्यसमाजियों के स्वामी दयानन्द सरस्वती और सत्यार्थप्रकाश में, ब्रह्मसमाजियोंके राजाराममोहनराय में और वैष्णवों के वल्लभाचार्य में भी अनुप्रास है।

कुंभ मेलेपर ओ० आर० आर० से हरद्वार जा हरकी पैरी के पुल के पास जगज्जननी जाह्नवी के शीतल जलसे पाप, ताप त्रयताप प्रक्षालन करो त्रिवेणी के तटपर माघ मेले में मुण्डन करा मकर नहाओ सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र या मलमास में राजगिरि जा स्नानदान करो, संक्रान्ति के समय सागर सङ्गम या गङ्गासागर का सफर करो कार्त्तिक की पूर्णिमा पर हरिहरक्षेत्र जाकर

गण्डकी में गोते लगाओ, बैजनाथ जी में बं बं बोलो या काशी के कङ्कर शिवशङ्कर समान जानो, कोटकांगड़े की नयनादेवी के दर्शन करो या मन चंगा तो कठौती में गंगा के अनुसार शिक्षा दीक्षा ले घरपर ही अतिथि अभ्यागतों, साधु सन्यासियों की सेवा कर मेवा पाओ, चाहे व्यसनी व्यभिचारी विहारी विलासी बाबू बनकर विषय वासना के वशीभूत होकर बागबगीचे की बारह दरी में चुपचाप सङ्गी साथियों के साथ मिलजुल आमोद प्रमोद, ऐशोइशरत, ऐशोनिशात करो, शराब कबाब और मांस मछलियाँ उड़ाओ होटलों में बोतलों के बिलों का टोटल दे बङ्क पर चेक काटो या भाटभिखारियों दीनदुखियों और लूले लँगड़ों को कानी कौड़ी न दे महफिल में मुजरा सुन रंडीभँड़वे और भाँड़ भगतिनों को इनाम एकरामदे सब स्वाहा कर डालो या शिखासूत्र परित्याग परमहंस बनो या बल्लभकुलियों को "तन मन धन अर्पन" कर समर्पण ले लो पर अनुप्रास सदा साथ रहेगा।

धर्म की गहन गति मन के अनुकूल न हो तो समाज संशोधन की ही ठहरे। पहले समाज शरीर का स्वरूप स्थिर करो, विवाह बन्धन, जात पांत, छुआछूत, चूल्हे चौके, पञ्चपरमेश्वर और खानपानका ध्यान छोड़ एकामेक गड्डमगड्ड हो पुरुषोत्तमपुरीकी प्रथा प्रचलित करो या दादू दयाल और सुन्दरदासकी सच्ची सलाह सुन वाममार्गसे मुँह मोड़ो, या पतित जातियोंको शुद्ध कर नया नाता जोड़ो या स्त्रियों को शिक्षा और स्वतन्त्रता दे उनके शुभचिन्तक बनो या उन्हें निपट निरक्षर और निपढ़ बना परदे के पीछे रख कूपमंडूक बनाओ पर अनुप्रास पास ही रहेगा।

आश्रम।

ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास यह चार आश्रम हैं। इस कराल कलिकालमें ब्रह्मचर्य्य की व्याख्या वृथा है। नामके ब्रह्मचारी बहुत पर काम के कम हैं। वानप्रस्थ विदा हो चुका है। संन्यास का स्वरूप है पर शीलस्वभाव नहीं। हाँ, गृहस्थाश्रमका गौरव ग्वालोंकी कौन कहे, गोस्वामियोंतक में है। इसलिये अब मैं गृहस्थ के घरमें ही घुसकर अनुप्रासकी तलाश करता हूँ क्योंकि धर्मकी चर्चा करना लोहेके चने चवाने हैं।

गृहस्थाश्रम।

गृहस्थाश्रममें गमन करते ही विवाह—पाणिग्रहणकी चिन्ता चित्तको चञ्चल करती है। घरनीके बिना घर नहीं—गृहिणी बिना गृह नहीं। स्वजनों परिजनों, पुरजनों से नीची नजर न करो तो बनी बात विगड़ती है क्योंकि क्वारेवारे क्वारे कच्चेका सङ्गसाथ ठहरा। शहर बाजार और नजर की ही नहीं गवईं गाँव और दिहातोंकी भी यही दशा है। दादा दादी, माता पिता, चाचा चाची, काका काकी, भाई भौजाई, भाई भतीजे, जीजा जीजी, फूफा फूफी, नाना नानी, मामा मामी, और बहन बहनोईकी बदौलत सम्बन्ध—सगार्त्त—सगाई हो गयी। वैदिक लौकिक रीत भांत होने लगी। गाने बजाने, नाचगान, रागरङ्गका बाजार गर्म हुआ। चहलपहल हुई। सजधज, बाजेगाजे, ठाठबाठ, धूमधाम, धूमधड़क्के, तूमतराक, और शानशौकत से ठस्से के साथ बनरेने सिरपर सेहरा रख घर से घोड़ी या पीनस पालकी तामजाम या बिहार की खडखड़िया पर सुभसायतमें यात्रा की। अपने बेगाने अपने पराये बराती बने। खाते पीते, उठते बैठते, सोते जागते, पैदल चलते, ठीक ठिकाने पहुंचे यह उस समयकी बात है जब रेलका जाल नहीं फैला था। अब तो स्टेशन जा टिकट कटा माल तुला महसूल दे दिवा पलाटफौर्म पर टहलने लगे पहलेसे डब्बे रिजर्व करा लो तो कोई झंझट नहीं। सिगनेलने सिर झुकाया। गाड़ी आयी। चढ़ बैठे। नहीं तो भीड़भाड़ में धक्कमधक्के ठेल मठेले, ठाँयँठाँयँ, चखचख, ले ले, दे दे, तू तू, मैं मैं, हायहाय ही नहीं, लप्पड़ थप्पड़, धौलधप्पे, चपत तमाचे, चांटे, चटकने, चनकटे, मुक्के, लात, जूतें, जूतीपैजार, मारपीट तककी नौबत पहुँच जाती है।

पर तोभी गाड़ी में गुजर नहीं। घंटा बजते सीटी हुई और गाड़ी यह गयी वह गयी। कुलियों की कामना पूरी करने में कोताही की और हुज्जत हुई। इससे स्टेशनमास्टर से ले मेहतरतकका मुँह मीठा करना मुसाफिरों के लिये मुफीद है। तीसरे दरजे के मुसाफिरों से ही रेलवेवालों का रोजी रुजगार, रोजी रोटी चलती है और घर भरता है पर तोभी उनके सुख दुख का पूछनेवाला कोई नहीं और न कोई उनकी खोज खबरही लेता है। सचमुच उनका धनीधोरी कोई नहीं है। गरमी के मौसम में पथिक पिपासा से पीड़ित हो पुकारते पुकारते पसीने पसीने हो जाते हैं पर पानीपाँड़े जी (चाहे वह कोरी कलवारही क्यों न हों) टससे मस नहीं होते। कृपा कर आये भी तो डोल बालटी लोटा खाली दिखा रफूचक्कर हो जाते हैं। मुसलमानोंके सक्के या विहिश्ती सुराही गिलास लिये पहले गोरे गार्ड ड्राइवरों के ढिग जाते। पीछे मकरूह मुसाफिरोंका मुआइना करते हैं। यही नहीं, गाड़ियां लड़ गईं या आपस में उनकी टक्कर हो गयीतो जानकी जोखिम है। प्राण पखेरू के उड़ने में बिलम्ब नहीं होता।

अच्छा अब आगे का हाल अहवाल सुनिये। बरात के डेरा डालते ही बेटी के बाप पर बेभाव पड़ने लगती है। वह बेचारा बराती घराती, आये गये, पई पाहुने, न्योतहारी, व्योहारी, दोस्त आशना, गुरू पुरोहित, सगे सम्बन्धी के आवभाव, आदर सत्कार, खिलाने पिलाने सुलानेके प्रबन्ध में ही पग जाता है। गरजने चिल्लाने, बकने भूकने, समझाने बुझाने और गुलगपाड़े से तबियत हैरान परेशान रहती है। सुबह शाम, साँझ सबेरे जब देखो तब वही बात। अकेले की आफत है। जो धन जन से भरा पूरा है उसकी कुछ मत पूछो। भागवान का हल भूत जोतता है। गरीबों को भगवान का भरोसा है। उनका बेड़ावही पार करता है। इसलिये हिम्मत हारने या मन मारने की ज़रूरत नहीं। पर औरतें गीत गाने, गाली गाने, सीठने सुनाने, सिङ्गारपटार करने और चोटीपाटी, मेंहदी महावर, मिस्सी सुरमें में ही मस्त रहती हैं। उन्हें फालतू बातों से क्या मतलब ? खैर, शुभ समय में कन्यादान हुआ। मातृ का पूजन, शाखोच्चार, सतपदी, पादप्रक्षालन, मधुपर्क, सिन्दूरदान आदि शास्त्रोक्त रीतियाँ यथासमय की गयीं।

माँगरमँडवे 'कुँवरकलेवे, बत्तीमिलाई, गूंथ खुलाई, पत्तलबदलौअल, टीकापटा, पांवपखरावनी आदि क्रियाचार में कुछ कोरकसर या गलती भूल नहीं रही। यहां तक कि, गोबरगणेश की पूजा भी पहले ही विधिवत् कर दी गयी थी। वर वधू को बधाइयां और मुबारकबाद मिला। दोनों ओर खूब वारे न्यारे हुए। खर्च वर्च हैसियत के हिसाब से करना ही होशियारों का उसूल है। नहीं तो ब्याह बाद पत्तर भारी हो जाती है।

इसके बाद जेमाजूठी, ज्योनार भोज, भोजनछाजन की बारी आयी। आहारेव्योहारे लज्जा नकारे। लाचार निर्लज्ज हो न्योता खाने लोग चले आये। पहले पानीपत्तर, जलपत्तल, परोसने की पुरानी प्रथा है। अब साथ में लोटा गिलास लाने की चाल चल बसी है। इसलिये किसोरों, सकोरों, पुरबों का प्रबन्ध हो जाता है। कच्चीपक्की, निखरे सखरे, आमिष निरामिष का विचार बेहद बढ़ गया है। घृतपक्कं पयोपक्कं के भी प्रेमी हैं। पर कानकुब्जों की कहानी अकथ है। वह तीन जने इकट्ठे हो तेरह चूल्हे चाहते हैं। बेटीरोटी व्यवहार का वहाँ बड़ा बखेड़ा है। पर हम चौबे चतुर्वेदियों की चाल निराली है। इनकी मथुरा ही न्यारी है। यहाँ भेदभाव नहीं। सब साथ खाने पीने वाले हैं। हाँ, लकीरके फकीर जरूर हैं। लीक लगाये बिना इनका काम नहीं चलता है। यथास्थान सब के आसीन हो जाने पर परोसनेवालों ने पाकप्रणाली के अनुसार परिवेषण प्रारंभ किया। मैं भी साग सब्जी और साग तरकारी से ही शुरू करता हूँ। लीजियेः—

रसीला मठीला आलू, आलू परवल पालक, कोहड़ा

कदुआ करैला केला करमकल्ला कच्चू, तुरई मुरई, मूली मटर, पपीता, रामतरोई, नेनवां, गोबी गाजर अरवी, करैले की कलौंजी, कचनार की कलियों का रायता, आलू और आमका अचार, चटनी, चटपटी चटनी, आम आमलेका मुरब्बा, जलजीरा, कानकुब्जों की कढ़ी करायल, पपची पान।

कच्ची।

चावल दाल, रोटी पूरी, खीर भोर, खीरपूरी, खीरमहेरी, निमोना, खिचड़ीके चारों यार—घी दही पापड़ अचार, बरी, तिलौरी, फुलौरी, पकौरी, तरीबरी, रसखीर, दालफलका।

पक्की

पूरी कचौरी, पूरी परामठा, पूरी तरकारी, दिलखुशहाल खुहाल, रबड़ी बालौंधी, लड्डूपेड़ा, मोहनभोग मालपूआ, सोहनहलुआ, समोसा, बुंदियादाना, परवललत्ती, गुपचुप, बादाम की बर्फी, कलाकन्द, खाजा खुरमा, गुलगुला, सकरपाला, बड़ा पापड़, मटरकी छीमी, बालाई मलाई, इमिरती, इन्दरसा, गुलाबजामुन, जलेबी, गटेटा, उलटा चीला, मोतीचूर मगदल, मेवामिठाई, दूध दही, मक्खन मिसरी, नवनीत, मिष्टान्न, पकान्न, शाकान्न, चव्य चोष्य, लेह्य पेय पदार्थों के सिवा मीठे सीठे, खट्टे चरपरे, कड़वेकसैले, तीते, सारांश कि, षटरस की स्वादिष्ट सामग्री संगृहीत थी।

फल।

फलाहारियों के लिये फलमूल, सेव नासपाती अंगूर अनार, अंजीर अखरोट, अमरूद अनन्नास, आम जामन, केले नारियल, शहतूत, खिन्नी, आम इमली, नीबू नारङ्गी, कटहल बड़हल, कमरख कमलगट्टे, सीताफल शरीफे, श्रीफल, बेल, चिरौंजी किसमिस पिस्ते, मुनक्के, बादाम बिहीदाने, खीरे ककरी तरबूज और खरबूजे भी खरीदे गये थे।

मुसलमानों के लिये बावर्चियों के बनाये कलिया कवाब, कलिया पुलाव, कोफता कोर्म्मा, शीरमाल, जरदा, बिरियानी, केक बिसकिट, चा चीनी, मुर्गमुतंजन वगैरह खाने अलग दस्तरख्वान पर चुने गये थे।

जिसे जुरता नहीं वह बेचारा बापुरा गरीब दालदलिया, सागसत्तू, चनाचबेना, रूखासूखा, मोटाझोटा, मोटा महीन, पत्रंपुष्पं लेकर ही समधीका सत्कार करता है।

खानाखाने, भोजनकरने, भक्षणकरने, भकोसने और भखने पर हाथ मुंह धो कुल्ला कर, खरके, तिनके से दांत खोद कोई पानसुपारी, लौंग लायची, सुरती जरदा तम्बाकू खाता है और कोई चिलम, तमाकू, टिकिया तमाकू, हुक्का गड़गड़ा चुरुट बीड़ी सिगरेट पीता है। नये शौकीन ताम्बूल विहार और जीनतान पर टूटते हैं। मतलब यह कि, बन्दोबस्त बड़ा बढ़िया था। जिसने जो मांगा वही मिला।

इसके बाद बरात बिदा हुई। बरतन बासन, बासनकूसन, असनवसन, जामाजोड़ा, लहँगा लुगरा, ओढ़नाबिछौना, तोषकतकिया, गहनागुरिया, गहनागांठी, रुपयेपैसे, जहेज, दानदहेज दमाद को दस्तूर से ज्यादा दिये गये थे। नगदनारायण में भी न्यूनता न थी। जिन लोगों में लेन देन की—टहरौनी की रीत है उनमें बड़ा झगड़ाझंटा, झगड़ा बखेड़ा होता है पर यहाँ चींचपड़, गड़बड़झड़बड़के बिना हँसी खुशी मामला मिटा। विदा के वक्त स्त्रियों का मिलनाजुलना, मिलना भेंटना, लिपटना, रोनाधोना देखकर पत्थर भी पसीजता था। जनाब बेटीकी बिदा है या दिल्लगी दुष्यन्त के दरबार में शकुन्तला को भेजते समय काननवासी कठोर कण्व का भी कलेजा कांप गया था। यह हमारा तुम्हारा नहीं कवियों के कुलगुरु कालिदास का कथन है। खैर, बहू की विदा ले बरात बस्ती के बाहर हुई। गौने रौने की रस्म भी पूरी कर दी गयी। जैसे गयी थी वैसे ही कुशल मङ्गल बरात घर वापिस आयी। बहू के निरीछन परीछन हो जाने के बाद बेटे बहू या वरवधू का गृह प्रवेश हुआ। पाँव पड़ाई और मुँह दिखाई

हुई। सास ससुर, देवरानी, जिठानी, नन्द ननदोई से नया नेह नाता लगा। ससुराल में साली सलहज, साला साली और साढ़ू का सम्बन्ध स्वयं सिद्ध हो जाता है।

यहाँ तक तो अनुप्रास के अन्वेषण में कृतकार्य हुआ। आगे कौन कह सकता है कि, क्या होगा पर मैं पीछे पैर देनेवाला नहीं। धैर्य धारण कर दिन दूने रात चौगुने साहस और उत्साह से हाट बाट, घर घाट नदी नाले, जङ्गल झाड़ी, वन पर्वत की कौन कहे देश विदेश और सात समुद्र पार जाकर द्वीप द्वीपान्तरों में दिन दोपहर, दिन दहाड़े, रात बिरात, बेरोक टोक विचरण करूँगा और मौका मिलते ही अनुप्रास की खुशखबरी, शुभ समाचार सब को सुनाऊँगा। अभी तो गृहस्थाश्रम ग्रहण कर दार परिग्रह ही हुआ है। उसके सुख सम्भोग, सुख शान्ति, सन्तान सुख, राग रंग और दुख दारिद्र, शोक सन्ताप, कलह क्लेश, हर्षविषाद तथा जञ्जाल का जिक्र ही नहीं आया है। गृहस्थ को सब ही भोग भोगने पड़ते हैं। यह देह का दण्ड है। लीलामय की लीला अपरम्पार है। वह तिल को ताड़ और पर्वत को राई कर सकता है। भूत-नाथ भगवान भवानीपति अलबेले भोलानाथ का ही भारी भरोसा है कि, वह भली भाँत भला करेंगे।

——:o:——

ब्रजभाषा और खड़ी बोली की कविता।

——:o:——

[लेखक—बाबू भगवन्नारायण भार्गव.]

श्रीमान् सभापति जी तथा महोदय गण !

आज मैं एक ऐसे विषय को आप लोगों के समक्ष उपस्थित करने के लिये खड़ा हुआ हूँ जिस पर अनेक विद्वान अपनी २ आदरणीय अनुमतियाँ प्रकट कर चुके हैं और जिसके कारण मुझको खेद है कि अनेक साहित्य सेवियों में परस्पर विरोध-भाव उत्पन्न होगया है। मेरी प्रबल इच्छा है कि जो बात बुद्धि व न्याय संगत प्रतीत हो उसी का अनुपालन करते हुये हम इस विवाद को सर्वथा शान्त करके सच्ची साहित्य-सेवा करें।

प्रिय सज्जनो ! यह बात सर्व मान्य है कि भूत वर्तमान और भविष्यकाल का इतना घनिष्ट संबन्ध है कि यदि उनमें से एक का भी बहिष्कार कर दिया जाय तो शेष दो का भी लोप निःसन्देह हो जायगा। यदि भूतकाल को आप सर्वथा तिलाञ्जलि दे दें तो वर्तमान और भविष्य मूलाधार रहित होकर नष्ट होजायँगे। विशेषतः यहबात साहित्य के सम्बन्ध में भली प्रकार प्रयुक्त होती है। यदि हम अपने प्राचीन साहित्य की उपेक्षा व निरादर करते जायँगे यदि हम उसकी रक्षा त्याग देंगे और यदि हम उसके पठन पाठन से भी कणमात्र प्रीति न रक्खेंगे तो हम वर्तमान काल में चाहे जितनी नूतन साहित्य की वृद्धि करते जायँ, वह समस्त वृद्धि मूलाश्रित न होने के कारण एक दिन अदृष्ट हो जायगी। प्रिय सज्जनो ! जब हम हिन्दी की उन्नति पर, उसके उच्च शिक्षा के माध्यम होने पर और उसके महत्व पर विचार करने बैठे तो हमारा परमावश्यक कर्त्तव्य है कि उसके गद्य तथा पद्य मय जीवित साहित्य पर एक दृष्टि अवश्य डालें। परन्तु यहाँ हमारा केवल पद्य मय साहित्य से सम्बन्ध है। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि अभी ब्रजभाषा के पद्य काव्य का साहित्य खड़ी बोली के पद्य काव्य से कहीं अधिक है, और कोई कोई सज्जन इसपर भी विश्वास करते हैं कि ब्रज भाषा के कवि भी अच्छे अच्छे होगये हैं परन्तु खेद है कि कुछ विद्वज्जन इस बात को स्वीकार करना बड़े भारी पाप का भागी होना समझते हैं। वे कहते हैं कि जैसे सुकवि आज कल हैं अथवा वे स्वयमेव हैं प्राचीन काल में ब्रजभाषा अर्थात् पड़ी बोली का वैसा एक भी कवि नहीं हुआ। उनका कथन है कि ब्रजभाषा के कवि केवल नुपुरों के रव ही में मस्त रहे, उनकी भाषा में ऊपरी शक्कर ही शक्कर है परन्तु हृदय को मोहने वाली वस्तु नहीं। हाय! खड़ी बोली के भक्तजन यहाँ तक कहने का साहस करते हैं कि ब्रजभाषा के काव्य में उच्चभावों की सहानुभूति विरल है लोकानुभूति तो और भी विरल ! क्या उनकी कविता में केवल शब्द सम्बन्धी विभूति ही है क्या वे लोग केवल वाह्याडम्बर और शब्दाडम्बर ही में पड़े रहे, क्या उनकी कविता की भाषा में केवल घटा टोप और कृत्रिमता ही पाई जाती है? किसी २ सच्चे भक्त का कथन है कि प्राचीन कविताओं में बस शृङ्गार और भक्ति रसही है, और वीर रसादिकों का अभाव है; यदि है भी तो इतना ही कि वे केवल रक्त संचालन करने ही में समर्थ हैं नाड़ियों में जीवनी शक्ति उत्पन्न नहीं कर सकती, उनको उपयोगी और भावमयी कविता तो वहां मिलती ही नहीं क्योंकि वे कहते हैं कि भूषण जैसे कविका भी ध्यान भावमयी कविता की ओर नहीं

गया। हा! क्या हमारे कवियों ने चमत्कार की ओर ही ध्यान रक्खा उपयोगिता की ओर किञ्चिदपि नहीं? क्या वहाँ केवल मनोविनोदही की सामग्री दृष्टिगोचर होती है?

प्रिय सज्जनो! यदि इन सब बातों का सारांश यही है कि प्राचीन कविता में कण मात्र सद्भाव और सदुपयोगिता नहीं है, यदि प्राचीन कवि घोर मूर्खता के साक्षात् अवतारही थे यदि स्रष्टा ने यही ठान रक्खा था कि उन दिनों में जितने कवि हों वे सब के सब कवित्वशक्ति से हीन हों, यदि उनकी कविता हम लोगों को अकथनीय हानि पहुँचानेवाली है और यदि उसके अस्तित्वहो से भारत धूलि में सम्मिलित हो जायगा तो आइये, शीघ्र आइये, हमारे देश में जितना उस सड़ी पड़ी भाषा का साहित्य है उसको एकत्रित करें और आगामी होली पर भारत के केन्द्रस्थल में अग्निदेव के समर्पण करें और परमप्यारी खड़ी बोली के भीतरी और बाहरी शक्कर से युक्त रागों के मस्तगान द्वारा भारत का उद्धार करके कृतकृत्य हो जायँ।

प्रिय सज्जनो! मेरा निवेदन है कि, जिनका कथन है कि प्राचीन कविता भावमयी और उपयोगी नहीं है, उन महाशयों ने उस कविताबाटिका में अपने नेत्रों को खोलकर विचरण नहीं किया है, और उन्होंने अपने बुद्धि स्वातन्त्र्य को जो कि मनुष्यत्व का मुख्य लक्षण है किञ्चिदपि व्यय नहीं किया यदि वे अपने बाह्य और आन्तरिक चक्षुओं को लेश मात्र भी कष्ट देते तो उनको वहाँ कुछ और ही दीख पड़ता। परन्तु उनके पक्षपात और स्वकवित्व शक्ति के महत्व ने अपने भार से उनके नेत्र बन्द कर दिये हैं। जब तक निष्पक्षपात होकर किसी विषय पर विचार न किया जाय तब तक उसका निर्णय होना सर्वथा असम्भव है। मेरे उपरोक्त कथन से यह न समझा जाय कि मेरी मति में जो कुछ पुराना है शुद्ध और उपयोगी है और जो कुछ आधुनिक है निन्दनीय है। मैं कविवर कालिदास जी से सहमत हूँ।

पुराणमित्येवनसाधुसर्वं
न चाऽपि, काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः॥

परन्तु आज कल बहुतों को यह रोग होगया है कि जो कुछ भी प्राचीन है सर्वथा निन्दनीय है। इसकी औषधि कठिन है ऐसे रोगी जन बड़े ही हठी होते हैं परन्तु अब भी उनकी दशा असाध्य नहीं हुई है।

प्रिय सज्जनो! जिन महानुभावों ने मतिराम भूषण और श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्यों को ध्यान से पढ़ा होगा वे स्पष्ट रीति से यह कह सकते हैं कि वहाँ हमारे परमहित की कविता है या नहीं. केवल यह कह देने से कि प्राचीन कविता तुच्छ है काम नहीं चल सकता। उस कविता के अध्ययन और उस पर मनन करने के लिये समय की आवश्यकता है।

अच्छा, क्षणभर को यही मान लिया जाय कि उस कविता में केवल शब्दाडम्बरही है और वह हमारेलिये सर्वथा अनुपयोगी ही है तो अब यह परमोचित है कि हम उसका नाश करदें और भारतोद्धार में कटिबद्ध होकर लग जायँ।

प्रिय महानुभावो! क्या आप की इच्छा है कि हमारा प्यारा भारत शिक्षित होजाय, क्या आप चाहते हैं कि समस्त भारतवासी जन मनुष्य कहलाने योग्य होजायँ, क्या आपकी अभिलाषा है कि हम सब कर्त्तव्य परायणता के सच्चे सेवी होजायँ, क्या आपको बुद्धि स्वातन्त्र्य से किञ्चिदपि प्रेम है और क्या आपको स्वदेशोन्नति अभीष्ट है? यदि हां, तो कृपाकर ऐसा प्रयत्न कीजिये जिससे प्यारी हिन्दी उच्च शिक्षा का माध्यम बनादी जाय। सब कुछ प्रयत्न किया जा सकता है और हमारी Government भी इसके लिये आज्ञा देने को तैयार होजायगी परन्तु हम तो उस कार्य के भार को लेने के लिये उद्यत ही नहीं हैं क्योंकि हमारे यहाँ पद्य-काव्य का अभाव ही सा है जो कि

साहित्य का एक विशेष अङ्ग है। बस, यही दस पांच खड़ी बोली की कविता की पुस्तकें हैं और वेही उपयोगी हो सकती हैं, ब्रजभाषा का काव्य तो काम में आही नहीं सकता और आना भी नहीं चाहिये अन्यथा भारत शीघ्रही रसातल-दर्शन करेगा। तो फिर अब क्या करना चाहिये, या तो हाथ पर हाथ रक्खे आलस्यमूर्ति बने रहकर जृम्भिकादेवी का पूजन, उत्कट स्नेह से किया करें अथवा जितने खड़ी बोली के सच्चे भक्त हैं वे चौबीसों घण्टे एक ही स्थान पर बैठे २ काव्य लिखें तो सम्भव है कि कुछ वर्षों के पश्चात् उपयोगी और स्वाभाविक काव्य तैयार होजाय पर बिना विचारे वे ऐसा न करें। यह भी ध्यान रखना परमावश्यक है कि वह काव्य उच्चशिक्षा के योग्य होगा या नहीं। होगा या नहीं, यह तो वे ही जानें जो भावमयी तथा उपयोगी कविता कर सकते हों।

प्रिय सज्जनों! यदि आप थोड़े ही समय में जब तक वैज्ञानिक तथा अन्य शास्त्रों की पुस्तकों की रचना हो हिन्दी द्वारा उच्च शिक्षा की सम्भावना की इच्छा रखते हों तो आपको अवश्यमेव उसी पुराने ढर्रे की घटाटोप तथा वाह्याडम्बर-वाली कृत्रिम और गड़बड़भाषामय सड़ी पड़ी मरी कविता की सेवा करनी ही पड़ेगी।

इस बात को मनुष्य की बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती कि प्राचीन कवियों ने हम लोगों के लिये उपयोगी और भावमयी कविता नहीं लिखी। यह मैं मानता हूं कि श्रृङ्गाररस की जैसी कविता पहिले होती थी अब उसकी आवश्यकता नहीं, यह समय की बात है परन्तु यह कह देना कि वहां केवल नूपुरों का रवही है सर्वथा मिथ्या है। उन पूज्य कवियों ने नवरस की कविता लिखी है और अनेकों कविताएँ हैं जो हमारे लिये परमोपयोगी हैं।

क्या हम लोग अब ऐसे जड़बुद्धि होगये कि श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी को सर्वथा विस्मृतकर दिया। सम्भव है हमको उनका स्मरण इस कारण से न रहा हो कि उनकी वाह्याडम्बर-वाली कविता अब हानिकारक और अनुपयोगी है अथवा इस कारण से कि उसकी भाषा कहीं २ दुरङ्गी पाई जाती है अथवा यह कारण हो कि आजकल उनसे बढ़ चढ़कर कवि होने लगे हैं। जो कुछ भी हो परन्तु मैं यह निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि हमारे लिये उनकी कविता परमोपयोगी है। उन्होंने प्रत्येक रस की कविता की है उससे हमको आधुनिक आन्दोलनों पर भी शिक्षा मिलती है कहाँ तक कहें हमारे प्राणप्रिय स्वराज्य की भी महिमा पूज्य गोस्वामी जी ने गाई है। वास्तविक बात तो यह है कि जब कोई नेत्रों को खोलकर निष्पक्षपात होकर उसका अध्ययन करे तभी उपयोगिता और अनुपयोगिता का निश्चय हो सकता है अन्यथा नहीं। गोस्वामी जी का जैसा महत्व आज भारत के प्रत्येक घर २ में छा रहा है उसको सभी जानते हैं भारत क्या विदेशों में भी उनकी महिमा गाई जारही है विविध प्रकार की पुस्तकें उनके सामाजिक राजनैतिक, काव्य सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार के विचारों पर रची जारही हैं। इन सब बातों से क्या निश्चित होता है वह भक्तजन ही विचार लें। मेरे कहने से कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि वे लोग अपने सिद्धांतों को सर्वथा शुद्ध और अकाट्य मानते हैं वे जब एक के भक्त हो चुके तो अन्य से क्या? "एकोदेवा केशवो वा शिवो वा"।

हमको भूषण और मतिराम आदि में वीररस की कविता नहीं मिलती और वहां 'तुपकें तड़कें भड़कें' ही पाई जाती हैं ऐसा कहना महा अन्याय है। यदि कोई यह ठान करही बैठ जाय कि ब्रज भाषा की कविताही नहीं तो इसका क्या उपाय? एकही पक्ष में सहसा डूबे चले जाने से दूसरे पक्ष की सुधि नहीं रहती। यदि कोई काना आदमी एकही ओर देखता हुआ मार्ग में चला जावे तो दूसरी ओर का अस्तित्व ही उस पर प्रकट नहीं

हो सकता जब तक वह मुख फेर कर उधर भी दृष्टि न डाले।

कोई २ कहते हैं कि अच्छा यह मान भी लिया जाय कि ब्रजभाषा के प्राचीन साहित्य की रक्षा की जाय तो भी वे कहते हैं कि अब पुराने ढर्रे की कविता असामयिक है, इसलिये ब्रजभाषामें कविता न होनी चाहिए। और वह अप्रचलित होनेके कारण समझमें भी नहीं आसकती। यदि यही कारण है तो उसका प्रचार क्यों न किया जाय यदि हम उच्च शिक्षाके काव्यमें ब्रजभाषा की पुस्तकें रक्खेंगे तो यह परमावश्यक है कि हम उस काव्य का प्रचार पुस्तक पत्रादिकों द्वारा भी रक्खें अन्यथा विद्यार्थियों की अच्छी उन्नति न होगी और उस प्राचीन साहित्य की वही दशा हो जायगी जैसी कि संस्कृत लैटिन ग्रीक और हेब्रू की हो गई है। अतएव मासिकपत्रादिकों में समयानुकूल बृजभाषा की कविताएँ रहनी चाहिये। जब सर्वत्र खड़ी बोलीही खड़ी दृष्टिगोचर होगी तो उस पुरानी भाषा को समझने के झगड़े में कौन पड़ेगा और उच्च शिक्षा देनेके लिये ऐसे अध्यापक भी जो उसको समझते हों न मिलेंगे। किसी बात का समझना या न समझना जादू का खेल नहीं है यह बात मनुष्यों के हाथ में है। जब ब्रजभाषा की कविता का प्रचार होगा और उच्चशिक्षा में उसका समझना अनिवार्य होगा तो उसके समझनेवाले भी अगणित हो जायँगे। यह कहना कि आजकल ब्रजभाषा के जानने और समझनेवाले कम हैं केवल भ्रममूलक है। यदि समाचार पत्रादिकों में उसकी कविताएँ कम मिलती हैं तो यह न समझना चाहिये कि उसके प्रेमी कम हैं। यह परिणाम है खड़ी बोली की हवा का जिसने ऐसे २ महापुरुषों को उत्पन्न कर दिया है जो ब्रजभाषा मात्र के उत्कट शत्रु हो गये हैं। वे ब्रजभाषा का मुख भी नहीं देखना चाहते और यदि अभाग्यवश देख भी लेते हैं तो स्नानादि करके प्रायश्चित्त करते हैं।

प्रिय सज्जनो! जहाँ कहां खड़ी बोली के पद्य हैं बस वहां कविता है और यदि उसी को ब्रजभाषामें रख दिया जाय तो उसमें बाह्याडम्बर और कृत्रिमता आजाती है, ऐसा विचार बुद्धि कहाँ तक ग्रहण कर सकती है यह विचारणीय है। ब्रजभाषा में कविता बन्द कर देने से साहित्य को भी महती हानि होगी क्योंकि जितने अच्छे २ कवि खड़ी बोली के हैं उनसे अधिक कवि ब्रजभाषा के निकलेंगे परन्तु उनके पुराने ढर्रे को देखकर लोग नाक सिकोड़ लेते हैं जब उनको कहीं से उत्साह ही नहीं मिलता और न उनका आदर होता है तो हम उनसे लाभ कैसे प्राप्त कर सकते हैं। ब्रजभाषा का कोई भी सच्चा कवि जीवित है या नहीं यह तो तभी निश्चित हो सकता है जब अन्धभक्ति और पक्षपात का परदा उठा दिया जाय।

यह कहना कि ब्रजभाषा की कविता समझ में नहीं आती अपना ही उपहास कराना है क्योंकि जो मनुष्य ब्रजभाषा को नहीं समझता वह अपने को हिन्दी-ज्ञाता भी कहने का साहस नहीं कर सकता। क्या जिसने खड़ी बोली की दो चार पुस्तकें पढ़लीं वह हिन्दी का विद्वान् हो गया। क्या जिसने केवल मेट्रीकुलेशन पास कर लिया वह अंगरेज़ी का वेत्ता हो गया।

प्रिय महानुभावो! जब हमने किसी भाषा के साहित्य ही को नहीं पढ़ा है तब हम कैसे कह सकते हैं कि हम उस भाषा को पढ़े हुये हैं। हिन्दी का काव्य-साहित्य अच्छे से अच्छा ब्रजभाषा में है जब तक हमने हिन्दी के प्राचीन साहित्य को न समझा तब तक हम अपने को हिन्दी-वेत्ता नहीं कह सकते। यह बात विचारणीय है।

सरांश यह है कि जो हिन्दी पढ़े हुये हैं वे ब्रजभाषा को समझ सकते हैं। खड़ी बोली की कविता को कदाचित् अनपढ़े भी समझ लेते हैं परन्तु वह भी सब अनपढ़े नहीं। अनपढ़ ग्रामवासी जन उस सभ्यभाषा को ब्रजभाषा की अपेक्षा कम समझते हैं। इस प्रान्तकी पूर्वदिशा में बुन्देलखण्ड मध्यभारत, राजपूताना, कुछ बङ्गाल और महाराष्ट्र

का भाग तथा मध्यप्रदेश के ग्रामवासी अनपढ़ मनुष्य ब्रजभाषा की कविता को खड़ी बोली की अपेक्षा अधिक समझ लेते हैं। तात्पर्य यह है कि हिन्दी पढ़े हुये और किञ्चिदपि पढ़े हुये ब्रजभाषा को समझ लेते हैं शिक्षित पुरुष विशेष रूप से, जो बीच के रहे वेही चाहे ब्रजभाषा को न समझें। कुछ विद्वान् यह देखकर कि ब्रजभाषा भारत का नाश कर रही है सहसा कर्मक्षेत्र में कूद पड़ते हैं और उच्चस्वर से कहते हैं कि ब्रजभाषा की कविता करने का आग्रह करनेवाले सच पूछिये तो हमारी राष्ट्रभाषा के जानी दुश्मन हैं। परन्तु मेरी तुच्छ-मति अनुसार वे दुराग्रहीजन न केवल राष्ट्रभाषा वरन् शिक्षोन्नति एवं देशोन्नति के सच्चे सहायक नहीं हैं। राष्ट्रभाषा का यह आशय है कि जिस भाषा द्वारा लोग एक दूसरे को समझ सकें। ऐसे बहुत कम विद्वान् निकलेंगे जो कविता में बातचीत करते हों। यदि यह कहा जाय कि हमारी कविता सब लोग समझ सकें और जब वह कविता राष्ट्र-भाषा में होगी तभी पढ़ और समझ सकेंगे यह बात अनुचित है क्योंकि यदि हम चाहते हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा हो और हिन्दी को लोग पढ़ें तो केवल खड़ी बोली की कविता समझ लेने से वे हिन्दी नहीं जान सकते। क्या यह आवश्यक है, नहीं नहीं अनिवार्य है कि भारतवासी कामचलाऊ हिन्दी ही पढ़ें और यदि वे अधिक पढ़ना भी चाहें तो ज़बरदस्ती रोक दिये जायँ। इन सब बातों पर पक्षपात रहित विचार करने से विश्वास होता है कि राष्ट्रीयता तथा व्यापकता का लिहाज़ रखते हुये भी ब्रजभाषा में कविता करना अच्छा होगा। प्रिय महानुभावो! अब यह विचार कीजिये कि गान विद्या तथा काव्य में कितना घनिष्ट सम्बन्ध है जो काव्य माधुर्य तथा पदलालित्य न रखता हो वह उच्चश्रेणी का नहीं कहा जा सकता है। गाने के लिये ब्रजभाषा की कविता को ही गानविद्या-विशारदों ने प्रधानता दी है।

आजकल बोलचाल की कविता की बड़ी धूम-धाम हो रही है परन्तु बोलचाल की भाषा है क्या यह भी तो विचारणीय है; प्रत्येक प्रदेश की बोलने की हिन्दी भिन्न २ है। यदि यह कहा जाय कि जो भाषा पढ़े लिखे बोलते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि उसमें अँगरेज़ी उर्दू के भी शब्द आ जाते हैं। इन सब बातों से भी यही प्रतीत होता कि एक कमीशन बिठलाया गया था जिसने बृजभाषा ही को काव्य के लिये गढ़ली। अतएव बृजभाषा ही में कविता करना परमोचित है।

मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि किसी भाषा की कविता का निरादर न होना चाहिये। आजकल बृजभाषा से बहुत अन्याय किया जा रहा है वह बन्द होना चाहिये और वास्तविक कविता का आदर करते हुये साहित्य-सेवा करनी परमोचित है।

गुजराती का हिन्दी से सम्बन्ध

[लेखक—पंडित गणपति जानकीराय दुबे बी० ए०]

गुर्जर साहित्य के इतिहासविद् लोगों ने यह बात मान ली है कि गुर्जर साहित्य का आरंभ १५ वीं शताब्दि से होता है तो अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या १५ वीं शताब्दि के पूर्व गुर्जर देश में साहित्य का अभाव था? क्या उस देश में काव्य नाटक आदि की चर्चा नहीं थी? उत्तर में कहना होगा कि जहाँ उन्नत समाज है, अभ्युदय का जन्म हो चुका है और वहाँ साहित्य संगीत और कला का आविष्कार न हुआ हो ऐसा कोई देश ही नहीं हो सकता। गुजरात देश तो बहुत प्राचीन है; वहां १५ वीं शताब्दि के पूर्व साहित्य का अस्तित्व था ही नहीं यह कह देना बड़ा साहस होगा। गुजरात में साहित्य था और वह गुर्जर का कोई प्राचीनतम साहित्य नहीं था किन्तु हिन्दी साहित्य ही गुर्जर देश पर आधिपत्य किये था।

हिन्दी-साहित्य के लोगों को यह बात सुन कर आश्चर्य होगा कि पंद्रहवीं सदी के पूर्व हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य का प्रभुत्व गुर्जर देश पर था। और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि गुर्जर जाति का एक हिन्दी भाषा समाज से प्रथम संघर्ष विक्रमीय सम्बत् की ११ वीं शताब्दि के आरंभ में हुआ। वह कैसे हुआ इसका इतिहास संक्षेप में कहना अनुचित न होगा।

सोलंकी वंश के राजा मूलराज ने पाटण का राज्य चावडा वंश के राजा सामन्तसिंह से संवत् १०१७ में छीन लिया और आप सार्वभौम राजा बन गया। मूलराज बड़ा प्रतापी था। इतिहास में मूलराज का नाम दो महत्कार्यों के कारण प्रसिद्ध हो गया है। प्रथम तो उसने सिद्धपुर क्षेत्र में जिसे मातृ गया कहते हैं एक बहुत विशाल मन्दिर "रुद्र महालय" नामक बनवाया। रुद्र महालय का मन्दिर सम्वत् १०४३ में बन चुका था इसका प्रमाण प्राचीन इतिहास के वेत्ता रायबहादुर गौरी शंकर हीराचन्द ओझा इस प्रकार देते हैं कि संवत् १०४३ के मूलराज के एक ताम्रपत्र में "श्री मदणहिल पाटण स्थानावस्थितैः अस्माभिः सूर्य ग्रहण॰ पर्वणि, श्रीस्थलके प्राची सरस्वतिवारिधि स्नात्वा त्रिदशपतिं रुद्रमहालयदेवं अभ्यर्च्य"—ऐसा उल्लेख है। इस रुद्रमहालय मंदिर की स्थापना के समय मूलराज ने एक महायज्ञ कराया था यह दूसरी महत्व की बात है जिस कारण मूलराज का नाम विख्यात है। उस यज्ञ के संपादन करने के लिये मूलराज ने भारतवर्ष के उत्तर विभाग से १०१६ मुनिकुमार सपरिवार बुलवाये और उन्हें सीहोर और सिद्धपुर ऐसे दो बड़े २ स्थान देकर बसाया। वे १०१६ मुनिकुमार किन २ प्रदेशों से गुजरात पधारे थे उसका ब्यौरा नीचे दिया जाता है

१—प्रयाग क्षेत्र से	१०५
२—च्यवन ऋषि के आश्रम से जो शाहाबाद के ज़िले में था	१००
३—सरयू नदी के तीर से	१००
४—कान्यकुब्ज देश से	२००
५—काशी से	१००
६—कुरुक्षेत्र से	७९
७—गंगाद्वार से	१००
८—नैमिषारण्य से	१००
९—कुरुक्षेत्र के प्रदेश से	१३२
कुल,	१०१६

ये मुनिकुमार सीहोर और सिद्धपुर सम्प्रदाय के औदीच्य ब्राह्मण कहलाये क्योंकि इनका आगमन उदीचि-उत्तर खंड से हुआ था। ये १००० थे इसलिये सहस्रौदीच्य कहलाये। और सोलह मुनिकुमारों ने राजाश्रय नहीं स्वीकृत किया। टोली बांध कर जुदे रहने से वे टोलकिये औदीच्य कहलाये।

इन मुनिकुमारों ने जो उत्तर भारत से गये थे अपनी भाषा का प्रभुत्व गुर्जर देश में फैलाया; क्यों कि सब ही बड़े नामी विद्वान्, धुरंधर याज्ञिक और वेद वेदाङ्ग के ज्ञाता थे। गुर्जर निवासियों का इस उत्तर देश निवासी ब्राह्मण समाज से नित्य का परिचय होने से, उनके विचार, उनकी भाषा, उनकी सभ्यता का नित्य संघर्ष होने से, गुर्जर साहित्य का आद्य रूप हिन्दी भाषा में बना था। इस बात का प्रमाण कई बातों से मिलता है जिनका विवरण आगे किया जाता है।

(१) गुर्जर भाषा की शब्द रचना और उसके संगठन में हिन्दी शब्दों के रूप बहुत मिलते जुलते दिखाई देते हैं, यहां तक कि बहुत थोड़ा परिवर्त्तन करने से हिन्दी बन जाता है। हम एक पद्य का सम सङ्गीत रूपान्तर नीचे देते हैं। यह पद्य सम्पूर्ण गुजरात में बड़े प्रेम से गाया जाता है। जब नव विवाहिता बधू अपने ससुराल में आती है तो सास उसको बधाई देकर सौभाग्य कुंकुम लगाती है उस समय वह निम्न लिखित गीत गाती है यह पद्य मित्रवर मूलजी दुल्लभ जी वेद के "निज कुञ्ज" नामक पुस्तक से उद्धृत करके रूपांतर किया है।

गुजराती	हिन्दी रूपान्तर
सौभाग्य कुमकुम घोलुँ रे लाड़ी !	सौभाग्यकुंकुम घोलूँ रे लाडलि !
सौभाग्य बीज कढावु ।	सौभाग्य बीज लगाऊँ ।
तारे भाले पूनम प्रगटो रे लाड़ी !	तेरे भाल में पूनम प्रगटे रे लाड़लि ।
सोनाने फुलडे बधाऊं ॥	सोने के फुल से बधाऊं ॥
मारा कुंवर ने ओ कोडायणी लाड़ी !	मेरे कुंवर की तू अति लाडलि प्यारी !
कनकनी गांठे ते बांध्या।	कनक की गांठ से बांधे।
तारा कनक समा कंठ काजे रे लाड़ी !	तेरे कनक से कंठ के काजे रे लाड़लि !
अमे हीरले हार मढाव्या ॥	हम हीरे से हार मढ़ाये ॥
ममता महियरनी मूकताँ रे लाड़ी !	ममता मैके की छोड़ रे लाड़लि !
स्नेहना आंसु जे सार्‍याँ।	स्नेह के आँसु बहाये।
तेथी अधकेरां मोतीना लाड़ी !	तासे विशेष मोती के जी लाड़लि !
तम काजे छे घाट घडाव्या ॥	तुम काजे हैं घाट घड़ाये ॥
महियर ने स्नेह ने सालुडे लाड़ी !	महियर के स्नेह के सालु को लाड़लि !
नव नेहनी कोर मुकावूँ ।	नव नेह की कोर लगाऊँ !
चाँदनी सम तम साडिये लाड़ी !	चाँदनी सम तेरी साड़ि को लाडलि !
चन्द्रना अमृत छाँटुँ ॥	चन्द्र का अमृत छींटू ॥
शांति समा तम माडी रे लाड़ी !	शांती सी है तेरी माता रे लाड़लि !
भक्ति शी सासु ने सेवो।	भक्ति सी सास को सेवो।

गुजराती	हिन्दी रूपान्तर
योग समा तम तात रे लाड़ी !	योग से हैं तेरे तात रे लाड़लि !
ससरा जी ज्ञान नो दीवो ॥	ज्ञान के दीप ससुर जी ।
छत्र समा तम महियर लाड़ी !	छत्र सा है तेरा मैका लाड़लि !
मोटा वड़लानी नवी छाया ।	बड़े बड़ की सी नई छाया ।
माने है ये दुध पीधां रे लाड़ी !	माके हिये दूध पीया रे लाड़लि !
पीजो नवनीत नेहनी माया ॥	पीओ नवनीत नेह की माया ॥

नानी कनकनी वेल तुँ लाड़ी !	छोटी कनक की बेलि तू लाड़लि !
मारो कुंवरजि विराट बाधे ।	मेरे कुंवरजी विराट राजें ।
ए हेम ने क्षेमना लग्न रे लाड़ी !	हेम अरु क्षेम के लग्न रे लाडलि !
संसार ने शीलाँ छाशे ॥	संसार शान्ति बिराजे ॥
सौभाग्य कुमकुम घोल रे लाड़ी !	सौभाग्य कुंकुम घोलूँ रे लाड़लि !
सौभाग्य बीज कढावुँ ।	सौभाग्यबीज लगाऊँ ।
तारे भाले पूनम प्रगटो रे लाड़ी !	तेरे भाल में पूनम प्रगटे रे लाड़लि !
पूनम शां जगने उजालो ॥	पूनम सी जग को उजालो ॥

---:o:---

रूपांतर केवल इसी बुद्धि से किया है कि मूल गुजराती में आ जाय। हिन्दी भाषा और पद्य की दृष्टि से उसमें त्रुटि रहजाना संभव है परन्तु उससे इतना तो अवश्य ज्ञात होजायगा कि गुर्जर पद्य तथा गद्य को हिन्दी भाषा की सभ्यता की दृष्टि से देखा जाय तो बहुत कुछ साम्य दिखाई देगा।

(२) हिन्दी भाषा के प्रचलित कवित्त (घनाक्षरी, छन्द, दोहा, चौपाई, सवैया, छप्पय, कुन्डलिया, सोरठा, गीति, मनहर, इत्यादि) छन्दों का गुर्जर भाषा के काव्य साहित्य में स्वच्छंद व्यवहार किया गया है। सामलदास कवि के छप्पय तो तुलसीदास की चौपाई के समान प्रसिद्ध हैं जैसे कहा है—

" चौपाई तुलसीदास की, छप्पय सामल ख़ास।"

जब गुर्जर में ख़ास हिन्दी के छन्दों का व्यवहार किया जाता है और अब भी कितने ही प्राचीन परिपाटी के कवि छन्दों का उपयोग करते हैं तो यह बात निर्विवाद है कि हिन्दी के पिङ्गल शास्त्र से गुर्जर लेखक भली भांति परिचित रहे हैं।

(३) कितने ही कवियों ने हिन्दीही में कविता लिखी है और वह गुर्जर भाषा भाषी की लिखी हुई होने पर भी भली भाँति हिन्दी कविता कही जा सकती है।

(अ) सब से प्रथम उदाहरण मीराबाई का है। मीराबाई के पद गुजराती में तथा हिन्दी में हैं। नरसिंह मेहता के पश्चात् मीराबाई ने जो भक्तिरस का स्रोत गुर्जर भाषा में बहाया है उसके कारण मीरा बाई का नाम गुर्जर साहित्य में सुवर्णाक्षरों में लिखा गया है। वे मेवाड़ की राजकन्या होने से हिन्दी में काव्य लिखती थीं सो तो कुछ आश्चर्य नहीं परन्तु जब वे नाथद्वारा जाकर रहीं और गुर्जर श्रोतृ समाजको भगवद्भक्ति के अनुपम रसास्वाद का परिचय करातीं तो वे गुजराती भाषा में पद्य कहती थीं। मीराबाई का एक गुज-

राती भाषा का पद हमने "गुजराती साहित्य का विकास" शीर्षक लेख में दिया है वह लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका के फ़रवरी १९१५ के अंक में छपा है।

आज हम कविवर दयाराम के काव्य समूह में से कतिपय हिन्दी पद्यों का परिचय कराते हुए यह दिखायेंगे कि गुर्जर साहित्यसेवी लोग कभी२ अपनी मातृभाषा की जननी वृद्धा हिन्दी पर भी कृपा किया करते रहे हैं।

छप्पय

त्रिभुवन पति तलवार, ढाल धरणीधर धारी।
केशव तीर कमान, बाँध ले कृष्ण कटारी॥
धर बख़्तर बलवीर, नाम भगवंत को भाला।
बनवारी बन्दूक, भर ले गोली गोपाला॥
सतसङ्ग तुरी चढ़ दया, धर्म खङ्ग जोड़ ले।
काल महेवासी मारने को, कर्म किल्ला तोड़ले॥

पद

सुनिये जू हरि हजरत के बन्दे की अरज़ी है।
बेदिल हुई सब शाही साहिब की क्या मरज़ी है॥सु०॥
जिस काम को भेजा था सो कुछ भी ना किया।
मैं क्या करूँ अकेला किसी ने न तन दिया॥ १॥
मनाजी सूबेदार सो दुश्मन से जा मिले।
उमराव दसों थे सो उसकी संग में चले॥ २॥
माना नहीं किसी ने एक हुक्म हमारा।
दग़ाबाज़ हुई फौज कीया काम नकारा॥ ३॥
जोर महेवासी का है कहोगे ना कहीं।
लुटा जाता है पेशान तोबा बान में नहीं॥ ४॥
कहा मुजब्दार ने दरबार जायगा।
गुनेहगारी में गुलाम बहुत मार खायगा।
दो ख़त का रुक्का लिखके मना जी को फिराना।
नहीं तो हुजूर क़दमों में दया को बुलाना॥

* * *

हरदम कृष्ण कह श्री कृष्ण कह तू ज़बाँ मेरी।
यही मतलबके खातर करता हुँ खुशामद मैं तेरी
दही चोर दूध शक्कर रोज़ खिलाता हूँ तुझे।
तौ भी हरि नाम सुनाती न तू है मुझे॥ १॥
करे गुनगान गोविन्द का तू मुख परीये भला।
नहीं तौ मैं खेंच निकालूँगा क्या मुख चामवला॥
खोई ज़िंदगानी सारी सोइ गुनाह माफ़ तेरा।
दया मत भूले प्रभु नाम, आखरवक्त है मेरा॥२॥

* * *

मेरा प्रभु गिरधारी, मेरा प्रभु कुंज बिहारी।
छोड़ी क्यों करके प्यारी दुःख ये डाही प्राणके प्यारे॥
आप विना नाहीं कोउ बेली, छोड़ी बन मोहिं अकेली
संग कोउ नाहिं सहेली, क्यों रहेंगे प्राण हमारे॥१॥
दासी मैं दोष निवारो, बिरहानल काहे को बारो।
आपको ब्रीद विचारो, ब्याही क्यों छोड़ो नंददुलारे॥२
रोती देखी करुणा आई युथ में दई मिलाई।
दया ने लीला गाई श्री बृजराइ नयन के तारे॥ ३॥

इस प्रकारके कितनेही उदाहरण गुर्जर साहित्य में से गुर्जर कवियों की हिन्दी कविता के देने योग्य हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण यहाँ उद्धृत करना उचित प्रतीत नहीं होता। "हरदम कृष्ण कह कृष्ण कह" इत्यादि जो पद्य ऊपर उद्धृत किया है वह आगरे वाले "नज़ीर" कवि के पद्यों कीजोड़ का पद्य मालूम होता है। ऐसे २ उत्तम हिन्दी पद्यों को साहित्य में से ढूँढ़कर निकालने से हिन्दी साहित्य के क्षेत्र की वृद्धि होगी और गुर्जर-साहित्य-सेवी लोग हिन्दी को अपनाने की ओर प्रवृत्त होंगे। आशा की जाती है कि गुर्जर साहित्य का कोई प्रेमी हिन्दी साहित्य पर उपकार करे तो बड़ा कार्य होगा।

(४) ऊपर दिये हुए प्रमाणों के साथ यह भी बतलाना अनुचित न होगा कि गुजरात का राजस्थान की भाषाओं से इतना घनिष्ट सम्बन्ध रहा है कि हिन्दी का प्रभाव गुजरात की भाषा पर न पड़ता तो आश्चर्य था। कितने ही बार राजस्थान के आधीन गुजरात हुआ; कितने ही बार गुजरात के राजाओं ने आबू पहाड़ तक या उससे भी

दूर तक अपना आधिपत्य जमाया। जिसका परिणाम यह होना स्वाभाविक है कि एक देश की भाषा का प्रभाव दूसरे देश की भाषा पर पड़े।

(५) गुजरात देश वाणिज्य प्रधान देश है और गुजराती वैश्य बड़े धनी और व्यौपार-पटु हैं। वे वैष्णव मतावलंबी होने से अष्ट छाप के अधिकारी गोस्वामी लोगोंके भक्त रहे हैं और अष्ट छाप के गुरू लोगों की बानी और ग्रंथ ब्रजभाषा में होने के कारण गुर्जर समाज में उनकी धार्मिक वृत्ति को परितोषित करनेवाले ब्रजभाषाके ग्रंथों का बहुत प्रचार रहा है। यही कारण है कि कितने ही भक्त और कवि लोगों ने ब्रजभाषा में कविता लिखने की परिपाटी रक्खी थी। परन्तु प्रेमानन्द के समय से नवीन गुर्जर साहित्य के विकास का उत्थान हुआ और अब गुर्जर साहित्य ने अपनी पृथक्ता को पूर्ण रूपसे जमा दिया है। बंगसाहित्य के अनन्तर यदि और कोई उन्नत साहित्य प्रांतीय भाषाओंका है तो वह गुर्जर साहित्य है; तथापि जातीयता के नाते, हिन्दी साहित्य की सार्व देशिकता के नाते, साहित्य की आद्य पूज्यता के नाते, यदि हिन्दी साहित्य गुर्जर बन्धुओं के साहित्य से मिलने का यत्न करे तो वह अत्यंत कोमल हृदयवाला देश हिन्दी साहित्य के साथ सहानुभूति पूर्वक काम करने में पीछे नहीं रहेगा, ऐसी आशा की जाती है।

अन्त में हम हिन्दी साहित्य सम्मेलन को यह सूचना कर के कि वह गुजरात देश को भी अपने कार्य क्षेत्र में संन्निविष्ट करे तो बहुत लाभ होगा यह लेख समाप्त करते हैं।

हिन्दी में उपन्यास।

[लेखक-पंडित नर्मदाप्रसाद मिश्र और पंडित रामप्रसाद मिश्र]

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे* ॥
(काव्यप्रकाश)

(१) विषयारम्भ।

विषय का आरम्भ करने के पहले इस बातपर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि हमारे यहाँ उपन्यासों की स्थिति क्या है—दर्शन, विज्ञान, काव्य, इतिहास आदि अतुलनीय रत्नों से भरे हुए विश्वविख्यात एवं विद्वज्जन-वन्दित आर्यभाषा की साहित्य सृष्टि में उपन्यास-भवन किस स्थल पर कैसा निर्मित है।

विचार आरम्भ करते ही "साहित्य" शब्द हमारे विचारों को आकर्षित करता है। "साहित्य" शब्द बहुत व्यापक है। इसका अर्थ "सहित" होना है† इसमें भाषा, व्याकरण, गद्य पद्य, नाटक चम्पू, अलङ्कार, भाव, विभाव, संचारी भाव आदि सभी सम्मिलित मिलते हैं। सारांश, "साहित्य" शब्द से हमें जो बोध होता है वह अलंकार शास्त्र है। परन्तु आजकल हिन्दी में साहित्य शब्द का वह अर्थ लिया जाता है जो अंग्रेज़ी शब्द लिटरेचर (literature) से व्यक्त होता है। पं० हरीनारायण आपटे ने साहित्य को "विदग्ध-वाङ्मय" माना है। जो हो; आधुनिक अर्थ में साहित्य शब्द बहुत ही व्यापक है, यद्यपि संस्कृत में वह किंचित संकीर्णता लिये हुए है। वहाँ तो 'साहित्य काव्य—मय है। इसका कारण कदाचित् यह हो कि उसमें काव्य—यहाँ काव्य से हमारा अभिप्राय पद्य-बद्ध विचारों से है-प्रधान है। इतिहास, कोष, व्याकरण, वैद्यक, जिस विषय को लीजिये वही पद्य-बद्ध मिलता है। कहने का सारांश यह है कि वहाँ साहित्य काव्यमय है—काव्य ही उसका जीवन है, काव्य ही उसके प्राण हैं, काव्य ही उसके अंग हैं, काव्य ही उसके उपांग हैं। जो हो; हम साहित्य शब्द का प्रयोग उसके आधुनिक विस्तृत अर्थ ही में करेंगे।

काव्य-अथवा साहित्य के दो प्रधान अंग हैं-एक गद्य और दूसरा पद्य। जिस निबंध में पद्य-बद्ध कविता न हो उसे गद्य-काव्य कहते हैं। यही "गद्य काव्य" आजकल उपन्यास में रूढ़ होगया है। लोग उपन्यास को ही गद्य काव्य मानने लगे हैं, यद्यपि आजकल के अधिकांश उपन्यास गद्य-काव्य नहीं हैं। * काव्य के लिये अलौकिक बात चाहिये। उसके पढ़ने में अलौकिक आनन्द मिलना चाहिये। परन्तु आजकल के अधिकांश उपन्यास इतने शुष्क हैं कि उन्हें काव्य मान ही नहीं सकते। अस्तु, आजकल तो उपन्यासों ही को गद्य-काव्य मानने की परिपाटी चल निकली है; अतः इसी के अनुसार विचार करना आवश्यक है।

(२) "उपन्यास" शब्द।

उपन्यासों को गद्य-काव्य मान कर अब यह

---

*काव्य से यश, द्रव्यलाभ, व्यवहार-ज्ञान, दुःखनाश, तत्काल आनन्द और कान्ता के समान रमणीय उपदेशों की प्राप्ति होती है।

† सहितस्य भावः साहित्यम्।

*रमणीयार्थ-प्रतिपादक-शब्दः काव्यम्।
(पंडितराज जगन्नाथ)

रसात्मकं वाक्यं काव्यम्।
(महापात्र विश्वनाथ)

देखना है कि "उपन्यास" शब्द कहाँ से आया ? क्या प्राचीन साहित्य में भी "उपन्यास" शब्द मिलता है ? और यदि मिलता है, तो क्या उस का वही अर्थ है जो आजकल लगाया जाता है ?

अमरसिंह ने अमरकोष में उपन्यास को वाङ्मुख* बताया है, अर्थात् किसी बात का उपक्रम करना ही उपन्यास है। परन्तु इस लक्षण से उपन्यास को गद्य-काव्य नहीं कह सकते और इस प्रकार उपन्यास का वर्तमान अर्थ सिद्ध नहीं होता।

महापात्र श्री विश्वनाथ ने अपने "साहित्य-दर्पण" में भाणिका-निरूपण के समय कहा है कि भाणिकामें सात अंग होने चाहिये। इन सात अङ्गों में एक अङ्ग † उपन्यास बताया गया है। परन्तु भाणिका गद्य-काव्य का भेद नहीं है। बात तो यह है कि नाट्यके दो भेद हैं:—रूपक और उपरूपक। फिर उपरूपक के १८ भेद हैं। इन १८ भेदों में से भाणिका एक भेद है। इस प्रकार भाणिका नाट्य शास्त्र के अन्तर्गत और नाट्य दृश्य काव्य माना गया है। इस प्रतिपादन से विदित होता है कि उपन्यास दृश्य काव्य है, परन्तु आजकल उपन्यासको गद्य-काव्य कहते हैं। इस से यही निष्कर्ष निकलताहै कि "उपन्यास" शब्द यद्यपि प्राचीन साहित्य में मिलता है, परन्तु वह उस अर्थ में व्यवहृत नहीं होता जिसमें आजकल हो रहा है।

(३) संस्कृत में उपन्यास ।

हिन्दी भाषा में उपन्यासों की उत्पत्ति कब हुई इसका विचार करने के पूर्व संस्कृत के उपन्यासों का निरीक्षण करना कुछ बुरा न होगा। क्योंकि हिन्दी का सम्बन्ध संस्कृत भाषा से बहुत घनिष्ट है। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार हिन्दी की उत्पत्ति प्राकृत से हुई, अर्थात् हिन्दी प्राकृत का वर्तमान रूप है। यद्यपि इसकी संस्कृत एवं अन्य भाषाओं से अंग—पुष्टि अवश्य हुई है।†

यह पहले ही कहा जा चुका है कि संस्कृत-साहित्य पद्य-प्रधान है। प्रायः सभी विषय— कोष वैद्यक तक—पद्य-बद्ध पाये जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं, संस्कृत में पद्य रचना बहुत अधिक हुई है परन्तु आश्चर्य का विषय है कि उसमें गद्य-काव्य बहुत ही कम है। गद्य-काव्य की बात जाने दीजिये गद्य ही बहुत कम मिलता है और जो मिलता है वह "दार्शनिक लपेट" का है।

विक्रम संवत् की आठवीं शताब्दी में सुबन्धु कवि ने "वासवदत्ता" नामक एक गद्य-काव्य लिखा भारत-रत्न, भारत-भूषण-साहित्याचार्यादि विविध-पदवी-विभूषित पं० अम्बिकादत्त व्यास का कथन है कि इस गद्य-काव्य में अपूर्व चमत्कार है। पद, पद पर श्लेष और यमक है. परन्तु स्वाभावोक्ति का अभाव है। गद्य-काव्य के नाते से "वृहत्कथा" एवं भट्टार हरिश्चन्द्र का भी नाम लिया जाता है। इसके बाद, बाण कवि का प्रसिद्ध "हर्ष-चरित" है इस से उत्तम उसी कवि की "कादम्बरी" है जिसकी कीर्त्ति देश देशान्तरों में फैल रही है। कदाचित इसी कादंबरी के अनुकरण पर मराठी भाषा में उपन्यास को "कादंबरी" संज्ञा दी गई है। बाणकी कविता के विषय में एक विद्वान् का कहना है कि उसमें पद-माधुर्य तो अधिक है, वर्णन भी अतुलनीय तथा वृहत् है, अर्थ-गौरव भी प्रशंस्य है, परन्तु कथा में कहीं २ कल्पना की त्रुटि सी झलकती है और अनेक विषय अस्वाभाविक हैं। पद और अलंकार के लोभ से तो जिस पृष्ठ को पढ़िये वहाँ आनंद मिलता है, परन्तु उस कथा का आनन्द लेने को पढ़ना हो तो एक पृष्ठ बांचते २ जी घबड़ा जाता है। दण्डी के "दशकुमार" में यह

*उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्।

†उपन्यासः प्रसंगेन भवेत्कार्यं स्वकीर्तनम्। इत्यादि [साहित्य दर्पण, ६ परिच्छेद]

†मिश्र बंधुओं का "हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन"। प्रथम भाग, प्रथम अध्याय।

अभाव नहीं है; परंतु उनके ग्रंथमें अर्थ और कथा-कल्पना की अति है। अस्तु।

इस विवेचन से प्रकट होता है कि संस्कृत साहित्य में गद्य-काव्य बहुत ही थोड़ा है और जो कुछ थोड़ा बहुत है भी, उसकी वर्णन-शैली तथा आजकल के गद्य-काव्य की शैली में ज़मीन आसमान का अन्तर है।

(४) प्रारम्भिक एवं माध्यमिक हिन्दी में उपन्यास

हिन्दी की जननी संस्कृत भाषा के गद्य-काव्य का तो यह हाल है। अब हिन्दी के गद्य-काव्य पर विचार करते हुये प्रस्तुत विषय के प्रधान अंश पर विचार करना है। आजकल गत ३०-३२ वर्षों से उपन्यासों का प्रवाह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। यह प्रवाह कहाँ जाकर रुकैगा—इसके विचार-मात्र से हृदय आनन्द सागर में हिलोरें लेने लगता है। निस्सन्देह आजकल उपन्यास ग्रंथों की बहुत प्रचरता है। यह इतने महत्व का विषय है कि इस पर पीछे विचार किया जायगा। सर्वप्रथम प्रारम्भिक एवं माध्यमिक कालके हिन्दी उपन्यासों पर दृष्टिपात करना है।

विचार करते ही सब से पहिली बात जो दीखती है वह यह है कि माध्यमिक हिन्दी में गद्य काव्य की कौन कहे, गद्य ही का एक प्रकार से अभाव है। संस्कृतके समान, हिन्दी भाषाका प्राचीन साहित्य भी काव्यमय है।

गद्य का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। वह पांच सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। सब से पहिले गद्य-लेखक, जिनका नाम "हिन्दी-साहित्य इतिहास" के विद्वान् लेखकों को मिल सका है, महात्मा गोरखनाथ हैं। इनका रचना-काल विक्रम संवत् १४०७ के लगभग माना गया है। इसके पहले के गद्य के कुछ उदाहरण काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को मिले हैं; परन्तु उस गद्य में और आजकल के गद्य में बहुत अंतर पड़ जाता है। महात्मा गोरखनाथ के बाद लगभग दो सौ वर्षों तक किसी गद्य लेखक का पता नहीं लगता है। संवत् १६०० के लगभग महात्मा विट्ठलनाथ जी कुछ गद्य लिखते हैं। इनके गद्य* में शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग है, परन्तु संस्कृत शब्द अधिक हैं। सं० १६८० में जटमल कवि ने "गोरा बादल की कथा" नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में खड़ी बोली का प्राधान्य है। इसकी भाषा† वर्त्तमान भाषा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। जटमल के बाद, तुलसीदास, चिंतामणि, देव, सूरति मिश्र, श्रीपति, दास आदि ने गद्य का प्रयोग किया है। १८१० के लगभग किसी अज्ञात कवि "चकत्ता की पातस्याही की परम्परा" नामक १०० पृष्ठों का गद्य-ग्रन्थ खड़ी बोली में रचा। इसमें मुग़ल बादशाहों और उनकी राज-परिपाटी का कुछ वर्णन है।

इसके लगभग ५० वर्ष बाद, लल्लूलाल और सदलमिश्र ही प्रसिद्ध गद्य—लेखक मिलते हैं। इसे हिन्दी गद्य का प्रारम्भिक काल कह सक्ते हैं। इस काल में यद्यपि गद्य कुछ २ लिखा गया; परंतु गद्य काव्य की रचना बहुत ही कम हुई। सूरति मिश्र की 'वैताल पचीसी' ही ऐसा ग्रन्थ है जिसे गद्य-काव्य कह सक्ते हैं।

सम्वत् १८६० से १९२४ तक गद्य का माध्यमिक काल आरम्भ होता है। इस समय में लल्लू लाल, सदलमिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह, राजा शिवप्रसाद आदि गद्य-लेखक मिलते हैं। इन्होंने गद्य

* विट्ठलनाथ जी के गद्य का उदाहरण—"प्रथम की सखी कहत है जो जो गोपीजन के चरण विषे सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूब के इनके मन्दहास्य ने जीते हैं अमृत समूह ता करि निकुञ्ज विषे शृङ्गार रस श्रेष्ठ रसना कीनी सो पूर्ण होत भई।" (तृतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण दूसरा भाग। पृष्ठ ३)

† जटमल कवि के गद्य का उदाहरण—"उस गाम आलीषान बाबा राज है। मसौद बाका लड़का है सो सब पटानों में सरदार है। जयेसे तारों में चन्द्रमा है आयसा वो है"। (वही कार्य विवरण। पृष्ठ ४)

की बहुत उन्नति की, और उसे वर्तमान रूप देने की चेष्टा की। सदल मिश्र का "नासकेतोपाख्यान" गद्यकाव्य का अच्छा नमूना है। राजा शिवप्रसाद का "राजा भोज का सपना" आदि ग्रन्थ भी प्रौढ़ गद्य काव्य के अच्छे नमूने हैं।

(५) वर्त्तमान हिन्दी में उपन्यास।

वर्त्तमान हिन्दी हम सम्वत् १६२५ से मानते हैं जब कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने गद्य में अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ रच कर वर्त्तमान गद्य की नींव डाली। इन्हीं के समय से हिन्दी, गद्य की उत्तरोत्तर उन्नति होती जा रही है। आजकल गद्य ही का युग है। गद्य- लेखकों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। भारतेन्दु के समय तक ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं बना जिसे हम उपन्यास कह सकें। वैसे तो बैताल पच्चीसी आदि ग्रन्थ लिखे गये जो उपन्यासों के भेदों में आ सके हैं; परन्तु उपन्यास शब्द जिस अर्थ में आजकल रूढ़ हो रहा है उस अर्थ वाले कोई उपन्यास नहीं लिखे गये। मिश्र-बंधुओं ने "हिन्दी-नव-रत्न में (पृष्ठ ३७६ पर) लिखा है, 'इन (भारतेन्दु) के समय तक उपन्यास हिन्दी भाषा में नहीं लिखे गये थे। अतः इन्होंने लोगों को उपन्यास लिखने के लिये प्रोत्साहित किया और स्वयं भी दो उपन्यास लिखने आरम्भ किये थे, परन्तु वे अपूर्ण रहे। उनके नाम हैं—"एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' और 'हम्मीर हठ'।

इससे विदित होता है कि हिन्दी में भारतेन्दु के समय से अर्थात् लगभग ३० वर्षों से ही, उपन्यासों की रचना हो रही है। आजकल तो प्रायः प्रत्येक प्रेस से उपन्यास धड़ाधड़ निकल रहे हैं। हमारा अनुमान है, गत पाँच वर्षों से आज तक, हिन्दी में जितने उपन्यास लिखे गये हैं उतने हिन्दी के जन्मकाल से पाँच वर्ष पूर्व तक न निकले होंगे।

पं० अम्बिकादत्त व्यास कृत "गद्य-काव्य-मीमांसा" के अंत में ७६ उपन्यासों के नाम तथा प्रकाशित होने की तिथि आदि दी है। उस के देखने से विदित होता है कि लाला श्रीनिवासकृत 'परीक्षा गुरु" ही पहला उपन्यास है। वह सन् १८८२ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद अन्य उपन्यास प्रकाशित हुए तथा होते जारहे हैं।

(६) वर्त्तमान हिन्दी-उपन्यासों में परिवर्तन।

आज कल बहुत से लोग उपन्यास उन्हीं ग्रन्थों को मानते हैं जिनमें कथा का आरम्भ विचित्र रीति से आरम्भ किया जाय। उदा-हरण के लिये—आधी रात का समय है। वायु सन सन बह रही है। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है ऐसे समय-में राजा मानसिंह साधू का वेष धारण करके घूम-रहे हैं। इतने में पीछे से धड़ाके का शब्द होता है। राजा को गोली लगती है वे बेहोश होते हैं"। इत्यादि; हिन्दी के अधिकांश पाठक केवल उन्हीं ग्रन्थों को जिनमें इस प्रकार का वर्णन होगा, कथा का आरम्भ इस प्रकार किया रहेगा, कई घाटियां और खंदक रहेंगे, कहीं प्रकाश और अन्धकार रहेगा उन्हें ही उपन्यास मानेंगे। परन्तु यदि वही कथा इस प्रकार सीधी रीति से कही जाय कि "ऐसे २ एक राजा थे। वे एक रात को साधू का वेष बना कर घूम रहे थे। इतने में उनके बैरी आये। उन्हों ने राजा को मार डाला।" इत्यादि। कदाचित् इस प्रकार की वर्णन-शैली से लिखे गये ग्रंथों को हिन्दी के अधिकांश पाठक उपन्यास न मानेंगे, यद्यपि गद्य-काव्य के अन्तर्गत यह भी आ जाता है। हिन्दी के अधिकांश पाठकों का तो यह हाल है; परन्तु हम समझते हैं, संस्कृत के अनेक विद्वान् दोनों रीतियों से लिखे गये ग्रन्थों को कदाचित् गद्य-काव्य या उपन्यास न कहेंगे। वे तो उन्हीं ग्रंथों को गद्य-काव्य-ग्रन्थ कहेंगे जिनमें अनूठी उक्ति, पद-लालित्य, रचना—वैचित्र्य आदि गुण रहेंगे।

इन बातों पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि आजकल उपन्यासों के विषय में लोगों की रुचि परिवर्तित होती जा रही है। और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। बात तो यह है कि हिन्दी में उपन्यासों का वर्तमान रूप अभी हाल का है। उपन्यासों का यह रूप कहाँ से आया—इसका विवेचन आगे चल कर किया जायगा। अभी तो यह देखना है कि लोगों की रुचि किस प्रकार परिवर्तित होती जा रही है। यद्यपि हिन्दी में अभी तक बहुत कुछ उन्नति हो गई है, तथापि उपन्यासों के लिये यह समय बिलकुल नया ही है। उपन्यासों में विचित्रता लाने के लिये ऐयारी, तिलिस्म, एवं जासूसी जाल बनाये जा रहे हैं। काव्य का मुख्य उद्देश्य इन गद्य-काव्य कहलाये जानेवाले अधिकांश उपन्यासों में बहुत कम दिखाई पड़ रहा है। आजकल अनेक उपन्यास-लेखक इस बात का विचार नहीं कर रहे हैं कि उपन्यासों में स्वभावोक्ति, चरित-चित्रण, पद-लालित्य, प्रकृति-चित्रण आदि का होना भी आवश्यक है। यदि ऐसा होता तो तिलिस्मी चक्कर में पाठक न फँसाये जाते। साहित्याचार्य बाबू जगन्नाथप्रसाद "भानुकवि„ ने बहुत ही ठीक कहा है कि * वर्त्तमान कालीन अधिकांश महाशय उपन्यास को ही गद्य-काव्य कहने लगे हैं......परन्तु इस रायसे हम पूर्णतः सहमत नहीं हैं। कारण कि हमने जितने उपन्यासों को आज तक देखा और पढ़ा है उनमें प्रायः थोड़े ही ऐसे निकलेंगे कि जिनमें नीति एवं उपदेशजनक हितवार्ता का समावेश हो सका है। शेष सब उपन्यासों ने तो एक ही तान छेड़ी है अर्थात् उपन्यास-लेखकों को परम-सुन्दरी, लावण्यवती, मनोहारिणी नवयौवना स्त्री और सकल-कला-सम्पन्न, अति सुन्दर रूपवान् कामी नवयुवक पुरुष ही विशेषता से मिल सके हैं। आधुनिक उपन्यास-लेखक प्रायः बड़े ही रसिक हुआ करते हैं। + + + कितने लेखक तो ऐयारी के चक्कर में पड़कर पाठकों को भी ऐसे चक्कर में डाल देते हैं कि पन्ने पर पन्ने पलटते जाइये; पर ऐयार की ऐयारी का ख़ातमा ही न होगा। यदि पढ़नेवाला आशय न समझे तो लेखक की बला से! वे बिना परिस्तान में पहुँचे हुए, मध्य में ठहरना जानते ही नहीं। एक जीना नीचे उतारा तो दो जीने ऊपर चढ़ने की नौबत आ जाती है। एक कमरा पाने के लिये सैकड़ों किवाड़ खोलने पड़ते हैं। उधर, शेर का मुँह दबाया कि दरवाज़ा खुल गया। तिलिस्म की भी हद नहीं। फूँक मारी कि पुरुष से स्त्री, डुबकी लगाई कि बूढ़े से जवान आदि। कहाँ तक कहें ऐसी बेपर की उड़ाते हैं कि पढ़नेवालों के भी होश उड़ जाते हैं। भले २ घरों के स्त्री पुरुषों को ऐसे २ कुत्सित अपराध लगा दिये जाते हैं कि उन्हें नरक में भी ठिकाना न मिले। कभी २ तो वे उन्हें गली २ में पागलों की नाईं एक दूसरे पर आसक्त दशा में घुमाया करते हैं। हाय! ऐसे निर्दयी लेखकों को तनिक भी दया नहीं आती। कपोल-कल्पित बात के लिखने में भी वे इतने सिद्धहस्त हो जाते हैं कि झूठों के बादशाह के भी कान काटते हैं। दूत और दूतियों के छल-छन्द पढ़ पढ़कर पढ़े-लिखे स्त्री पुरुष ऐसी शिक्षा प्राप्त करते हैं कि थोड़ी सी कोशिश करने के पश्चात् ही, वे आसक्त-शाला के परीक्षोत्तीर्ण ग्रेजुएट बन सकते हैं।

इसका सारांश यही है कि अधिकांश वर्त्तमान उपन्यासों की प्रवृत्ति उचित मार्ग की ओर नहीं जा रही है। यह प्रवृत्ति किस प्रकार संस्कृत हो सकती है इस पर विचार करना आवश्यक है।

उपन्यास का महत्व और उद्देश्य

साहित्य—भवन के लिये उपन्यास आधार-स्तम्भ है। साहित्य में उसका महत्व बहुत चढ़ा बढ़ा है। इतिहास में सत्य बातों का भले ही समा-

* काव्य—प्रभाकर, १२८ पृष्ठ।

वेश हो; परन्तु ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास से कई गुने बढ़ कर हैं। उपन्यास समाज के जीते-जागते चित्र हैं। अँगरेज़ी भाषा में इनका महत्व बहुत बढ़ा-चढ़ा है। अँगरेज़ी ही में क्यों, प्रायः सभी उन्नत भाषाओं में उपदेश देने एवं मनोरंजन करने का एक बहुत बड़ा भाग उपन्यास के बाँटे पड़ता आया है। उपन्यास कान्ता-सम्मत उपदेश देने के लिये प्रसिद्ध हैं।

आज हिन्दी का प्रचार जो इतना अधिक बढ़ रहा है—हिन्दी पाठकों की संख्या बढ़ रही है-उस का एक कारण उपन्यास भी है। उपन्यासों ने हज़ारों लोगों में हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न कराया है। एक समय था, और उसे हुए बहुत वर्ष नहीं हुए, जब कि हिन्दी संसार में बाबू देवकीनन्दन के "चन्द्रकान्ता" की बड़ी माँग थी। बालक और बुड्ढे जो थोड़ा लिखना पढ़ना जानते थे, जिनका अधिकांश समय तोता-मैना का किस्सा, हातिमताई, सिंहासन-बत्तीसी आदि के पढ़ने में बीतता था, चन्द्रकांता को मन लगा कर पढ़ने लगे और अब भी पढ़ते हैं, यद्यपि अब वैसी प्रबल रुचि नहीं दीख पड़ती है। चन्द्रकांता की भाषा और विषय में चाहे कितनी भी त्रुटियाँ क्यों न बताई जायें; परन्तु इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि लोगों की रुचि हिन्दी के प्रति आकर्षित करने में चन्द्रकान्ता ने जो काम किया है वह सैकड़ों उपदेशकों से न हो सकेगा। यहाँ हम किसी विशेष ग्रन्थ की अनुचित प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। हम केवल यह बताना चाहते हैं कि उपन्यास कम-पढ़े लिखे लोगों की रुचि खींचने के लिये प्रधान साधन हैं। "सरस्वती" पत्रिका के विद्वान् सम्पादक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "हिन्दी-साहित्य की वर्तमान अवस्था" शीर्षक अपने विचार पूर्ण लेख में कहा है— "उपन्यासों की बदौलत हिन्दी पाठकों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई है। उपन्यास चाहे जासूसी हो, चाहे मायावी चाहे तिलस्मी, विशेष कर के कम उम्र के पाठकों को उन्होंने हिन्दी पढ़ने की ओर अवश्य आकृष्ट किया है"। सारांश यह, उपन्यास साहित्य का एक बहुत प्रधान अंग है।

जिस उपन्यास के हाथ में इतना अधिकार है कि वह लाखों लोगों की रुचि खींच सका है उसका उद्देश्य क्या होना चाहिये—इस पर विशेष कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस मनुष्य के जीभ हिलाने से लाखों मनुष्य किसी भी मार्ग पर चल सकते हैं वही मनुष्य यदि उन्हें सन्मार्ग पर न ले चलकर कुमार्ग पर ले जाय तो कहना चाहिये कि वह घोर पातक कर रहा है। इस पातक का प्रायश्चित्त वह जितने शीघ्र करे उतना ही अच्छा है। ऐसे प्रभावशाली उपन्यास का उद्देश्य जितना ही पवित्र, उच्च एवं गम्भीर होगा उस से उतना ही लाभ होगा। उपन्यास का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही न होना चाहिये। वर्तमान समय के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं—

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिये,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म्म होना चाहिये।"

उपन्यासों को समय के सच्चे प्रतिनिधि होने के साथ ही, लोगों की रुचि को संस्कृत करने की ओर लक्ष्य ले जाना चाहिये। उनके द्वारा कम-पढ़े लिखे लोगों में उच्च आदर्श सहज ही फैल सके हैं। जिन लेखकों के हाथ में उपन्यास के साधन हैं उन्हें क्षणभर ठहर कर अपने उद्देश्यों की ओर विचार दौड़ा लेना चाहिये।

(८) उपन्यास की वर्तमान शैली कहाँ से आई।

ऊपर कहीं कहा जा चुका है कि उपन्यासों की आधुनिक शैली प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की शैली से बहुत भिन्न है। पर अब इस बात पर विचार करना है कि यह भिन्नता कहाँ से आई। हिन्दी के प्राचीन साहित्य में विविध विषयों के ग्रंथों

का एक प्रकार से अभाव ही है। आज तो भिन्न २ विषयों पर ग्रंथ दिखाई दे रहे हैं वे अंगरेज़ी साहित्य ही के कारण हैं। "हिन्दी—साहित्य-इतिहास" के विद्वान लेखकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा है —"अब तक (सम्वत् १८८६ तक) हमारी भाषा में रोचक, किन्तु अनुपयोगी विषयों की विशेषता रही थी, परन्तु अब अँग्रेज़ी राज्य के साथ संसारी लाभदायक बातों की ओर लोगों की प्रवृत्ति होने लगी है। इसी की वास्तव में हम लोगों को अत्यन्त आवश्यकता थी, सो अँग्रेज़ीराज्य ने इस भाँति हमारा महा उपकार किया है, जिसे हम लोगों को कभी न भूलना चाहिये।" *हिन्दी उपन्यासों के लिये भी हमें अँग्रेज़ी साहित्य का कृतज्ञ होना चाहिये। "यद्यपि संस्कृत और हिन्दी में प्राचीन समय से ही कथा—ग्रन्थ लिखे जाते हैं, तथापि उपन्यासों की उत्पत्ति अँग्रेज़ी राज्य के आरम्भ से पीछे की ही है और इनका प्रचार, अँग्रेज़ी नावल्स (Novels) की देखा देखी हुआ है"। † गहमर-निवासी बाबू गोपालराम भले ही कहें कि "उपन्यास विदेशी वस्तु नहीं है न हमारे देश में विलायत की नकल से चले हैं;" ‡पर केवल कहने ही से काम न चलेगा। हम सरासर देखते हैं कि उपन्यास की बात दूर है, गद्य का ही विशेष प्रचार हिन्दी में अभी हाल ही में हुआ है। अँग्रेज़ों के समय से ही गद्य—काव्य में परिवर्तन हो रहा है और वह परिवर्तन भी अँग्रेज़ी गद्य—काव्य के अनुकूल ही है। इसके सिवाय अँग्रेज़ी भाषा एवं जाति का प्रभाव भारतवर्षीय भाषा एवं जाति पर पड़ रहा है। फिर भला हम कैसे स्वीकार करें कि हिन्दी में उपन्यास विलायत की नकल से नहीं चले हैं।

* हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १६२।

†हिन्दी का हानिकारक साहित्य, पृष्ठ ११८।

‡ प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य विवरण, दूसरा भाग, पृष्ठ ८८।

(८) हिन्दी के वर्त्तमान उपन्यास।

वर्त्तमान हिन्दी—संसार में उपन्यास बरसाती मेंढक के समान निकल रहे हैं। कोने कोने और गली गली में वे दृष्टि गोचर हो रहे हैं कुछ समय पहले, तिलस्म और ऐयारी के उपन्यासों की बड़ी धूम थी परंतु अब वह हाल नहीं है। अब सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में पानीपत, महाराष्ट्र— प्रभात, राजपूत-जीवनसन्ध्या, दीपनिर्वाण आदि का उल्लेख किया जा सक्ता है। सामाजिक उपन्यासों में आदर्श-दम्पती, सुशीला विधवा, आदर्श हिन्दू, आंख की किरकिरी, शैलबाला, मँझली बहू. आदर्श हिन्दू आदि उल्लेख- योग्य हैं। नैतिक उपन्यासों में परीक्षा-गुरु, प्रतिभा आदि अपने ढंग के निराले हैं। सौन्दर्य्योपासक आदि अपने उच्च विचारों एवं परिष्कृत शैली के लिये कोई सानी नहीं रखते। वैज्ञानिक उपन्यासों में "रसातलयात्रा" आदि उल्लेख योग्य हैं। सारांश यह, आजकल प्रत्येक विषय के उपन्यास बनते जा रहे हैं। इंडियन प्रेस प्रयाग, वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई; खड्गविलास प्रेस बाँकीपूर, भारतजीवनप्रेस काशी, हरिदास कम्पनी कलकत्ता, हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली खंडवा; हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर-कार्यालय बम्बई आदि ने कई उत्तमोत्तम उपन्यास छापे हैं और बराबर छाप रहे हैं।

परंतु आजकल अनुवादों की ओर प्रवृत्ति बढ़ रही है। किसी भाषा की उत्तमोत्तम पुस्तकों का अनुवाद करना कुछ बुरा नहीं है अनुवाद करना भिन्न२ भाषाओं के विचारों को अपनी भाषा में रखना और उन के द्वारा अपनी भाषा को पुष्ट करना है। इस उद्देश्य से जितने कार्य किये जायँगे उनमें बहुधा कोई त्रुटि नहीं होगी' परन्तु आजकल बहुतसे लेखक केवल प्रसिद्धि पाने के ही लालच से अनुवाद कर रहे हैं और कभी २ वे इस बात को

बिल्कुल भूल जाते हैं कि कैसे उपन्यासों का अनुवाद करना चाहिए। जो उपन्यास, चाहे वे कैसे ही गँदले क्यों न हों, उनके हाथ पड़ जाते हैं उनका अनुवाद किया जाता है। फिर भी इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारी भाषा में बंगला के श्रेष्ठ उपन्यास-लेखकों, जैसे बंकिमचन्द्र रवीन्द्रनाथ आदि के ग्रन्थों का भी अनुवाद विद्यमान है जो सर्वथा प्रशंसनीय है।

(१०) उपन्यासों का सुधार और उपसंहार

हम साहित्याचार्य भानुकवि के इस कथन से सहमत नहीं है कि "अब उपन्यास बहुत हो चुके हैं। *साम्प्रत उनकी विशेष आवश्यकता नहीं।" आपके कथन को कोई मनुष्य इस प्रकार भी कह सकता है कि चूंकि नदी में तैरना सीखने में कई लड़कों की जान जा चुकी है; इसलिये अब तैरना बहुत कम कर दिया जाय। हम कहते हैं क्यों न ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि तैरना सीखने वालों की जान न जाय; क्यों न नदीमें बहुत सी नावें और तैरनेमें कुशल मनुष्य देखरेखके लिये रक्खे जायँ। इसी प्रकार यदि उपन्यासों की रचना उचित रीति से नहीं की जारही है, तो समालोचकों का कर्त्तव्यहै कि वे इसकार्य में अग्रसर होवें, उपन्यास का आदर्श बराबर लेखकों के साम्हने रक्खें, बुरी रचनाओं की घोर निन्दा करें एवं अच्छी और उपयोगी रचना की प्रशंसा कर रचयिताओं को प्रोत्साहित करें। इसके सिवाय, हम इस बात को नहीं मान सकते कि "अब उपन्यास बहुत हो चुके हैं।" बंगला आदि भाषाओं में विविध विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले उपन्यासों की जैसी बाहुल्यता सुनी जाती है वैसी अभी हिन्दी में कहाँ है? हिंदी भाषा में गद्य का तो एक प्रकार से प्रारम्भिक काल ही है। अभी उसका संगठन हो रहा है। अभी उसमें विविध विषयों की ग्रन्थ-रचना का श्रीगणेश ही हुआ है। अभी साहित्य के अंग को पुष्ट करने के लिये बहुत समय चाहिये। फिर उपन्यास सरीखे अत्यावश्यक अंग की पुष्टि के लिये तो बहुत ही अधिक समय चाहिये।

हम इस बात को मानते हैं कि अभी हिन्दी में अन्य भाषाओं से अनुवादित किये गये उपन्यासों की प्रचुरता है। इतना ही नहीं, हम यह भी कह सकते हैं कि यदि आज हिन्दी से अनुवादित उपन्यास अलग कर दिये जाँय, तो कदाचित दो चार मौलिक उपन्यासों को छोड़ ऐसे उपन्यास ही न मिल सकेंगे जिन्हें हम उपन्यास कह सकें।

अब इस बात की आवश्यकता है कि जिन लोगों में मौलिक उपन्यास लिखने की शक्ति है वे अनुवाद न करके, मौलिक उपन्यासों में हाथ लगावें और अनुवाद करने का भार दूसरों पर छोड़ें। इसमें सन्देह नहीं कि मौलिक ग्रन्थ लिखने की अपेक्षा अनुवाद करने में विशेष योग्यता चाहिये। परन्तु इन दोनों प्रकार की योग्यता का क्षेत्र अलग २ है। अनुवाद करते समय "मक्षिका स्थाने मक्षिका" से काम न लेना चाहिये। अनुवादक को स्मरण रखना चाहिये कि जहाँ तक सम्भव हो अनुवाद में देश, काल, एवं पात्र का विचार रहे। अक्षरशः अनुवाद करने की अपेक्षा आधार पर लिखना अधिक अच्छा है।

उपन्यास-लेखकों को सब से पहले उपन्यास का विषय ऐसा चुनना चाहिये जो पाठकों को विशेष रोचक होवे। जो घटनाएँ मामूली हो गई हैं यदि उन पर लिखना आवश्यक दीखे तो ऐसी बातें लिखनी चाहिये जिनसे कुछ विशेषता आवे। वर्णन-शैली ऐसी हो कि "नितप्रति नवरुचि बाढ़त जाई"। ज्यों २ पढ़ते जायँ त्यों २ आगे बढ़ने की रुचि उत्पन्न होती जायँ। भाषा विषय के अनुसार रहे। लेखक की ओर से जो कथन किया जाय उसकी भाषा चाहे जैसी रहे; पर पात्रों की भाषा उनकी योग्यता, जाति, स्वभाव आदि के अनुसार ही रहे। मुंशी के मुँह से संस्कृत

* काव्य प्रभाकर पृष्ठ १२६।

उगलवाना, पण्डित जी का अरबी ऊँटों की तरह बलबलाना, ग्रामीण स्त्रियों से 'शीन सपाटे भर-वाना अस्वाभाविक है। चरित्र-चित्रण में अस्वाभाविकता, बिल्कुल न आने पावे। बुरे कामों का बुरा और अच्छों का अच्छा परिणाम दिखाने में कदापि न हिचकना चाहिये। घटनाओं का तारतम्य ऐसा रहे कि पाठकों को वे घटनाएँ आँखों के सामने झूलने लगें। उपन्यास—लेखक को पूर्ण सफलता तब समझनी चाहिये जब कि उपन्यास के पढ़नेवाले उनकी कल्पित घटनाओं को भी सत्य ही समझने लगें। साथ ही उपन्यास लेखकको मनोरञ्जन के साथ अपना उच्च लक्ष्य न खो देना चाहिये। उसका उद्देश्य मनोरञ्जन के साथ ही पाठकों की ज्ञान वृद्धि, समाज—सुधार आदि होना ही चाहिये।

समय बदल रहा है। परिवर्तन के चिन्ह दिख रहे हैं। पिष्टपेषण की अब ज़रूरत नहीं। नवीनता ढूँढ़नी चाहिये। उसी का आदर होगा। बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने कवियों को प्रोत्साहित करते हुए जो कुछ कहा है वही हम उपन्यास लेखकों से कहते हुये अपने इस अल्प प्रबन्ध को समाप्त करते हैं:—

करते रहोगे पिष्टपेषण
और कब तक कविवरो!
कच, कुच, कटाक्षों पर अहो! अब
तो न जीते जी मरो।
है बन चुका शुचि अशुचि अब तो
कुरुचि को छोड़ो भला,
अब तो दया करके सुरुचि का
तुम न यों घोंटो गला॥
आनन्द-दात्री शिक्षिका है
सिद्ध कविता-कामिनी,
है जन्म से ही वह यहाँ
श्री राम की अनुगामिनी।
पर अब तुम्हारे हाथ से वह
कामिनी ही रह गई,
ज्योत्स्ना गई देखो अँधेरी
यामिनी ही रह गई॥
अब तो विषय की ओर से मन
की सुरति को फेर दो,
जिस ओर गति हो समय की उस
ओर मति को फेर दो।
गाया बहुत कुछ राग तुमने
योग और वियोग का,
संचार अब कर दो यहाँ
उत्साह का उद्योग का॥
केवल मनोरञ्जन न कवि का
कर्म्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी
मर्म्म होना चाहिए।
क्यों आज "राम-चरित्र मानस"
सब कहीं सम्मान्य है?
सत्काव्य-युत उसमें परम आदर्श
का प्राधान्य है॥
धैर्यच्युतों को धैर्य से कवि
ही मिलाना जानते,
वे ही नितान्त पराजितों को
जय दिलाना जानते,
होते न पृथ्वीराज तो रहते
प्रताप वृती कहाँ?
एथेंस कैसे जीतता
होता न यदि सोलन वहाँ?
संसार में कविता अनेकों,
क्रान्तियाँ है कर चुकी,
मुरझे मनों में वेग की
विद्युत्प्रभाएँ भर चुकी।
है अन्ध सा अन्तर्जगत कवि-
रूप सविता के बिना।

सद्भाव जीवित रह नहीं सकते
सु-कविता के बिना ॥
मृत जाति को कवि ही जिलाते
रस-सुधा के योग से ।
पर मारते हो तुम हमें उलटे
विषय के रोग से ।
कवियो ! उठो अब तो अहो ! कवि
कर्म्म की रक्षा करो।
सब नीच भावों का हरण कर
उच्च भावों को भरो ॥

ईश्वर करे, हमारे गद्य-कवि चेतें, स्वयं ही न चेतें वरन् अपने देश और जाति का भला चेतें, कर्त्तव्य-जागरूक हों, एवं समय को देख कर उत्तमोत्तम ग्रंथों की रचना कर साहित्य को गौरवशाली बनावें ! अस्तु !

—:*:—
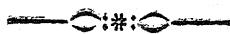
नागरी-लिपि

देवनागरी लिपि को शीघ्र लिखने योग्य बनाने और अलङ्कृत करने के उपाय

[लेखक--पंडित गौरीशङ्कर भट्ट, गुरुकुल कांगड़ी]

श्रीमन्माननीय सभापति जी महोदय, तथा सभ्यगण !

कहते हैं कि मनुष्य के स्वभाव और चरित्र का अनुमान उसके लेख से किया जाता है, वैसे ही जाति के स्वभाव और चरित्र का अनुमान उसकी लिपि से हो सकता है। जैसे मनुष्य का मन उसके लेख में प्रतिबिम्बित होता है, वैसे ही जाति का मन उसकी लिपि में प्रतिबिम्बित होता है। हमारे पूर्वजों ने देवनागरी लिपि को इतना सौन्दर्य सम्पन्न और उपयोगी बना दिया है कि संसार की सम्पूर्ण लिपियों में से कोई भी लिपि उसकी समता नहीं कर सकती। विविध प्रकार के घुमाव और गोलाइयाँ जो सौन्दर्य का मूल हैं, वे देवनागरी अक्षरों में सरल रेखाओं के साथ ऐसी विधियुक्त मिलाई गई हैं, कि उनके देखने से मन प्रसन्न हो जाता है। देवनागरी अक्षरों की समानरूपता और सौन्दर्य पर्याप्त उपयोगिता भी साथ लिये हुए है। अतएव भारतवर्ष की सर्वप्रधान देश व्यापिनी लिपि देवनागरी ही समझी गई है।

संस्कृत भाषा "देवभाषा" और "देववाणी" के नाम से प्रसिद्ध है, वह देवनागरी अक्षरों में ही लिखी जाती है। बङ्गाल, गुजरात काश्मीर, बम्बई, मदरास, पञ्जाब, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश-बरार और मध्य भारतादि प्रदेशों में संस्कृत भाषा के ग्रन्थ प्रायः देवनागरी अक्षरोंमें ही लिखे और छापे जाते हैं। देवनागरी वर्ण माला की सरलता और सुव-चतामें किसी को सन्देह नहीं है। देवनागरी अक्षर व्यवहार करने में किसी को कठिनाई नहीं पड़ती। अतएव बम्बई, पञ्जाब और मदरास के विश्व-विद्यालयों में भी (जहां देवनागरी की प्रधानता नहीं है) संस्कृत के प्रश्नों का उत्तर देवनागरी अक्षरों में ही लिखा जाता है। इतना ही नहीं ब्रह्मदेश और सीलोन में पालीभाषा के ग्रन्थ देव-नागरी अक्षरों में ही छापे जाते हैं और सात समुद्रपार इङ्गलैण्ड तथा जर्मनी तक में संस्कृत भाषा के ग्रन्थ देवनागरी अक्षरों में ही छपते हैं। मराठी, गुजराती और गोर्खी आदि कई भाषाओं के अनेक समाचार पत्र देवनागरी अक्षरों में छपते हैं। कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले "देवनागर" पत्र में संस्कृत, बंगला, गुजराती, मराठी, पञ्जाबी, गोर्खी और तेलगू आदि अनेक भाषाओं के लेख देवनागरी अक्षरों में प्रकाशित कर, उसके माननीय सञ्चालकों ने सिद्ध किया है कि देवनागरी अक्षरों में भारतवर्ष की सम्पूर्ण भाषाएँ लिखी और छापी जा सकती हैं। भारतवर्ष में छापे की कल जारी होते ही बम्बई, कलकत्ता और काशी आदि महा-नगरों में संस्कृत के अच्छे २ ग्रन्थ देवनागरी अक्षरों में ही छपे। इससे स्पष्ट है कि भारतवर्ष भर में यही अक्षर सब से अच्छे समझे गए हैं।

सरकारी रिपोर्ट से विदित है कि देवनागरी लिखने पढ़ने वालों की संख्या सब प्राकृत लिपियों के लिखने पढ़नेवालों से बढ़ी हुई है। इस समय

बङ्गाक्षर भी उन्नतावस्था में हैं, परन्तु स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र-विद्यासागर महोदय ने अपनी व्याकरण कौमुदी के चतुर्थभाग में सूत्र देवनागरी अक्षरों में छपवाए। राजा सर राधाकान्त देव का सुप्रसिद्ध कोष "शब्द-कल्पद्रुम" देवनागरी अक्षरों में ही छपा है। पण्डित जीवानन्द विद्यासागर ने कलकत्ते में बहुत से ग्रन्थ देवनागरी अक्षरों में ही छापे हैं। इससे प्रकट है कि बङ्गदेश में भी देवनागरी अक्षरों की ही आवश्यकता है। माननीय जस्टिस शारदाचरण मित्र महोदय भी कहते हैं कि सम्पूर्ण भारत में देवनागरी लिपि होनी चाहिये। आपने इसके लिये बहुत कुछ प्रयत्न भी किया है। इससे स्पष्ट है कि बङ्गाली सज्जन भी देवनागरी अक्षरों को ही सब से अधिक उपयोगी समझते हैं। बङ्गाली विद्वानों की देवनागरी से केवल सहानुभूति ही नहीं है, वरञ्च वे ही देवनागरी अक्षरों के प्रचार के अगुआ कहे जा सकते हैं क्योंकि सबसे पहले उन्हीं ने इस बात का प्रस्ताव किया था कि देवनागरी लिपि सम्पूर्ण भारतवर्ष की लिपि बने।

बड़े हर्ष की बात है कि ऐसी सर्व प्रिय सर्वानुमोदित और सर्व गुण सम्पन्न देवनागरी को इस हिन्दी साहित्य सम्मेलन की कृपा दृष्टि से शीघ्र लिखने योग्य बनाने और अलंकृत करने का भी उपाय सोचा जाने लगा है। कलकत्ते के तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में इस विषय के पूर्वांश पर जो निबन्ध प्रस्तुत किया गया था वह उक्त सम्मेलन के कार्य विवरण के दूसरे भाग की लेखमाला में (पृष्ठ ९० से १०२) अच्छी आशा के साथ छापा गया था और सम्मेलन के भावी अधिवेशन में उस पर विचार करने की इच्छा प्रकट की गई थी। सम्भवतः देवनागरी के हितैषी सज्जनों ने उसे पढ़ा होगा और उसके अधिकारी सज्जनों ने उस पर विचार भी किया होगा; परन्तु निबन्ध लिख भेजने के सिवाय उसके सम्बन्ध में मुझे किसी प्रकार की कोई सूचना नहीं मिली। आज वही विषय फिर से दोहराना पिष्ट पेषण होने पर भी सुविचारार्थ पुनः उपस्थित करना आवश्यक ही समझा गया है, अतः उसका सारांशमात्र फिर से निवेदन किया जाता है। जैसे रस्सी की लगातार रगड़ से पत्थर पर निशान पड़ते हैं, और रगड़ते २ चन्दन से भी आग निकलती है, वैसे ही इस विषय को दोहराने तेहराने अथवा इसकी अनेक आवृत्तियां करने से भी फल प्राप्त हो जाय तो अच्छा ही है।

शीघ्र लिखने का प्रयोजन समय बचाने के लिये साधारण व्यवहार में भी होता है और अधिकतर उस अवस्था में होता है जब किसी वक्ता का भाषण उसी वेग से लिखना आवश्यक हो जैसा कि वह वक्ता अपने भाषण की तरङ्ग में बोल रहा हो। परीक्षाओं से जाना गया है कि साधारण बोलचाल में मनुष्य प्रत्येक मिनट में १२० शब्द बोलता है। १५० शब्द बोलना भी अधिक नहीं। १८० और २०० शब्द भी प्रत्येक मिनट में बोले जाते हैं। इसलिये लिखने का वेग भी कम से कम इतना तो होनाही चाहिये कि प्रत्येक मिनट में २०० शब्द लिखे जा सकें। जिन देशों में विद्या की उन्नति हुई है और जहाँ सभ्यता ने पदार्पण किया है, वहां के लोगों को इसकी ज़रूरत हुई है। यूरोप में १० वीं ईसवी शताब्दी में इस क्षिप्रलिपि-कला की ओर वहाँ के लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ था और सैकड़ों मनुष्यों ने एक दूसरे की लिपि और सङ्केतों में हेरफेर करके इसे उन्नत किया था इङ्गलैण्ड इस प्रयत्न में बहुत आगे रहा वहाँ इसका प्रचार भी अच्छा हुआ। १८ वीं और १९ वीं शताब्दी में इसकी विशेष उन्नति हुई और सर इसाकपिटमैन के आविष्कार का अधिक प्रचार हुआ इस समय उसी का अधिक बर्ताव होता है। भारतवर्ष में भी शीघ्र लिखने की आवश्यकता बहुत दिनों से लोग अनुभव करते आए हैं। यहाँ की कैथी, मुड़िया और महाजनी आदि लिपियाँ, जो देवनागरी से निकाली गई हैं इस बात को सिद्ध कर रही हैं। यह लिपियां साधारण व्यव-

हार में अब तक लिखी जाती हैं। परन्तु व्याख्यानादि लिखने योग्य यह नहीं हैं।

शीघ्र लिखने के लिये अक्षरों की रचना सरल होनी चाहिये, उनमें अधिकांश रेखाएँ और चापें भी सरल होनी चाहिये। उनकी बनावट ऐसी हो कि बिना कलम उठाए अक्षर तथा शब्द और वाक्य तक लिखे जा सकें। देवनागरी अक्षरों की रचना अधिक लपेटदार होने के कारण उनके बनाने में कई कई बार कलम उठानी पड़ती है। इसलिये लिखने में शीघ्रता नहीं हो सकती। गढ़वाली तथा महाराष्ट्र देश की मूड़ी लिपि और कई प्रान्तों की मुड़िया तथा महाजनी आदि लिपियाँ, जो कुछ शीघ्र लिखी जाती हैं, वे भी देवनागरी का अपभ्रंश होने के कारण शीघ्र लिखने योग्य नहीं। शीघ्र लिखने के लिये जो लिपियाँ देवनागरी से निकाली गई हैं उनमें दोष यह है कि वे ठीक ठीक पढ़ी नहीं जातीं। लिखने का प्रयोजन यह होता है कि जो कुछ लिखा जाय वह पढ़ा भी जाय। शीघ्र लिखने से यदि लिखनेवालों का कुछ समय बचे अथवा उन्हें कुछ सुगमता हो तो पढ़नेवालों को भी माथा न पीटना पड़े। क्योंकि लिखनेवाला एक बार लिख देता है तो पढ़नेवालों को समय२ पर अनेक बार पढ़ना पड़ता है। सो केवल लिखनेवालों ही को समय बचाने का अवसर देकर पढ़नेवालों के समय पर कुछ भी ध्यान न देना और उनपर विपत्ति डालना अच्छा नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि रोमनाक्षर बिना कलम उठाए लिखे जा सकते हैं और फारसी अक्षर भी आपस में मिले हुए लिखे जाते हैं इसलिये उन्हीं का व्यवहार होना चाहिये। परन्तु उन दोनों लिपियों की वर्णमालाएँ ऐसी अपूर्ण और बेढङ्गी हैं कि उनमें संस्कृतादि भाषाएँ शुद्ध लिखी ही नहीं जा सकतीं। यदि कोई धींगाधींगी या ज़बर्दस्ती से लिखे भी, तो वह आपही उसे पढ़ नहीं सकता; दूसरों की तो मजालही क्या है कि ज़बान हिला सके। रोमन वर्णमाला की अपूर्णता तो उसके केवल २६ अक्षरों सेही प्रकट है, जिसमें स्वरों और व्यञ्जनों का ऐसा अकाल है कि एक एक स्वर के लिये दो दो स्वर और एक एक व्यञ्जन के लिये दो दो और तीन तीन व्यञ्जनों की शरण लेनी पड़ती है। जिस लिपि के स्वरों के सङ्केत न होने से प्रत्येक व्यञ्जन के साथ स्वर अपने समूचे आकार से जोड़े जाते हैं, उसे देवनागरी से सुगम लिपि मानने कौन चला है? जो देवनागरी से दूना स्थान घेर ले, जिसका 'पिता' 'पिटा' पढ़ा जाय, 'दाता' 'डाटा' पढ़ा जाय और 'पिनाकपाणि' का 'पीना का पानी' समझा जाय इत्यादि २, उसे कौन भला आदमी अच्छा समझ सकता है? फ़ारसी या उर्दू वर्णमाला का भी यही हाल है। उसमें भी स्वर और व्यञ्जन पूरे नहीं हैं। स्वरों की कमी के कारण उच्चारण में बड़ी दिक़्क़त होती है और अन्य भाषा लिखने के व्यञ्जन भी गढ़ने पड़ते हैं। उसकेलिये कई २ अक्षर एकही आकार के होते हैं, इससे पढ़ने में बहुत धोखा होता है। उसे तेज़ी से लिखते समय ह्रस्व स्वरों के चिह्न ज़ेर ज़बर और पेश तथा व्यञ्जनों को स्पष्ट करने वाले नुक़ते उड़ा देने से लिपि का ऐसा अङ्ग भङ्ग होता है कि असलियत का पताही नहीं लगता। नुक़तों के न होने से उसका बाप, पाप, ताप, टाप, पाट नाप, नाट, टाट, बात, ताब आदि अनाप शनाप कोई ४५ प्रकार से साथक और निरर्थक पढ़ा जाता है। लिखा जाता है—'हाजी पुर पटना' पढ़ा जाता है—"चाची तोर बिटिया" लिखा जाता है 'छुड़ी से मारा' पढ़ा जाता है-'छुरा से मारा'। उसका फेंकवाना और फुँकवाना एक ही है। इसलिये ऐसी लिपियों से सरोकार न रखना ही अच्छा है। जो लिपियाँ देवनागरी की अपेक्षा कुछ शीघ्र लिखी जाती हैं परन्तु स्पष्ट पढ़ी नहीं जातीं, उनकी अपेक्षा देवनागरी का कुछ देर से लिखा जाना अनुचित नहीं है। जिन लिपियों में अन्यभाषा के लेख लिखना और उनका पढ़ाजाना असाध्य और असम्भव है, ऐसी सन्दिग्ध और भ्रष्ट लिपियों से सदा अनर्थ

ही होते आये हैं, होते ही रहते हैं और होते ही रहेंगे। इसलिये रोमन और फ़ारसी आदि लिपियों से देवनागरी की तुलना करना, कङ्कड़ों और रत्नों की बराबरी करना है।

विज्ञजन जानते ही हैं कि लिपि की उन्नति और अवनति अधिकांश लेखकों के प्रयत्न पर निर्भर है। यदि लेखकों की ओर से प्रमाद होगा तो लिपि का कुशल नहीं। जो लोग अभी तक अन्य लिपियों के चक्कर में पड़े हुये हैं, जिन्होंने देवनागरी वर्णमाला लिखने का विधिपूर्वक अभ्यास नहीं किया, उन्हें इसके लिखने में कठिनाई जान पड़े तो आश्चर्यही क्या है? परन्तु जिन्होंने सावधानी से विधिपूर्वक लिखने का अभ्यास किया है और साथ ही अन्य लिपियाँ लिखना जानते हैं, वे जान सकते हैं कि देवनागरी लिखने में कितनी सुगमता है। वे ही साधारण व्यवहार में इसे भलीभाँति लिख सकते हैं और इसी से सब काम चला सकते हैं मेरी सम्मति में प्रचलित देवनागरीलिपि ही साधारण व्यवहार में चलाई जाने योग्य है। इसे शीघ्रता से लिखने के लिये पहले नियमपूर्वक लिखना सीखना चाहिये, तब क्रमशः शीघ्रता से लिखने का भलीभाँति अभ्यास करना चाहिये। ऐसा न करने से शीघ्र लिपि भ्रष्टलिपि में बदल जायगी। शीघ्र लिखने के लिये किलक और वेद-मुश्क आदि की कलमों की अपेक्षा होल्डर और इण्डिपेण्डेण्ट पेन से लिखना अच्छाहै, परन्तु इनसे लिखने का भी सँभालकर अभ्यास कर लेना चाहिये। हाँ, विशेष अवस्थाओं में अधिक शीघ्रता से लिखने के लिये यह हो सकता है कि अक्षरों पर माथेकी रेखा (बंधनी) न लगाई जाय। इस अवस्था में 'ध' और 'घ' तथा 'भ' और 'म' में भेद दिखाने के लिये 'ध' और 'भ' के आरम्भ में एक बहुत छोटी पड़ी रेखा (माथे की रेखाके स्थान पर) जोड़ लेनी चाहिये। यदि माथे की रेखा सब अक्षरों पर रखनाही अभीष्ट हो तो पहले एक लम्बी पड़ी रेखा शीघ्रतासे खींचकर उसीमें बन्दनवार के पुष्प-पत्रों की भाँति अक्षर लटकाते चले जाना चाहिये। इस अवस्था में भी 'ध' और 'भ' के आरम्भ में एक छोटी सी पड़ी रेखा माथेवाली रेखा से कुछ नीचे जोड़ लेनी चाहिये। इस प्रकार जब 'ध' और 'भ' माथेकी रेखाके नीचेसे आरम्भ होगा, तब 'घ' और 'म' नहीं पढ़ा जायगा। शेष रहा 'झ' अक्षर, जिसके माथे की रेखा 'ध' और 'भ' के माथेकी रेखा की भाँति कटी हुई होती है, उसका अन्तिम भाग जो पुछल्ला सा लटका रहता है, वही पूर्णतया, 'झ' का सूचक है, इसलिये उसपर चाहे माथेकी रेखा लगाई जाय चाहे न लगाई जाय, दोनों अवस्थाओं में वह स्पष्ट पढ़ा जायगा। सारांश यह कि साधारण व्यवहार के लिये प्रचलित देवनागरी लिपिका प्रचार होना ही अच्छा है। शुद्ध लिखने के लिये प्रचलित अक्षरों में तोड़ मरोड़ करना मङ्गलकारी नहीं जान पड़ता। शुद्ध भी लिखा जाय और अति शीघ्र भी लिखा जाय यह बड़ी बिषम समस्या है। शीघ्र और अति शीघ्र लिखने के लिये जो क्षिप्र-लिपि सर इसाक पिटमैन की प्रचलित है उसमें भी शीघ्रता से लिखते समय नुकते और और मात्राओं का ध्यान नहीं रक्खा जासकता, अर्थात् मात्राएँ नहीं लगाई जासकतीं। जिससे हानि यह होती है कि लिखनेवाले के सिवाय दूसरा उसे पढ़ नहीं सकता। यदि लिखने वाला अपना लेख तीन चार दिन तक रख छोड़े तो वह आपही उसे पढ़ नहीं सकता। सो साधारण व्यवहार में प्रचलित देवनागरी लिपि काही वर्ताव होना उचित प्रतीत होता है। हाँ, वक्ताओं के भाषण आदि लिखने का काम इससे नहीं चल सकता इसमें कुछ काट छाँट करने से भी वह काम कदापि नहीं चल सकता सो उसके लिये विशेष प्रबन्ध करना आवश्यक है।

शीघ्र लिपि के सङ्केत कैसे होने चाहिये? इस विषय में केवल मुझ जैसे अल्पज्ञ की सम्मति

पर्याप्त नहीं हो सकती। इस कार्य को पूरा करने के लिये प्रवीण हिन्दी सेवकों तथा देवनागरी के मर्मज्ञ और क्षिप्रलिपि के अनुभवी सज्जनों की एक समिति सङ्गठित होना परमावश्यक है। वही इस समस्या की पूर्ति करने में समर्थ हो सकती है। शीघ्र लिपि के विचार को उन्ही सज्जनों पर निर्भर करके आगे अलङ्कृत लिपि के सम्बन्ध में कुछ निवेदन किया जाता है।

अलंकृत लिपि का प्रयोजन समझाने की विशेष आवश्यकता नहीं है। भारतवासियों की अलङ्कार-प्रियता के प्रसाद से यहाँ के नर नारियों और बालक बालिकाओं के अङ्गप्रत्यङ्ग सजाने के लिये नाना प्रकार के बहुमूल्य वस्त्राभूषणों की सृष्टि पुरानी पड़ जाने पर भी अभी तक जीवित जागृत बनी हुई है। अंग ढाँकने के लिये साधारण गज़ी, गाढ़े, खद्दर, लट्ठा, नैनसुख और मलमल आदि पर्याप्त नहीं समझे जाते; वरन तनज़ेब, चिकन, जामदानी, कामदानी जालीलोट, ढाकापाटन, गिरएट कीनख़ाब, करेब, धूपछाँह, मखमल, दरियाई, साटन, फुलवर और गुलबदन आदि से देह की शोभा बढ़ाई जाती है। पोशाकों में गोटा, पट्टा, लैस, किनारी, गोखरू और मुक्केस आदि झलकाई जाती है। टोपी से लेकर जूतियों तक में सलमे सितारे जड़कर बेल-बूटे निकाले जाते हैं और उनमें मोतियों की लड़ियाँ टाँकी जाती हैं।

राजा महाराजा अपनी शोभा बढ़ाने के लिये और अपनी उच्चता प्रकट करने के लिये मुकट, सरपेंच, कलँगी, तुर्रा, क्रीट, कुण्डल धारण करते हैं—गले में हीरा, पन्ना, पुखराज, और नीलम पद्म-रागादि जटित गुलूबन्द, कण्ठा, कण्ठी, चन्द्रहार तथा मोतियों की माला पहनते हैं—भुजाओं पर रत्न-जटित अङ्गद, कलाई में गजगौहर के गजरे और कड़े पहनते हैं, तो साधारण जनों में भी सोने चाँदी के सैकड़ों आभूषणों का व्यवहार होता है। शिर से पैर तक और अँगुलियों के पोर पोर तक के आभूषण गिनाने का प्रयोजन नहीं है। इन दरिद्रता के दिनों में भी ऐसा कोई भी अभागा गृहस्थ न होगा, जिसके यहाँ हजारों से लेकर सौ पचास रुपये तक के आभूषण न हों। जो दीन और महादरिद्री हैं, वे गिलट, फूल और पीतल ही के आभूषण पहन लेते हैं। उनके लिये विलायती मुलम्मे के आभूषणों की कमी नहीं है। रङ्ग-बिरंगे काँच के मोती और पोत के मूँगे ही उन्हें जवाहिरात का काम देते हैं। कहाँ तक कहें लूले, लँगड़े, काने, कुबड़े और अन्धे तक अच्छे २ वस्त्राभूषणों के अनुरागी दिखाई देते हैं।

मनुष्य जैसे स्वयं सजधज का प्रेमी है वैसे ही अपने भवन गृह और झोपड़े तक सजाता है। मकानों की शोभा बढ़ाने के लिये दरवाजों में कई प्रकारकी मेहराब और कंगूरे बनवाता है दीवारोंमें कई प्रकारके गोले, गल्ले, एँड, चूड़ी और कानिसें लगवाता है; अनेक प्रकार की जालियाँ कटवाता है; रङ्ग बिरङ्गे बढ़िया २ बेलबूटे खिँचवाता है विविध प्रकार के सुन्दर २ चित्र और झालरें लगवाता है। छतोंमें चित्रकारी कराता है। झाड़ हांडी गोले, झाबे और न जाने क्या क्या लटकाता है। फ़र्श में सङ्गमर्मर और सङ्गमूसा की गङ्गायमुनी जड़ाई कराता है उस पर नाना रङ्गरञ्जित गलीचे और मखमली गद्दे बिछवा कर अपनी अलङ्कार-प्रियता का परिचय देता है। वह हाथी, घोड़े, ऊंट, रथ, बहली, बग्घी, इक्का और पीनस, पालकी आदि को भी बिना अलंकृत किये किसी को भी कोरा नहीं रहने देता। जो साधु वैरागी और विरक्त कहलाते हैं, जिन्हें संसार असार दीखता है वे भी अपनी सजधज और टीपटाप से राजा रईसों को मात करना चाहते हैं। जो सुशिक्षित भद्रपुरुष और जेन्टिलमैन हैं वे भी किसी न किसी फ़ेशन के वशीभूत हैं। सारांश यह कि अलङ्कार मनुष्य जाति में व्यापक है। कवियों ने विचार तथा कल्पनाओं के उदर का नाम अलङ्कार रक्खा है; अलङ्कार ही साहित्यशास्त्र का भूषण है।

कहते हैं कि मनुष्य का भूषण रूप, रूप का

भूषण गुण, गुणका भूषण ज्ञान, और ज्ञान का भूषण क्षमा है इसी प्रकार पांडित्य का भूषण मधुरता, वीरता का भूषण वाक्-संयम; अर्थात् डींग न मारना, ज्ञान का भूषण मौनता, कुल का भूषण विनय, धन का भूषण उचितस्थान में व्यय करना, तप का भूषण क्रोध न करना, बल का भूषण क्षमा, धर्म का भूषण निर्व्याजता, और इन सब का भूषण शील है। इस प्रकार भूषणों की भरमार और अलङ्कार का चमत्कार देखकर कौन सहृदय नहीं समझ सकता कि देवनागरीलिपि का भी कोई भूषण या अलङ्कार होना ही चाहिये।

'भारत की कारीगरी' नामक पुस्तक में लिखा है कि "भारत में मुसलमानी राज्य स्थापित होने के साथ अरबी फ़ारसी अक्षरों में बेल बूटे बनाना या ख़तेगुलज़ार, खते तुग़रा आदि लिखने की चाल इस देश में चल निकली है। भारत में इस विद्या को उत्तेजना देनेवाले मुख्य बादशाह अकबर थे। उन्होंने महाभारत का रज़्मनामा के नाम से अनुवाद करा उसमें बढ़िया अक्षर लिखवाने के लिये चार लाख रुपया दिया था। उसी रज़्मनामे की नकल जयपुर राज्य के पुस्तकालय में अब तक विद्यमान है। इस तरह के अक्षरों में ६२ वर्ष पहिले अलवर के राजा श्रीमान् विनयसिंह जी के समय में शेखसादी की गुलिस्ताँ लिखी गई थी। महाराज ने इस पुस्तक के लिये लेखक को पचास हज़ार रुपया इनाम दिया था। इस पुस्तक के हाशियों में सुन्दर मनोमोहक चित्र हैं और तुर्रा यह कि एक पृष्ठ की कारीगरी से दूसरी नहीं मिलती। यह कारीगरी केवल मुसलमानों ही से भारत में नहीं आई वरन् कलकत्ते के अजायब घर में पालीभाषा की लिखी हुई एक ऐसी ही पुस्तक विद्यमान है।

पाली लिपि राजा अशोक के समय की प्रचलित देवनागरी लिपि है। राजा अशोक की धर्माज्ञाओं की भाषा पाली भाषा से मिलती हुई होने के कारण उनकी लिपि का नाम पाली रक्खा गया था। वास्तव में वह लिपि देवनागरी का पूर्वरूप ही है। यह बात प्राचीन लिपिमाला के पृष्ठ (२) के लेख से विदित होती है। इससे स्पष्ट है कि देवनागरी अक्षर पालीभाषा में आज से दो हज़ार वर्ष पहले अलंकृत किये जाते थे। अँगरेज़ी ग्रन्थकारों ने पता लगाया है कि जिस समय भारत में बौद्धों का दौरदौरा था यहाँ चित्रकारी सिखाने के लिये एक विद्यालय मध्यभारत में, दूसरा राजपूताने के पश्चिमी भाग में, तीसरा बङ्गाल में, चौथा नैपाल में और पाँचवाँ कश्मीर में था। ऐसा 'भारत की कारीगरी भाग १ अध्याय १ में लिखा है। मुसलमानी राज्य में अरबी फ़ारसी लिपि की प्रधानता रही और उसी के प्रसाद से फ़ारसी के ऐन ग़ैन फ़े क़ाफ़ और ख़े का उच्चारण हलक़ से करने के लिये अ, ग, फ, क, और ख एकएक नुकते से अलंकृत किये गए तथा ज़े, ज़ो, ज़ाल और ज़्वाद के उच्चारणार्थ ज को एक विन्दु का पुरस्कार प्राप्त हुआ। बस इतना ही भाग्योदय हुआ। अनेक लोगों का कथन है कि फ़ारसी का ख़तेगुलज़ार देखकर हिन्दी वाले भी अब ऐसे अक्षर बनाने लगे हैं कि जिनके भीतर बेलबूटे होते हैं, परन्तु अभी तक हिन्दी में अधिक उन्नति नहीं हुई। ता० ४ मार्च सन् १६०४ ई० के 'भारतमित्र' में उसके अनुभवी सम्पादक स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द जी गुप्त ने 'लिपिबोध' की समालोचना में लिखा था कि "अँगरेज़ी में बहुत नमूने के अक्षर होते हैं। एक अक्षर दस बीस क्या पचासों शकल का होता है, पर नागरी में अब तक कुछ न था। बहुत लोग बहुत खेंचतान कर कुछ नये ढङ्ग के अक्षर बनाते थे। मथुरा में गोस्वामी गोपाललाल जी के यहाँ हमने कई एक नमूने देखे, पर वे भी ऐसे हैं कि कोई लिखने वाला लिख गया और अब वह एक जगह रक्षित हैं, वे किसी प्रकार की सहायता नागरी अक्षरों में नहीं पहुँचाते" अरबी और फ़ारसी अक्षरों की नुकतों की नाप, उनकी बनावट तथा उन्हें अनेक प्रकार से अलंकृत करने की रीति

'अरजङ्गचीन' और 'नज़्मपर्मी' आदि पुस्तकों में वर्णित और चित्रित की गई है। ख़ते आफ़ताबी, ख़ते बैज़ाबी, ख़ते गुलज़ार, ख़ते गुबार, ख़तेमाही, ख़ते तुग़रा, ख़ते तौअम,ख़ते माकूस,ख़तेसरो, ख़ते नाखूनी,ख़ते शिकश्ता और ख़ते तिलस्म आदि फ़ारसी लिपि के कितने ही भेद और विभेद पाए जाते हैं। इसी प्रकार अँगरेज़ी लिपियों को अनेक विद्वानों ने बहुत काल तक अलंकृत करने में बड़ा परिश्रम किया है, उन्होंने ओल्ड इँगलिश, सेलटिक, चर्च टेक्स्ट,जर्मनटेक्स्ट गाथिक रोमन इटैलिक एन. ग्रोसिंग और इजिप्शियन आदि लिपियों की सृष्टि कर उन्हें सैकड़ों प्रकार से अलंकृत कर डाला है अथवा उन्हें उन्नति की सीमा तक पहुँचा कर गौरवास्पद बनाया है। परन्तु खेद और लज्जा की बात है कि देवनागरीलिपि की ओर किसी महाराजाधिराज या राजा रईस ने अब तक कृपा दृष्टि नहीं की है। कलकत्ता प्रेसीडेन्सी के संस्कृताध्यापक पंडित सतीशचन्द्र आचार्य्य विद्याभूषण एम. ए. के मतानुसार बारहवीं शताब्दी तक कान्यकुब्ज राजाओं की कृपादृष्टि के कारण देवनागरी वर्णमाला ने दूसरी सहयोगिनी वर्णमालाओं से अधिक श्रेष्ठता प्राप्त की थी। तब से अब तक यह लगभग उसी अवस्था में है। सातसौ वर्षों में इसे पाँच सात बिन्दुओं का पुरस्कार मुसलमानी ज़माने में मिला है। तसल्ली के लिये इसे ही ग़नीमत समझना चाहिये। परन्तु इतने लम्बे समय तक भारत वासियों ने जहाँ विलासिता की हद करदी, वहाँ देवनागरी को अलंकृत करने में उनका कुछ भी ध्यान न देना बड़ी ही शोचनीय बात है। सम्भव है कि लोगों ने यह समझा हो कि देवनागरी सब लिपियों की ललामभूत है। वह स्वयं सब से सुन्दर और सब गुणों से अलङ्कृत है, इसलिये उसे अलङ्कृत करने की आवश्यकता ही क्या है? जैसा कि महाकवि कालिदास ने कहा है:—

"सरसिजमनुविद्धं शैवलेनाऽपिरम्यं,
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनाऽपितन्वी,
किमिवहि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥"

अथवाः—

"नहीं मोहताज ज़ेवर का जिसे ख़ूबीख़ुदाने दी।
कि जैसे ख़ुशनुमा लगता है सबको चाँद बिनगहने"

परन्तु यह मानने को कौन तय्यार न होगा कि सुवर्ण के सुन्दर २ आभूषणों की शोभा रत्नों से बढ़ाई जाती है और सुन्दर सुडौल अङ्गों की शोभा अलङ्कारों से दूनी, चौगुनी और दशगुनी हो जाती है। अतएव देवनागरी को अलङ्कारों से विभूषित कर उसका सौन्दर्य और महत्व बढ़ाना ही चाहिये।

कई लोगों की राय में देवनागरी लिपि अलङ्कृत होही नहीं सकती! परन्तु यह उनका अज्ञान अथवा भ्रममात्र है। यह विषय वाणी का नहीं क्रिया का है और बिना बुद्धि दौड़ाए नहीं हो सकता। असल बात तो यह है कि यहाँ मुसलमानी ज़माने में फ़ारसी लिपि का ही अधिक प्रचार रहा और अधिकांश लोग उसी पर फ़िदा और फरेफ़्ता रहे, जिसका नशा तो उतर चुका है मगर ख़ुमार बाक़ी है। जब से अँगरेज़ी ज़माना आया, तब से अँगरेज़ी लिपि पर ही लोग लट्टू हो गए। इधर कई सौ वर्षों से देव नागरी की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। विशेषतः प्रान्तिक लिपियों ने इसे बलहीन कर डाला। तब अलङ्कृत करने का अवसर ही कैसे मिल सकता था?

परमेश्वर की बड़ी कृपा हुई कि सर्कारी पाठशालाओं में इसे आश्रय मिला और क्रमशः इसका महत्व लोग समझने लगे। सौभाग्यसे अनेक सभा समाजों की स्थापना हुई जिनके द्वारा देवनागरी का क्षेत्र विस्तृत हुआ। नागरी प्रचारिणी सभाओं की कृपा से इसका आशानुरूप सम्मान हुआ। अनेक राज्यों में इसके दफ़्तर हुए तथा संयुक्त-प्रान्त के न्यायालयों में श्रीमान् लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सरएण्टोनीमेकडानल महोदय की आज्ञा से देव-

ागरी का प्रवेश हुआ। अब इस हिन्दी साहित्य म्मेलन की कृपा से आज देवनागरी को अलङ्-ृत करने का विचार भी प्रकट हुआ है। इसलिये ाशा है कि फ़ारसी और अँगरेज़ी लिपियों की ाँति इसे भी अलङ्कार विभूषित होने का सौभाग्य ावश्य प्राप्त होगा।

मेरी सम्मतिमें सब से पहले प्रचलित लिपिके ्तरों को क़लम की लाग के अनुसार परिमित रना चाहिये, जैसेः—अ, इ, उ, ए, आकृति ंख्या १. २. ३. ४. इससे लाभ यह होगा कि ्तर चाहे जितने बड़े बनाए जायँ, वे परिमाण रहने के कारण कभी बेडौल नहीं बनेंगे। यह ्तर परकार से बहुत शुद्ध बन सकते हैं और क़हस्त रीति से भी खींचे जा सकते हैं। यह ङ्कृत करने योग्य होंगे और इन्हीं से बालक लिकाओं को सुलेख सिखाने के लिये लिपि तकें भी तैयार होंगी। (तैयार हैं भी)

इन अक्षरों का रूपान्तर करना चाहें तो इनके ाव सीधी रेखाओं में बदल देने से दूसरे प्रकार अक्षर बन जाते हैं और वे भी कलम की लाग अनुसार ही रहते हैं। जैसे अ, इ, उ, ए, ृति संख्या ५. ६. ७. ८. यह अक्षर फुटरूल हारे बहुत ही सुगमता से खींचे जा सकते हैं मुक्तहस्त रीति से भी बनाए जा सकते हैं।

इन अक्षरों को यदि अँगरेजी के इजिप्सयन रों का सा रूप देना हो तो इनकी रेखाएँ सब ों में (र. स. ए. इ. आदि की पतली नोकों को कर) बराबर मोटाई की बनानी चाहिये। जैसे . उ. ए. आकृति संख्या ९—१२। यह अक्षर ार से अति शुद्ध बनते हैं और मुक्तहस्त रीति ी खींचे जा सकते हैं।

यदि इनकी भी गोलाइयाँ सीधी रेखाओं में दी जायँ तो यह चौथे प्रकार के अक्षर तैयार ते हैं। जैसे अ, इ, उ, ए, आकृति संख्या १६। यह अक्षर भी फुटरूल द्वारा बड़ी सर-ते खींचे जा सकते हैं और मुक्त हस्तरीति से भी बन सकते हैं। ऐसे अक्षर कागज़ तथा कपड़े की चिटों और फीते तथा गोटे को मोड़ मोड़कर बड़ी ही सुगमता से बनाए जा सकते हैं।

दूसरे प्रकारके (संख्या ५ से ८ तकके) अक्षरों की सीधी रेखाएँ यदि गोल और नोकदार कर दी जायँ तो 'ओल्ड इँगलिश' के ढंग के अक्षर बन जाते हैं। जैसेः—अ. इ. उ. ए. आकृति संख्या १७—२०

ऊपरवाले चार प्रकार के अक्षरों को यदि अँगरेज़ी के "इटैलिक" अक्षरों की भाँति बनाना हो तो वर्गकोठों को दाहिने बाएँ तिरछा करके उनमें असली अनुपात से अक्षर खींचना चाहिये। जैसे—अ. इ. और उ. ए. आकृति सं० २१. २२. और २३. २४।

वर्गकोष्ठों को लम्बा और चौड़ा कर देने से अक्षरों की आकृतियाँ भी उसी प्रकार की लम्बी और चौड़ी हो जाती हैं। जैसेः—अ. इ और अ. इ. आकृति संख्या २५. २६ और २७,२८ यह अक्षर ऐसे प्रतीत होते हैं मानो रबड़की भाँति खींचकर बढ़ा दिये गए हैं, अथवा दबाकर चपटे कर दिये गए हैं।

इसी प्रकार वर्गकोष्ठों की भिन्न २ अवस्थाओं के अनुसार और भी अनेक प्रकार के अक्षरों की रचना की जा सकती है। जैसेः—नव और वन आकृति संख्या २९ और ३० तथा राम और राग आकृति संख्या ३१ और ३२। ऐसेही और भी अनेक प्रकार के नमूने तैयार हो सकते हैं।

यह सब प्रकार के अक्षर अनेक रङ्गों से और अनेक प्रकार से अलंकृत किये जा सकते हैं। यदि अक्षरों की एक ओर की रेखाएँ कुछ मोटी करदी जायँ या इनके बीच में गोल, चौखूंटे, लम्बे, तिरछे बिन्दु रखदिये जायँ, तो यह एक प्रकार के अलं-कृत अक्षर होंगे। जैसेः—घ. य. द. क. त. ज. ट. ष. आकृति संख्या ३३—४०।

यदि अक्षरों की मोड़ों पर रेखाओं अथवा बिन्दुओं की छाया दी जाय, तो यही एक प्रकार

के अलङ्कृत अक्षर होंगे। जैसेः–अ.ऋ.श.श.आकृति संख्या ४१—४४।

यदि अक्षरों की पाण्डु रेखा के बीच में बेल बूटे बना दिये जायँ तो यह भी एक प्रकार के अलंकृत अक्षर होंगे। जैसेः–व. म. ल. श. आकृति संख्या ४५—४८।

यदि अक्षरों की पाण्डुरेखा मिटाकर उसके स्थान में बेल बूटे अथवा कोई चित्र इस तरह बना दिये जायँ कि अक्षरों की आकृति स्पष्ट बनी रहे तो वे भी एक प्रकार के अलङ्कृत अक्षर होंगे जैसे क. र. और ग. त. आकृति संख्या ४६ और ५०।

यदि अक्षरों के भीतर और बाहर बेल बूटे बनादिये जायँ, तो वे एक प्रकार के अलङ्कार विभूषित अक्षर होंगे। जैसेः—धर्म. और जल. आकृति संख्या ५१ और ५२।

यदि अक्षरों के नीचे गोट की भाँति एकहरी या दोहरी छाया देदी जाय और भीतर कोई रङ्ग भरदिया जाय तो वे भी एक प्रकार के अलङ्कार विभूषित अक्षर होंगे। जैसे सत्य, और कर्म. आकृति सं० ५३. और ५४.

उभरे हुए अक्षरों की उँचाई दिखाने के लिये भी छाया लगायी जाती है। जैसे किसी लकड़ी के तख़्ते को काटकर उसके अक्षर गढ़ लिये गए हैं, उनमें लकड़ी की मोटाई का जो भाग है वह छाया देकर इस प्रकार दिखाया जायगाः—जैसेः—ज. ल. च. र. आकृति सं० ५५—५८।

जिस प्रकार अँगरेज़ी अक्षरों से कई प्रकार के संयुक्तनामाद्याक्षर (Monogram) बनते हैं, वैसे देवनागरी अक्षरों से भी यत्न करने पर बनाए जा सकते हैं। जैसे मदनचन्द्रखन्ना और मोतीलाल घोष आदि। आकृति सं० ५६—६३।

कुछ लोगों का कहना है कि फ़ारसी के ख़ते तुग़रा की भाँति देवनागरी अक्षर मोड़े मरोड़े नहीं जा सकते, परन्तु मेरे मित्र श्रीयुत बाबू कृष्णगोपाल जी ने दो तुग़रे बनाकर भेजे हैं, जिनमें से एक घोड़े के चित्र में हैं और दूसरा कमल की कली के चित्र में। घोड़े में "श्री १०८ महाराजाधिराज श्री गंगासिंह जू देव बहादुर सिपह दारुलमुल्क रियासत चरखारी" लिखा है। इसे इस तरह पढ़ियेः—(आकृति संख्या ६४)

श्री—दोनों कान

१०८ महाराजाधिराज—अयाल

श्री—आँख

गं } —मस्तक

गा } —नथुना और मुख

सिं } —गर्दन (आँख के पास)

ह } —गर्दन (नीचे की ओर)

जू—जीन का अगला किनारा, पीठ और पुट्ठे तक

दे } —छाती और गर्दन का अगला किनारा

व } —गर्दन में 'ह' से लिपटा हुआ

बहादुर—जीन का पिछला निचला और मध्य भाग

सिपह दारुलमुल्क—दुमची की बेल

रि—अगले पैर का अगला भाग तथा ज़ेरबन्दका पुछल्ला

या—अगले पैरका पिछला भाग और दूसरे पैर के दोनों किनारे

स—दूसरे पैर की बगल

त—रकाब

च—पेट और पिछले पैर की रान और पिछला किनारा

र—पुट्ठा (पूँछ के पास)

खा—तीसरा पैर और चौथे पैर का अगला किनारा

री—पूँछ।

दूसरा तुग़रा जो कमल की कली के चित्र में है, इसमें स्पष्ट लिखा हैः-"श्री सुदामा जी" इस

के सब अक्षर अलग २ हैं, इसलिये समझाने का प्रयोजन नहीं है। आप स्वयं समझ लीजियेगा।

यत्न करने पर और भी नामादि इसी प्रकार बन सकते हैं। ऊपर जितने प्रकार के नमूने दिखलाये गये हैं इनमें और भी शाखायें निकाली जा सकती हैं। लिपि को अलंकृत करने के लिये सैकड़ों प्रकार निकल सकते हैं। कागज, कपड़े, गोटे डङ्क, झकझके और अभ्रक आदि के अक्षर बनाकर उनमें कई प्रकार की कारीगरी की जा सकती है, जिनके नमूने शीघ्रता के कारण नहीं बनाये जा सके। उनके बनाने की परमप्रिय अभिलाषा मनही में अङ्कित रह गई। इसका खेद है। यदि परमेश्वर की कृपा से अवसर मिला तो फिर कभी, सम्भवतः आगामी वार्षिकाधिवेशन पर प्रस्तुत करनेका प्रयत्न अवश्य करूँगा। यह जो कई प्रकार के नमूने शीघ्रता में तैयार करके दिखलाये जा सके हैं, ऐसे ही चाँदी और सोने के अक्षर बनाकर उनमें विविध रङ्गों के नगीने तथा हीरे और मोती जड़कर देवनागरी लिपि का सच्चा सत्कार किया जा सकता है। यदि हमारे माननीय महाराजाधिराज और राजा रईस तथा लक्ष्मी के लाड़ले लाल इस बन्दनीय देवनागरी पर दया दिखाने की कृपा करें तो सब कुछ हो सकता है। साधारण स्थिति के सज्जन भी जहाँ अनेक आडम्बरोंसे अपने गृहों की शोभा बढ़ाते हैं, वहाँ देवनागरी के स्वर्णाक्षरों और अलंकृताक्षरों से लिखे हुये, मनको पवित्र करने वाले, असत्कर्मों से बचानेवाले, सत्कर्मों में लगाने वाले और लोक परलोक सुधारनेवाले, महात्माओं के शिक्षादायक लोकोपकारी महावाक्यों को भी थोड़ासा स्थान दें, अपने और अपने देश के मङ्गलके लिये बालक बालिकाओं को देवनागरी लिपि की नियमित शिक्षा से अलंकृत करने का यत्न करें, बड़े छोटे चित्रकार और पेन्टर भी इधर ध्यान दें, फिर देख लीजिये कि संसार की सब लिपियाँ सभी बातों में किस प्रकार देवनागरी के सामने झुक २ कर प्रणाम करती हैं और किस प्रकार देवनागरी का महत्व वर्द्धित होता है।

२९
३०
३१
३२
३३
३६
३७
४०
४१
४४
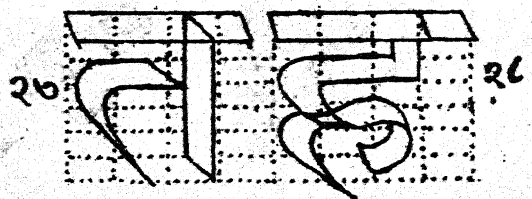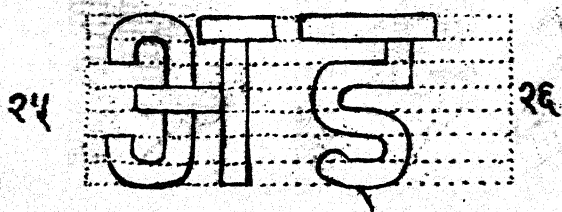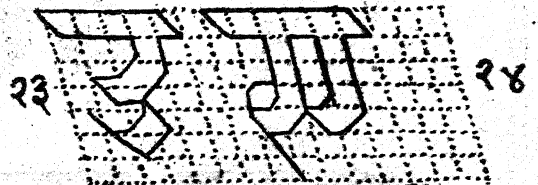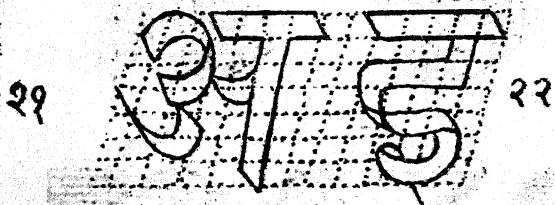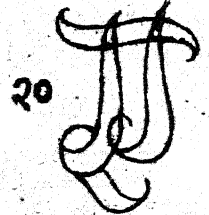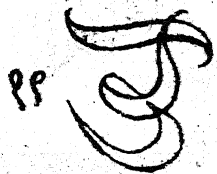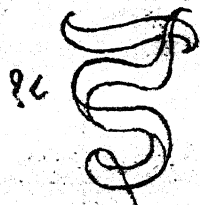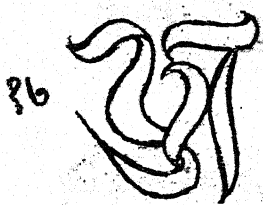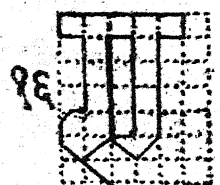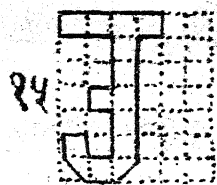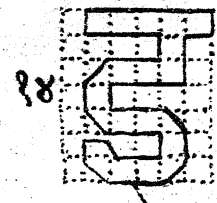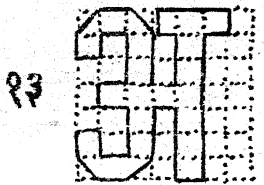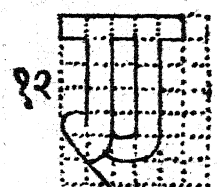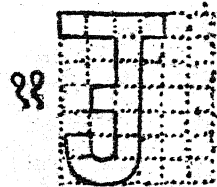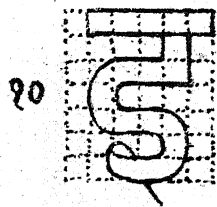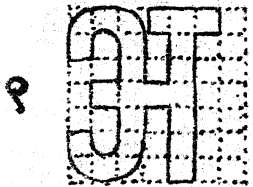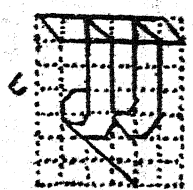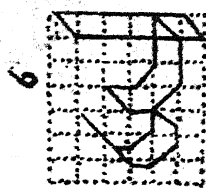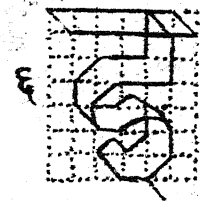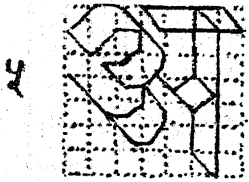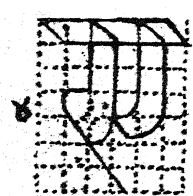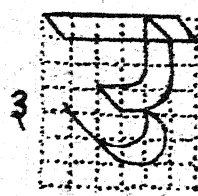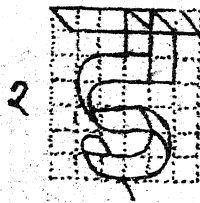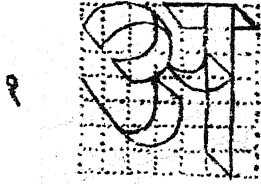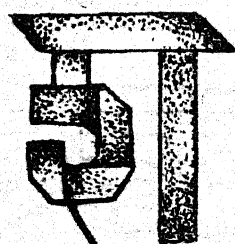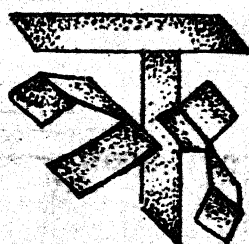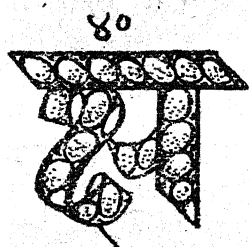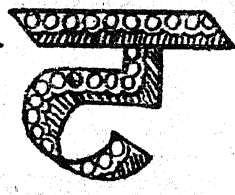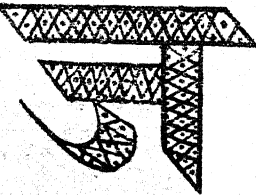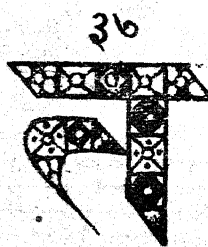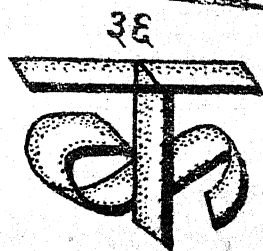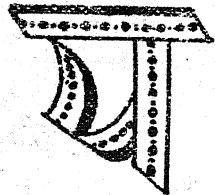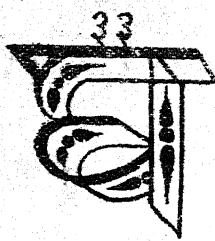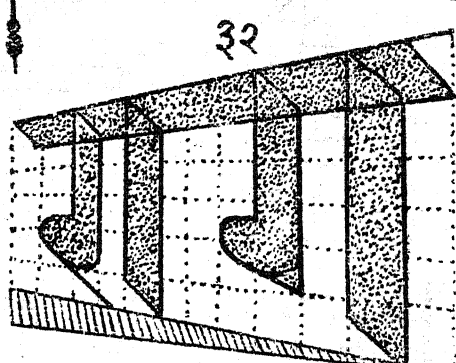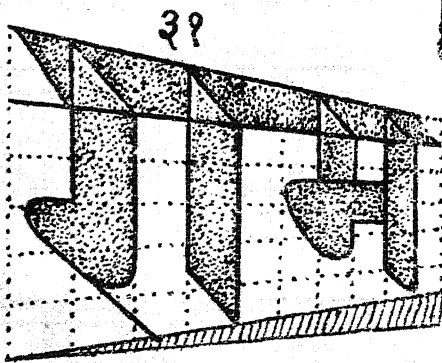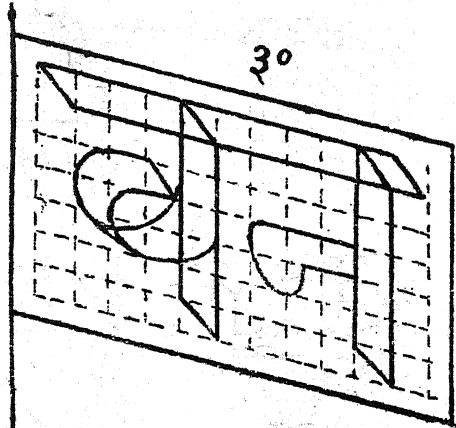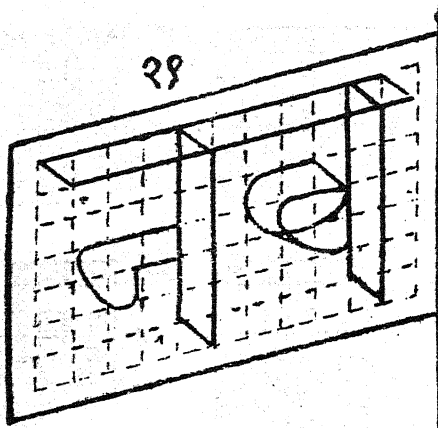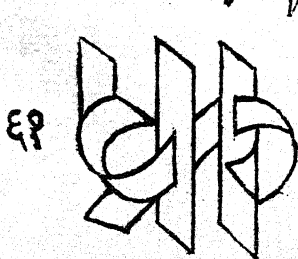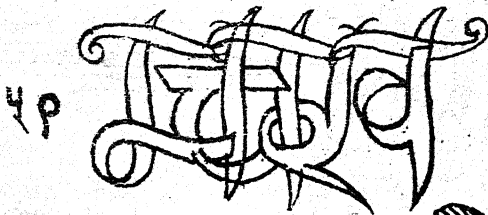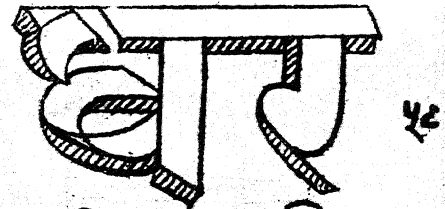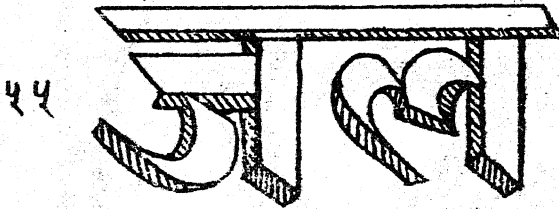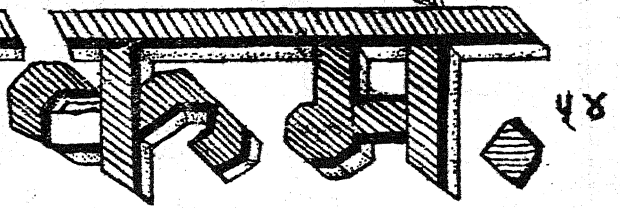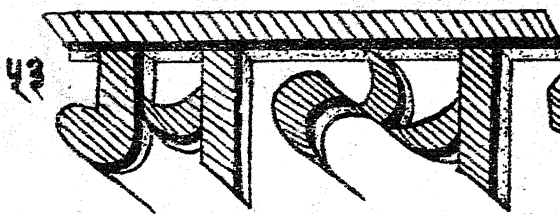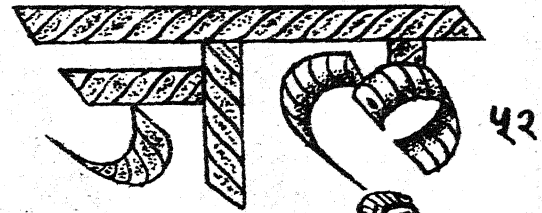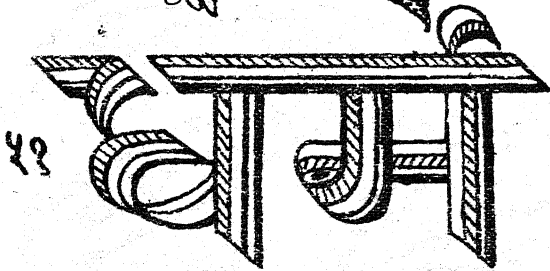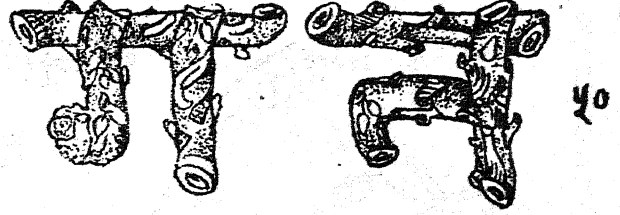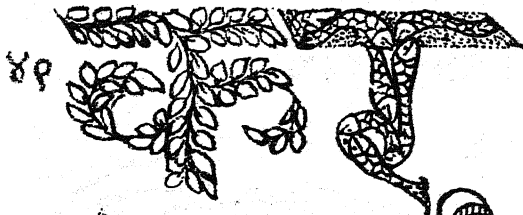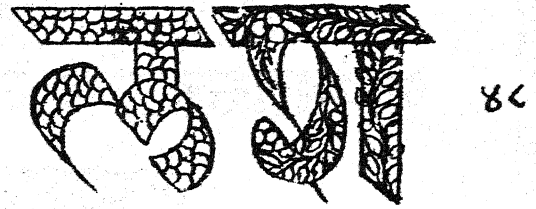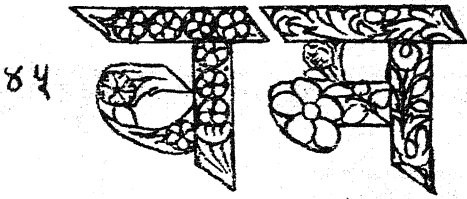
श्री १०८ महाराजाधिराज-
श्रीगंगासिंहजूदेव बहादुर-सिपह दारुल्मुल्क-
रियासत चरखारी
के नाम का चित्र
(६४)
श्रीसुदामाजी।
६५
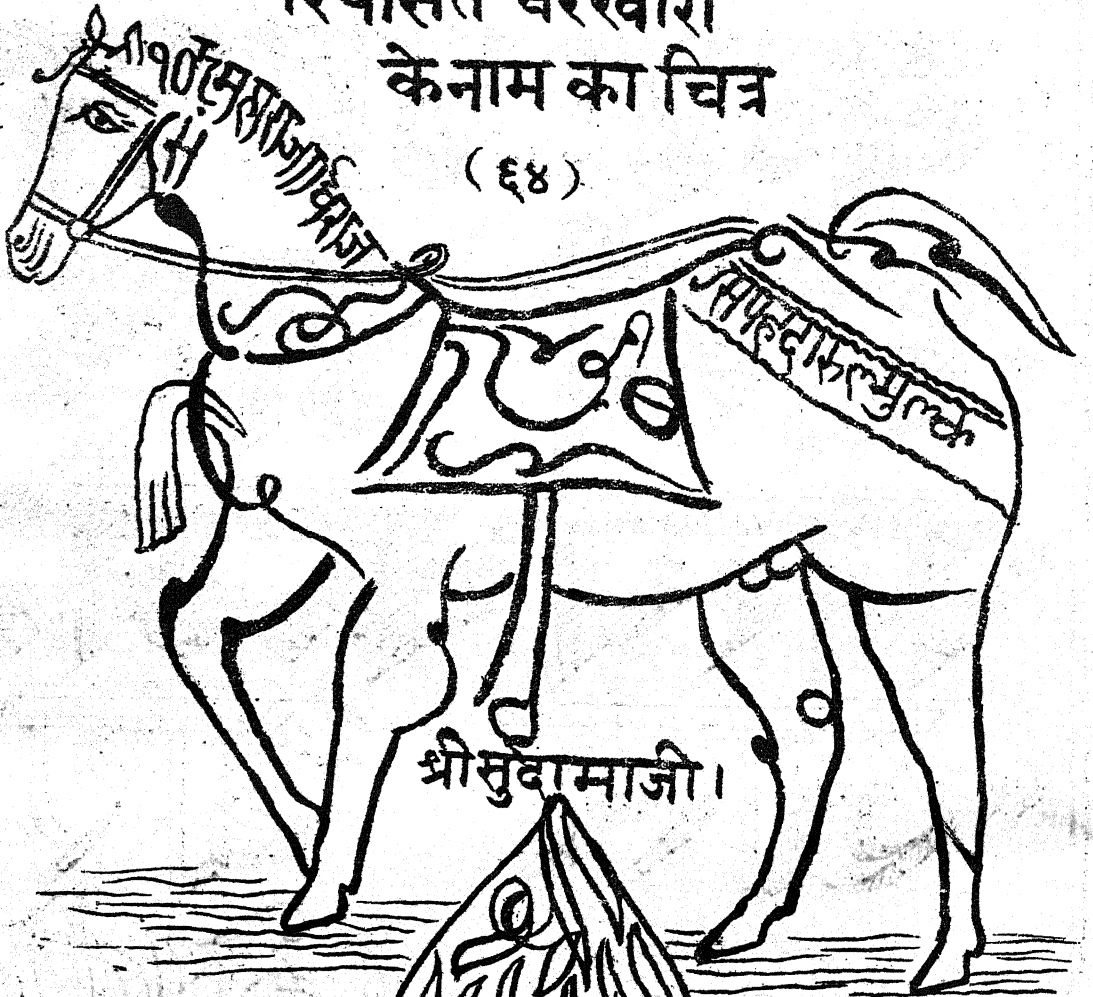
प्रारम्भिक शिक्षा

शिशु-साहित्य

पांचसे सात या आठ वर्षके बालकों के लिये

[लेखक-पंडित सुखराम चौबे (गुणाकर)]

भूमण्डल पर ऐसा कौन होगा, जो प्यारे शिशुओं को देख कर प्रसन्न न हो जाता हो और उनसे दो दो बातें कर प्यार न दर्शाना चाहता हो। देखा जाता है कि बच्चोंके लालन पालन एवं शिक्षा देनेके लिये यदि सबसे अधिक सफलता प्राप्त है, तो एक माता हीको है । इसकी पुष्टिमें स्वर्गवासी, बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी भी यों कहते हैं किः—

'लाल पुत्र कहि चूमि मुख, विविध हँसाय खिलाय
माता सब कछु पुत्रको, सहजहि सकत सिखाय॥"

यह भी जाना गया है कि बच्चोंका चित्त आकर्षित करने और साथही साथ उन्हें ज्ञान देने के लिये माताओं के पास सबसे बड़ा उपाय गाना ही है । दूसरा एक उपाय विचित्र चित्र और खिलौनों के द्वारा खेल खिलाना है। इसके अतिरिक्त एक उपाय और है जो प्रायः किस्से कहानियों से सम्बन्ध रखता है।

बस, माताकी इन्ही सब बातोंका अनुकरण करते हुए बुद्धिमानों ने अपनी कृपामयी लेखनीका प्रयोग किया है।

यह लिखने में मुझे हर्ष होता है, कि उन्होंने अपना अमूल्य समय व्ययकर ऐसे ऐसे खिलौने, खेल-तमाशे, विनोद और वर वाटिकायेँ रची हैं, जिनसे पाठकों एवं शिशुओं को शिक्षामें बहुत कुछ सुख और सुविधा हो रहीहै, पर उनमें मेरे अनुभव के अनुसार कुछ त्रुटियाँ हैं।

पुस्तकें रचनेके पूर्व लेखकों का कर्त्तव्य है, कि वे कृपया इस बातका भली भाँति विचार कर लिया करें, कि जिनके लिये हमें पुस्तकें रचना हैं, वे किस अवस्था के हैं, और उनके अनुभवकी सीमा कितनी है।

प्रसिद्ध इंडियन प्रेससे मुद्रित ऐसी ऐसी पुस्तकें देखनेमें आई हैं जिनके चित्रादिसे बच्चे क्या चच्चे तक लट्टू हो जाते हैं; परन्तु उन पुस्तकों में कहीं कहीं ऐसी बातें पाई जाती हैं, जिनसे शिशु प्रायः अपरिचित ही रहते हैं। यथाः—

"चीना मेरा रूठ-राठ ससुरालको चम्पत होता है।

"गँजेड़ियों को गाँजा पीने का वक्त आनेसे दूसरी बात की सुध नहीं रहती।"

"जय-नगरी के राज भवन में, हुई बिलैया धूत।
वहाँ मज़े से लगी उड़ाने, दूध मलाई घृत॥"

ऐसेही एक पुस्तक में यों हैः—

"अज बकरा कहलाता है।"
"ईगल चिड़ियों का सरदार।"
"वत्स गायका थन हैं पीते।"
"ज्ञ है बुध तारेका नाम।"
"रवि समीप है इसका धाम।"

अब जार्ज प्रिंटिङ्ग प्रेस बनारस से निकली हुई पुस्तकों की बातें देखियेः—

"रावण सा तेरा परिवार।
नाती पोता पूत अगार॥

कुत्तेका वह बच्चा कैसा ।
वफ़ादार वह सच्चा कैसा ॥
छोटी नदी वहाँ बहती है ।
करो काम हमसे कहती है ॥"

मेरे पढ़ने में एक और पुस्तक आई है, जो प्रयाग के नेशनल प्रेसमें छपी है उसमें यहाँ तक ऊँची ऊँची बातें लिख डाली हैं कि:—

"महिमा तेरी अपरम्पार ।
तुझसे गये वेदभी हार ॥
यश, अपयश का तू है दाता ।
रोग शोक भव भय दुख-त्राता ॥
भाग्य भरोसे रहकर कहीं ।
छोड़ो कभी परिश्रम नहीं ॥
परिश्रमी नर सिंह समान ।
उसको दे लक्ष्मी भी मान ॥"

कदाचित् सुहृद्-जन यह समझते होंगे, कि यह दूसरों की ही रचित पुस्तकों के दोष दिखा रहा है । ऐसा नहीं । मैं अपनी बनाई हुई पुस्तकों के भी दोष प्रकाशित करता हूँ, जिन्हें मैंने उस समय बनाया था, जब मैं बहुत बड़ी कक्षाको शिक्षक था । इस अवसर पर यह बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि मैं इस समय शिशुओंका शिक्षक हूँ, और यह भी बतला देना ठीक समझता हूँ कि इस समय मुझे सरकार (मध्यप्रदेश) की ओरसे बच्चा की पुस्तकें बनाने का कुछ काम भी दिया गया है । मैं पहले जिन शब्दों एवं भावोंको जानता था कि बच्चे बिना कठिनाई के समझ जायँगे । वे बातें अब नहीं रहीं क्योंकि शिशु-कक्षा को शिक्षा देते समय मुझे भली भाँति ज्ञात होगया कि पुस्तकों में लिखी हुई बातें और भी सरल करके लिखनी चाहिये थीं । मेरी बनाई पुस्तकों की जो बातें अब मुझेही सदोष जान पड़ती हैं उनमें से कुछ ये हैं:—

"इतनी विनय सुनो भगवान ।
जो विद्या सीखें हम उसमें होवें कुशल महान ॥
ए यों बना फणीका जाते ।
जिसे देख कर लोग डराते ॥
"ज जगदम्बेका यों लिखदो ।" आदि ।

ऊपर लिखी हुई बातों में "चम्पत" "धृत" "घृत" "वफ़ादार" "अज" "ईगल" "वत्स" "रवि "बुध" "महान" "कुशल" "फणी" आदि शब्द और ऐसेही:—

"छोटी नदी वहाँ बहती है ।
करो काम हमसे कहती है ॥"
"यश अपयशका तू है दाता ।
रोग शोक भव-भय दुख-त्राता ॥"

"गँजेड़ियों को गाँजा पीनेका वक्त आनेसे दूसरी बातकी सुध नहीं रहती है" आदि भाव शिशुओं की ज्ञान शक्ति से कहीं उच्च हैं ।

ऐसा प्रतीत होता है कि, उक्त पुस्तकों के रचयिताओंने या तो सरल शब्दों एवं भावोंके खोजने का यथोचित परिश्रम नहीं उठाना चाहा या बच्चों के अर्थ ग्रन्थ रचने के पूर्व उन बातोंका उपयोग करके नहीं देखा । यदि ऐसा किया होता तो कदाचित बतलाये हुए दोष न रहते ।

अभीतक जितनी शिशु-पुस्तकें देखी गई हैं वे सब पाठकोंके हाथों मेंही देने योग्य हैं; नकि शिशुओं के । क्याही अच्छा हो कि उनकी रचना इस ढङ्गकी की जाय जिससे हम उन्हें शिशुओं के हाथमें दे सकें ।

(१) मेरी समझ से एक पुस्तक ऐसी रहे, जिसमें केवल वर्ण और उनके योगसे परिचित शब्द हों अर्थात् जिन शब्दों को बच्चे प्रतिदिन बोला करते हों । ऐसेही परिचित मात्रा युक्त शब्द भी रहें । इसके अतिरिक्त छोटे छोटे वाक्यभी ऐसे लिये जावें, जो उनके नित्य उपयोगमें आतेहों, और जो एक दूसरे से सम्बन्ध रखने वाले होकर शिक्षा प्रद भी हों ।

बहुधा "उ" और "ऊ" की मात्रा-युक्त वाक्य कुछ कुछ यों रक्खे जाँय तो अच्छा हो :—

भाई सुन ! चाकू न छू । तू कहना मान ।

इस दूर रह। वह बहुत तेज़ है। ख़ूब याद रख। नहीं उँगली कट जायगी। आदि।

इस प्रकारकी पुस्तक बच्चों के हाथमें दी जा सकती है।

(२) गीतोंकी एक स्वतन्त्र पुस्तक निर्माण की जाय जिसमें मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, भाई-बहिन का स्नेह तथा अन्य शिक्षा-प्रद मनोहर सचित्र गीत, सरल परिचित भाषा में रक्खे जावें। भाषा और भाव प्रायः ऐसे हों:—

गीत (१)

चित्रः—

दूध पिलाकर झुला रही है।
मा बच्चे को सुला रही है॥
"आरी निँदिया" गाती जाती।
उसकी नींद बुलाती जाती॥
करती मक्खी भिन भिन आकर।
उसे भगाती हाथ हिलाकर॥
उसका जी कुछ ठीक नहीं है।
तौ भी देखो! खड़ी वहीं है॥
कुछ देरी तक बच्चा सोया।
चौंक पड़ा इक दम फिर रोया॥
उठा लिया तब झटसे माने।
लगी प्यारसे दूध पिलाने॥
"राजा बेटा" कहती जाती।
चूम चूम मुंह को गरमाती॥
हिल हिल करके उसे हिलाती।
थपकी दे दे उसे चुपाती।
तबभी बच्चा रोता जाता।
किसी तरह वह नहीं चुपाता॥
बाजा उठा बजाया ज्यों ही।
किया उसे चुप माने त्योंही॥

गीत (२)

लेती थीं मा गोद प्यारसे,
अपना दूध पिलाती थीं।
देख देख खुश मुझे बहुत ही,
मन में खुशी मनाती थीं॥
चूम चूम कर गाल हथेली,
बार बार गरमाती थीं।
बजा बजा चुटकी झट सुस्ती,
मेरी दूर भगाती थीं॥
दे दे ताली ता ता कह कर,
मुझको खूब हँसाती थीं॥ १॥
मलती थीं वे तेल देह में,
काजल आँख लगाती थीं।
करती थीं फिर सिरमें कंघी,
माथे टीका लाती थीं॥
"राजा" "बेटा" "लल्ला" "मुन्ना"
कहकर प्यार जनाती थीं॥ २॥
मुझे सुलाती थीं जब माता,
पलना डाल झुलाती थीं।
"आरी निँदिया" "आरी निँदिया"
यों गाना फिर गाती थीं॥
आती थीं यदि मक्खी मुझ पर,
चुप से उन्हें उड़ाती थीं॥ ३॥
सोकर जब लगता था रोने,
जल्दी दौड़ उठाती थीं।
ले चूमा पुचकार पोंछ मुख,
अपने गले लगाती थीं॥
दे दे थपकी हिल हिल करके,
मा मुझको बहलाती थीं॥ ४॥
होता था बीमार कभी तो,
झट से वैद बुलाती थीं।
तरह तरह की दवा खिलाकर,
चङ्गा मुझे कराती थीं॥
जब तक रोग न जाता था हा!
भूख प्यास बिसराती थीं॥ ५॥
गिर पड़ता था धरती पर झट,
धूला झाड़ उठाती थीं।
"घोड़ा कूदा" "घोड़ा कूदा"
यों कह कर समझाती थीं॥
फूँक फूँक चोटों की पीड़ा,

मेरी जल्द मिटाती थीं ॥ ६ ॥
नहला रोज कुनकुने जलसे,
मेरा मैल छुड़ाती थीं ।
पोंछ देह अंगोछे से फिर,
कपड़े झट पहिनाती थीं ॥
सभी तरह से मेरी मातर,
मुझको सदा रखाती थीं ॥ ७ ॥

गीत (३)

हुआ सबेरा अब मत सोवो ।
कपड़े टाँग हाथ मुँह धोवो ॥
चिड़िया "चें चें" मचा रही हैं ।
ले ले बच्चे नचा रही हैं ॥
"काँव" "काँव" हैं कौवे करते ।
देखो घर पर उड़ते फिरते ॥
बहिन तुम्हारी झाड़ रही है ।
कूड़ा बाहर काढ़ रही है ॥
बाप तुम्हारा मुँह धोता है ।
कहता है तू क्यों सोता है ॥
दरवाजे पर खड़ा भिखारी ।
माँग रहा दे मुट्ठी मा री !
चले काम पर नौकर चाकर ।
काम काज सब घरका कर कर ॥
तुम भी प्यारे मुँह धो डालो ।
दूध-भात मीठा यह खालो ॥
फिर अपनी पुस्तक ले आवो ।
हमें जल्द तुम पाठ सुनावो ॥
पढ़े हुए को लिख भी लेवो ।
लिखकर हमें दिखा भी देवो ॥
वही करोगे जिसे कहूँगी ।
तो मैं अच्छी चीजें दूँगी ॥

(३) खेलों की भी एक अलग पुस्तक रहे और उसमें खेल तथा खेलने की चीज़ों पर संवाद रूप छोटे २ गीत भी रहें। भाषा अति सरल एवं स्वाभाविक हो। जैसे:—

गेंद और डण्डा

गेंद—सुन भाई डंडे तू बात ।
क्या घमण्ड करता दिन रात ॥
अहा ! देख !! मैं कैसी गोल ।
क्या तू ऐसा है सच बोल ॥
डंडा—बहिन गेंद ! तू कहना मान ।
कर मत ऐसी मुझ से सान ॥
मैं हूँ सीधा तू है गोल ।
और कौन गुण तुझ में बोल ॥
गेंद—मैं हूँ नर्म और तू कड़ा ।
मुझे छुये सुख होता बड़ा ॥
डंडा—रखें मुझे सब अपने हाथ ।
छोड़ें तनिक न मेरा साथ ॥
गेंद—मैं लड़कों को खेल खिलाऊँ ।
हार जीत मैं ही बतलाऊँ ॥
डंडा—खेल छोड़ तू छिप छिप जाय ।
ऐसा कहते शर्म न आय ॥
गेंद—छूट हाथ से तू भी गिरे ।
दोष मुझे ही क्योंकर धरे ॥
डंडा—दोनों के बिन बने न खेल ।
रखें आज से हम तुम मेल ।
भाई बहिन आज से मान ।
छोड़ें हम तुम सारी सान ॥

खेल

(१) एक पाँत तुम जल्द बनाव ।
और करें क्या अब बतलाव ?
(२) दायें को तिरछे हो जाव ।
और करें क्या अब बतलाव ?
(३) ऊपर दोनों हाथ उठाव ।
और करें क्या अब बतलाव ?
(४) कंधों पर उनको ले आव ।
और करें क्या अब बतलाव ?
(५) छाते से अब उन्हें छुआव ।
और करें क्या अब बतलाव ?
(६) घुटनों पर उनको झटलाव ।
और करें क्या अब बतलाव ?
(७) पंजों तक बस और बढ़ाव ।
और करें क्या अब बतलाव ?

(८) सीधे खड़े जल्द हो जाव।
और करें क्या अब बतलाव ?
(९) कर प्रणाम कक्षा में जाव।

मेरा घोड़ा

बड़ा तेज़ है मेरा घोड़ा।
छू होता दिखलाते कोड़ा॥
दाना घास नहीं यह खाता।
दूर दूर तक दौड़ लगाता॥
जीन लगाम न मुझ से माँगे।
धीरे चले जल्द भी भागे॥
ज्योंही रोको त्योंही रुकता।
नहीं कभी रस्ते में अड़ता॥
छोड़ देव पर कहीं न भगता।
रस्सी खूँटा इसे न लगता॥
काटै मुझे न मारै लातें।
हैं इसमें सब अच्छी बातें॥
करता हूँ जब कभी सवारी।
होती खुशी मुझे तब भारी॥
इसको कभी न मैं बेचूँगा।
एक और ऐसाही लूँगा॥ आदि।

(४) पदार्थ और चित्रकला की पुस्तक इस ढंग की बनाई जावे, जिसमें पहिले प्रश्नों द्वारा पदार्थ का साधारण वर्णन नीचे लिखे अनुसार लिखा जाय। इसके पश्चात् उसी सम्बन्ध का गीत रक्खा जाय। तदनन्तर यथा सम्भव उसी पदार्थ का चित्र भी खिंचवाया जाय। ऐसा करने से हृदय पटलपर उस विषयके अंकित होने में किसी प्रकार का सन्देह न रह जायगा। यथाः—

आम

देखो! यह आम का पेड़ है। इसमें फल लगे हैं। ये फल भी आम कहलाते हैं। हमने इन्हें खाया है। जब ये कच्चे रहते हैं; तब खट्टे रहते हैं। पर पकने पर मीठे हो जाते हैं। कच्चा आम अमिया या कैरी कहलाता है। कैरी का रङ्ग हरा होता है। जब वह बड़ी हो जाती है, तब आम कहलाने लगती है।

यही आम पकने पर पीला पड़ जाता है। जिसे पका आम कहते हैं। इसमें मीठा रस रहता है। इसी रस को हम बड़ी खुशी से चूसते हैं। चूसने पर केवल गोही और छिलका रह जाता है। जिसे हम फेंक देते हैं। पर गोही हमें फेंकना न चाहिये, क्योंकि इसीसे तो आम का पेड़ उगता है। बरसात में लोग इसे धरती में गाड़ देते हैं। जिससे कुछ दिनों में अंकुर फूट आता है। इसको उखाड़ना ठीक नहीं; क्योंकि यही तो बढ़ते बढ़ते बड़ा पेड़ हो जाता है।

आम का गीत

बड़े कामका इस दुनिया में, पेड़ आम का पाया है।
एक एक हिस्सा उपयोगी, इसका बहुत बनाया है॥
छोटे फल अमियाँ कहलावें, बड़े आम कहलाते हैं।
बड़े बड़े होते ये प्यारे, गोलाकार दिखाते हैं॥
लगे स्वाद बस इनका खट्टा, हमने इनको खाया है।
आदि॥

गीत द्वारा अमियाँ या कैरी का चित्र खिंचवाना।
गोला छोटा एक बनाते।
इसे आम यों कर हम जाते॥
डंठल लगा हरा रँग भरते।
इस प्रकार अमियाँ हम रचते॥
ये गर्मी में जब फलती हैं।
पैसे की तब कई मिलती हैं॥

गीत द्वारा पके आम का चित्र बनवाना।
गोला भारी एक बनाते।
इसे आम यों कर हम जाते॥
डंठल रख पीला रँग भरते।
पका आम ऐसे हम रचते॥
ये गर्मी में जब पकते हैं।
कैरी से महँगे बिकते हैं॥ आदि।

मैंने आम का चित्र गीत गाकर बनाने के लिये बतलाया है, पर विना गीत के भी यह कार्य्य किया जा सकता है।

(५) कहानी और किस्सों की किताब भी अलग हो। उस में इस बात का विचार रक्खा जाय कि कहानियों का मुख्य उद्देश्य उत्तरोत्तर बालकों की कल्पना-शक्ति का बढ़ाना है।

अतः कहानियोंके दो भाग किये जावें। एक भागमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषोंके बाल चरित्र रक्खे जावें; जिन्हें कि बच्चे अपने मा—बापसे सुना करते हैं। दूसरेमें पशु—पक्षियोंका आश्रय लेकर शिक्षा-प्रद एवं विनोदात्मक बातें रहें। यथाः—

शिक्षाप्रद १—एक बच्चेको शालामें पुस्तक पड़ी हुई मिली। वह बड़ी खुशीसे घर ले आया और दौड़कर अपनी माको देने लगा। माने कहा—कि यह तुम्हारी नहीं। तुम इसे गुरुजीको दे आओ। वह जल्दी गया और उन्हें दे आया।

विनोदात्मक २—एक लड़का अपने घर जा रहाथा। उसे देख एक कुत्ता भौंकने लगा। तब लड़केने कहा—भाई! कुत्ते! तू भौंकना छोड़। मैं तेरी तसवीर उतारना चाहता हूँ। वह चुप होगया। थोड़ी देरके पीछे लड़का बोला—मुँह की तसवीर उतरगई। अब पीठ करो। उसकी भी उतारूँ। ज्योंही कुत्तेने पीठकी, त्योंही लड़का लम्बा हुआ।

गीतमें ३—एक गाय खाती थी घास।
कुत्ता आया उसके पास॥
खाने देय न खावे दुष्ट।
भौंक भौंक कर देवे कष्ट॥
यह कह गाय वहाँसे चली।
नहीं चाल यह तेरी भली॥
"पड़ता दुखमें आप अजान।
देता दुख औरोंको आन॥"
आदि

इस कार्य्यमें वेही सज्जन, अच्छी सफलता प्राप्त कर सकेंगे, जो बच्चोंके साथ रह कर उनकी प्रत्येक बात पर सूक्ष्म दृष्टि रक्खेंगे।

एक समयकी बात है, किसीका बच्चा एक बड़े लम्बे चौड़े नलमें घुस गया, और लौटनेमें असमर्थ खब रोने लगा। उसको निकालनेके लिये बहुतसे उपाय किये गये पर सफलता न हुई। तब एक चतुर उसे उसके साथीकी बोलीमें यों बुलाने लगा, कि "अरे! आव गुँइयाँ अपन घोड़ा खेलें।" यह सुन वह ऐसा उत्साहित हुआ, कि बातकी बातमें पीछेका पीछे सकुशल लौट आया। तभी तो कहते हैं—कि, "गूँगेको समझायबो गूँगेकी गति आन।"

यदि सहनाई बजाने वाले को इमली या निब्बू आदि की खटाई दिखलाई जावे तो उसके मुँहमें पानी आजाता है, और फिर वह उसके ठीक ठीक बजानेमें असमर्थसा हो जाता है। ऐसेही बच्चोंकी पुस्तकें विचित्र चित्रोंसे ऐसी सुसज्जित कर बनाई जावें, कि जिन्हें देखते ही वे हाथसे छुड़ा लेना चाहें और कितनाही माँगने पर जिन्हें देनेको उनका जी न हो। किस्से कहानियाँ भी उनमें ऐसी रहें, कि ज्यों ज्यों लड़के उन्हें पढ़ते या सुनते जावें, त्यों त्यों आगे पढ़ने—सुननेको उनका जी ललचाताही जावे।

आपने "खोखा मनीर छड़" और "हाँसी राशी" आदि बँगलाकी पुस्तकें देखीही होंगी, जो बच्चों का चित्त खीचने को चुम्बकका सा प्रभाव रखती हैं। क्या ऐसा कहने का साहस किया जा सकता है, कि हिन्दीमें भी ऐसी अनेक पुस्तकें हैं?

मरहटीके "बालबोध" एवं "आनन्द" पत्र देख किसे आनन्द न होता होगा? जिनका जन्म प्रायः बच्चोंके अर्थ ही हुआ है। क्या ऐसा कोई पत्र अपने यहाँ भी है जिसे तीसरी—चौथी कक्षाके विद्यार्थी पढ़कर लाभ उठा सकें?

अङ्गरेज़ी—भाषाके साहित्यमें घरमें खेलनेवाले खेलोंकी अनेक उपयोगी पुस्तकें पाई जाती हैं। पर हिन्दी जगत अभी तक ऐसी पुस्तकोंसे कदाचित वञ्चितही है।

इटली देश निवासिनी श्रीमती मांडसारी महोदयाके नामसे कमसे कम हमारे अँग्रेज़ी पढ़े लिखे विद्वान सज्जन तो अवश्यही परिचित होंगे। आप, शिशु—शिक्षाके विषयमें आज दिन संसारमें आद-

र्श हो रही हैं। आपकी व्यावहारिक—शिशु—शिक्षा-प्रणाली देखनेकेलिये दूर दूरसे अच्छे अच्छे विद्वान जाते हैं और तदनुरूप अपने यहाँ उस शिक्षाका प्रचार कर लाभ उठाते हैं, पर हमारे यहाँ अभी तक इस विषयमें कोई प्रयत्न हुआसा नहीं दीखता। जब कि इनकी व्यावहारिक-शिशु-शिक्षा-प्रणाली सर्व्व श्रेष्ठ समझी जाती है तो हमारी हिन्दी भाषा में क्यों न उनकी पुस्तकों का अनुवाद किया जाय और उनकी शिक्षण-प्रणाली के अनुसार व्यावहारिक-शिशु-शिक्षा पर पुस्तकें लिखी जायँ।

आपकी व्यावहारिक-शिक्षा-प्रणाली के एक दो उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

छोटे छोटे बच्चों से खान-पान की सामग्री, भोजन के स्थान में मँगाना। उनके द्वारा परसने का काम लेना। खेल के रूप में उनकी आँखों पर पट्टी बाँध कर उनसे कपड़ों की पहिचान तथा वस्तुओं का ज्ञान कराना; आदि।

कहना नहीं होगा, कि हिन्दी भाषा में ऐसी पुस्तकों की नितान्त कमी है। हिन्दी संसार में शिशुओं की शिक्षा के अर्थ लिखी हुई जिन पुस्तकों से सम्प्रति भिन्न भिन्न स्थानों में शिशु-शिक्षा का काम लिया जाता है, उनकी सूची नीचे दी जाती है।

सूची

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम
बाल-विनोद	(प्रायमरी-स्कूल-पाठक)
वर्ण-प्रबोध (सचित्र)	पं० सुखराम चौबे
गीत-प्रबोध	,, ,, ,,
सचित्र अक्षर लिपि	चित्रशाला-प्रेस, पूना
वर्ण-बोध (सचित्र)	इण्डियन प्रेस इलाहाबाद
खिलौना ,,	श्रीयुत् रसिकलाल दत्त
लड़कों का खेल ,,	इंडियन प्रेस इलाहाबाद
खेल-तमासा ,,	,, ,, ,,
शिशु-कक्षा-पुस्तक	(कई पाठकों द्वारा रचित)
बाल-नीति मंजरी	श्रीयुत् बालेश्वर लाल
बाल-वाटिका	,, रामजीदास भार्गव
शिशु-बोधिनी	,, पं० त्रिलोकीचन्द्र द्विवेदी
कविता-विनोद(बाल-हित)	,, ,, रामनरेश त्रिपाठी
हिन्दी-बालबोध	,, ,, द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी
बाल-विनोद	,, ,, रामजीलाल शर्म्मा द्वारासम्पादित
विनोद (बाल-हित)	,, ,, मन्नन द्विवेदी
बाल-विनोद	,, ,, लोचनप्रसाद पांडेय
एकशन सौंग्स	,, ,, रामगरीब चौबे

इस सूची को देख पाठक यह न समझ लें कि बस इतनी हीं पुस्तकें होंगी। नहीं, इस सूची से कहीं अधिक पुस्तकें इस विषय की हैं, पर समयाभाव एवं स्थानाभाव के कारण उनकी सूची नहीं दी गई।

अन्त में सज्जनों से निवेदन है, कि इस विषय पर अब जो पुस्तकें लिखी जायँ उनका अर्थात् शिशु-साहित्य का मुख्य कर्म्म खेल खिलाना हो, पर साथ ही साथ गौण कर्म्म शिशुओं की योग्यतानुसार उनमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आत्मिक शक्तियों का अङ्कुर जमाना भी हो। जो लेखक ऐसा लेख लिखने में असमर्थ हो, वह कदापि लेखनी चलाने का श्रम न उठावे, और न बच्चों के माता-पिता के द्रव्य का अपव्यय ही करे। जहाँ तक हो पुस्तक का मूल्य कम रखने का प्रयत्न किया जावे। प्रायः देखने में आता है कि सचित्र पुस्तकें अधिक मूल्य की रहती हैं। इस लिये स्मरण रहे, कि भानमती की पिटारी की नाईं शिशुओं के लिये एक ही बड़ी पुस्तक न रक्खी जाय। किन्तु प्रत्येक विषय की छोटी छोटी एवं कम मूल्य की अलग अलग पुस्तकें शिशु-शिक्षार्थ पाठकों के ही हाथ में रहें। दूसरे, अच्छा हो, कि बड़े बड़े प्रेसाधिकारी ऐसी शिशु-पुस्तकें थोड़े दामों में छाप, उनके मूल्य कम करने में सहायक हों; और यों प्यारे शिशुओं की शिक्षोन्नति कर परम यश प्राप्त करें।

सामयिक अवस्था

---:*:---

पंजाब में हिन्दी प्रचार

[लेखक—पंडित नृसिंहदत्त शास्त्री]

माननीय सुयोग्य सभापति महोदय! तथा उपस्थित सभ्य महानुभाव!

आज शतशः हिन्दी-साहित्य-मर्म-वेत्ता एवं हिन्दी जगत के महारथी अद्वितीय लेखक वृन्दकी विद्यमानता में मेरे जैसे अल्पज्ञ का कुछ कहना धृष्टता का ही बोधक है। तथापि मुझे पूर्ण आशा है कि आप लोग मेरा हिन्दी-ज्ञान तथा आयु को देख मेरी त्रुटियें क्षमा कर मेरे कतिपय तुच्छ विचारों की ओर दत्त चित्त हो ध्यान देंगे।

इतर प्रान्तीय गुजराती, मराठी, बंगला आदि साहित्य सम्मेलनों के समाचार बहुत दिनों से सुन रहे थे परन्तु आज हमको भी इस परमपवित्र प्रियतमा मातृभाषा हिन्दीके गुण गरिमा के गायन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जिसकी जननी की महिमा वेदों में लिखी है अतएव जिसका नाम सर्वाङ्ग सुन्दर होने से 'संस्कृत भाषा" प्रसिद्ध है।

यद्यपि इसकी अन्य कन्यायें प्राकृत अवांतर रूप बंगला आदिक भी अपने २ प्रान्तों में देदीप्यमान हो रही हैं परन्तु मातृवत् सर्वदेश पूज्य और व्याकरणादि से सुसंस्कृत होने से उसके पश्चात् राष्ट्रभाषा के आसन को अलंकृत करने का गौरव भी इस हिन्दी भाषा को ही मिल सकता है। क्यों कि इसका वर्ण भी सर्वथा जननी देववाणीवत् है जिसका नाम देवनागरी वर्णमाला है और अन्यों का इससे विपरीत तथा इस नागरीके ही अंगभंग से बनता है, इससे अन्य बंगला आदिक पुत्रियें कदापि माता के आसन पर विराजमान नहीं हो सकतीं।

इस सम्मेलन में मेरे लेखका विषय 'पंजाब में हिन्दी प्रचार कैसे होसकता है"। यह विषय स्वर्ण समान विस्तृत हो सकता है यदि लेखक सुयोग्य हो तो? परंच मैंने तो अपना परिचय प्रारंभ में दे दिया है। इस सम्मेलन द्वारा प्रस्तावित यह प्रस्ताव नवीन नहीं है प्रत्युत द्वितीय सम्मेलन में भी उपस्थित किया गया था, इसीसे इसकीअधिक आवश्यकता प्रतीत होती है।

बड़े २ हिन्दी साहित्य गुरुओंका अटल सिद्धांत है कि शुद्ध हिंदी स्वरूप में शीघ्र परिणित होनेवाली भारत की प्रांतिक भाषाओं में से अधिक संस्कृत-शब्द-प्राय यदि कोई है तो केवल एक 'पंजाबी ही है, जिसके रूपांतर लेख और बोल चालमें सिंधी, टाकरी, गुरुमुखी, काश्मीरी, मारवाड़ी, पश्चिमी आदिसे व्यवहार होता है।

कई भोले भाले दूर देशी हिंदी भक्त यही समझने लग पड़े हैं कि जैसे गुजरात देश भरमें गुजराती बंगालमें बंगला आदिक सब भांति व्यवहार में आती हैं वैसे ही सीमांत पंजाब भरमें गुरुमुखी अक्षर और अमृतसरी ठेठ पंजाबी भाषा ही व्यवहृत होती है। परन्तु वह भली भाँति जानलें कि बिना गुरू नानक साहिब की शिष्य मंडली के अन्य कोई भी इसे व्यवहार में नहीं लाता, क्योंकि प्रायः द्विज मात्र नागरी वा उर्दू वा मुँडे आदि कोही लिखते पढ़ते हैं। रहे शूद्र जोअधिक तर जाट जिमींदार सिक्ख हैं वेही ग्रामीण और नागरिक

सिक्ख मात्र धर्म ग्रंथों के अवलोकन में गुरुमुखी लिखते पढ़ते हैं, परंतु व्यवहार में वे भी मुंडे आदिही लिखते हैं।

पंजाबी भाषा की तो यह दशा है कि ग्राम २ नगर २ की सर्वतः भिन्न भाषा है किंबहुना नगर से कोस भर की दूरी में ही भाषाका परिवर्त्तन हो जाताहै विशेष कर सीमांत प्रदेश और मुसलमान मात्रकी;क्योंकि ये लोग उर्दू वा पर्सियन और अन्य अपने २ प्रांतादर तथा भाषा से ही लौकिक कर्म करते हैं।

इससे हिंदी नागरी को कुछ बाधा भी नहीं पहुँच सकती। प्रत्युत सहायता ही मिलेगी,क्योंकि उर्दू के बहिष्कार यज्ञ में जैसी दीक्षा हिंदी ने ली है वैसे ही यह भी दीक्षित है जिस के प्रत्यक्ष प्रमाण महाराजा पटियाला नरेश हैं जिनकी आज्ञासे राजधानी भरमें उर्दू के स्थान में गुरुमुखी नियत होगई है।

एवं पंजाब गवर्नमेण्ट भी इनकी अधिक प्रार्थनाओं पर जो सिक्ख एजुकेशन कानफ्रेंस में बड़े२ सिक्ख राजा महाराजा तालुकेदार रईस और ग्रेजुएट लोगों द्वारा की जाती हैं (जैसा कि अभी दशहरे पर फ़िरोज़पुर में हुई है) सभी प्रकार के सरकारी पत्रोंपर गुरुमुखी बढ़ा रही है। और पंजाब युनिवर्सिटी ने भी विद्वान्, बुद्धिमान्, ज्ञानी नाम की तीन परीक्षायें नियत कर ओरियंटल कालेज लाहौर में संस्कृत की प्राज्ञ-विशारद-शास्त्री वा अरबी की मौलवी-मौलवी आलम-मौलवी फ़ाजल, फ़ारसी की मुनशी-मुनशी आलम-मुनशी फ़ाजल के समान पंजाबी प्रावेशंसी-हाई प्रोवेशंसी और ओनर पदवी देकर तथा बिना शुल्क के पढ़ाकर इस भाषा का गौरव बढ़ाया है।

इस प्रदेश में हिंदी और नागरी प्रचारिणी मुख्य२ सभाएँ हिंदू सभा-सनातन धर्मसभा, पंजाब धर्म मंडल, उपदेशक मंडल. जैन सभा, ब्राह्मण सभा. आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि कही हैं जिनके उद्देश और मंतव्यों की स्वीकृति तो अधिवेशनों पर होजाती है परंच परिणित रूपमें कदापि दृष्टिगोचर नहीं होती। उदाहरण में इन के समाचार पत्र पुस्तक—और विज्ञापनों को देखिये जिन में नागरी का लेशमात्र नहीं औरवक्तृता की यह दशा है कि जिस का नाम संस्कार भीनहीं हो सक्ता।हाँ मिश्रित कहलाने के योग्य हैं। पंजाबी नायकों के व्याख्यान बंगाली महाराष्ट्री नायकों के समान मातृभाषा में नहीं होते किन्तु अंग्रेजी वा उर्दू में ही होते हैं जैसा कि तृतीय पंजाब ब्राह्मण हिंदू महासभा अमृतसर की स्वागतकारिणी सभा और महासभा के प्रधानों की तथा द्वितीय ब्राह्मण महासभा पंजाब अमृतसर के सभापति पंडित महाशय की अंग्रेजी में ही स्पीचें पढ़ी गई थीं। परंतु इसी ब्राह्मण महासभा के प्रथमाधिवेशन लाहौर के सभापति श्रीमान् महाराजा बहादुर दरभंगा ने मैथिल होकर भी हिंदी भाषा में ही वक्तृता पढ़ी। हम नहीं समझते कि पंजाबी अगुआ महाशय हिन्दी में पढ़ कर सुनाने से कुछ क्षति समझते हैं।

पंजाब में हिंदी प्रचार की सुगमता तभी हो सकती है जबकि हिंदी साहित्यवेत्ता एक मत हो पहिले केवल देवनागरी लिपि काही प्रचार करें पंजाब देशीय निखिल भाषाओं को इन्हीं अक्षरों में लिखने लिखाने का प्रयत्न करें एवं जब नागरी अक्षरों में ही उर्दू, गुरुमुखी सिंधी, काश्मीरी, पर्वती, और सीमांत प्रदेशी बोलियाँ लिखी पढ़ी जायँगी तब शनैः शनैः इनकी भाषाओं का भी संशोधन हो जायगा और कालांतर में ये शुद्ध हिन्दी कहला सकेंगी।

प्रार्थना करने पर गवर्नमेण्ट के सभी कार्यपत्र और देशी राजधानियों के सरकारी कार्य तथा व्यवहारियों के लेख और सब भाँति के पत्र व्यवहार यदि नागरी लिपि में ही हुआ करें चाहे उनकी भाषा शुद्ध हिंदी न भी हो;तो भी हिंदी भाषा की अवश्य उन्नति संभव है। और लिखे पढ़े लोग अपनी बोल चाल की भाषा को परिष्कृत

करदें तो अनायास हिन्दी की उन्नति हो सकती है।

समाचार पत्रों की भाषा ऐसी लिखी होकि जिस में सरल पद और अर्थों की योजना की जाय किंतु समास बहुल क्लिष्ट द्वित्वप्राय और गूढ़ार्थ शब्द माला नहो और छोटे २ ट्रैक्टों के वितरण करने के लिये ट्रैक्ट सोसाइटियाँ बनाई जायँ जिन ट्रैक्टों के नाम बालशिक्षा-सोपान बाल मनोरंजक आदि हों और लेख शैली ऐसी हो कि प्रथम द्वितीय भागों में केवल स्वरांत शब्दों काही विन्यास हो तदनन्तर तृतीय चतुर्थ भागोंमें द्वयक्षर त्र्यक्षर द्वित्यों का समावेश किया जाय इससे आगे चाहे जटिल वर्णमाला हो, परंच पंचनद में प्रसिद्ध सरल शब्दों से ही हिंदी भाषा में नीति विषय तथा दिन चर्या और धर्म-शिक्षा संबन्धी मनोरंजक कथोपकथन रूप आख्यायिका हों और सचित्र होने पर भी पुस्तक के पृष्ट बीससे अधिक न हों, उदारहण प्राचीन पुराण इतिहासों सेही लिये जायं, न कि आधुनिक प्रचलित उपन्यासोंसे, इससे स्वतःही बालकों के हृदय में हिन्दी भाषाके द्वारा संस्कृत पढ़ने में रुचि हो जायगी। शब्द भी प्रायः संस्कृत के ही अपभ्रंश हों, ऐसा न हो कि 'चौबेजी गये छबे होने बन गये दुबे, की कहावत चरितार्थ हो जाय और हिन्दी भाषा को विस्तृत करने की कामनासे सब भाँति के अरबी फारसी उर्दू अंग्रेजी और अप्रसिद्ध२ स्वग्रामीण शब्दोंकी भरमार कर इसे एक विलक्षण भाषा बनाकर संस्कृत को ही रसातल में ढकेलने लग जाँय। सच पूछो तो हिन्दी संसारमें आधुनिक गद्यपद्य रचना प्रवीण कई एक खड़ी बोली और खिचड़ी लेख ग्रंथों के विधाता कालिदास बाण भट्ट मन्य—ऐसे ही विचारों को दृढ़ करते हुये संस्कृत माता के गले में कुठाराघात कर रहे हैं। स्थाली पुलाकन्याय से इसका एकही उदाहरण देखियेगा, कि एक 'मिश्रबंधुविनोद, नामक पुस्तक में, जिसके लेखक पं०शुकदेव विहारी मिश्र आदि तीन भाई हैं, स्पष्ट लिखा है कि—

"कोई आवश्यकता नहीं है कि हम (हिन्दी प्रचारक) हिन्दी गद्यमें भी शब्दोंको शुद्ध संस्कृत रूपही व्यवहृत करें, संस्कृत शब्दों की रोजाना बोल चालमें प्रचलित रूप हिन्दी में क्यों न लिखे जाँय, और एकही शब्द को कई तरह लिखने में कौनसी हानि हुई जाती है जैसे वेष-भेष-बेष-भेस-बेख-भेख—क्षत्रिय—क्षत्री,छत्री आदिक, और हिन्दी में इन सबका बेधड़क व्यवहार होता है और होना चाहिये कोई आवश्यकता नहीं कि इनमें से कोई एक रूप अटल मानलिया जाय, हिन्दी में शुद्ध संस्कृत शब्दोंके प्रयोगों पर जोर देना वैसा ही समझा जायगा जैसे कोई अंग्रेजी में लैटिन शब्द लिखने का आग्रह करे,, इत्यादि—और सुनिये एक हिन्दी विज्ञोंकी 'वर्ण विचार समिति, स्थापित है जो कई वर्षोंसे नागरी वर्णमाला की त्रुटियें दूर करने में लगी हुई है। अहह! कैसे शोक की बात है कि जिस देवनागरी वर्णमाला के निदान भगवान् शंकर जी और ब्रह्मादिक देवता हुये और जिससे ही संसार भरकी लिपियँ उत्पन्न हुईं तथा जिस में वेद स्मृति दर्शनपुराण इतिहास आदिक लिखे गये आज उस संस्कृत लिपि की त्रुटियें निकालने के लिये प्राकृत जनों की समितियें नियत हुई हैं? हा कष्ट! जिस सभाने व-और ब-में से ब-को निकालने का बावेला मचाया और जो-ऋ-ॠ-लृ-ॡ—को निर्मूल करने की चेष्टा में लगी है, तथा चंद्रबिन्दु—अनुनासिक—और अनुस्वार आदि पर विलक्षण मीमांसा कर रही है, और ध्वनियों पर शब्दोंका समावेश करना चाहती है, जिससे स्पष्ट हिन्दीको संस्कृत की ओर से पराङ्मुखकर एक मात्र फारसी अरबी और इंगलिश आदि में ही घुसेड़ना चाहती है। परन्तु वह भली भाँति समझले कि नागरी संस्कृत मूलक है अतएव इसके अक्षरोंका त्रिकालमें भी न्यूनाधिक होना असंभव है क्योंकि इस पर भगवान् शंभुकी आज्ञा स्पष्ट पाणिनिजी ने शिक्षा में प्रतिपादन की है—यथा

"त्रिषष्टिश्चतुषष्टिर्वा वर्णाःशंभुमते मताः।
प्राकृते संस्कृतेवापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा।"
अर्थात् शिवजीके मतमें त्रैसठ वा चौंसठ वर्ण देव नागरी के हैं यह वर्णस्वयमेव स्वयंभू प्रोक्त होनेसे संस्कृत में और प्राकृत में एकसे ही माने जाते हैं। उत्पन्न होने पर जो प्रकृति-स्वभाव से बोली जाय उसे प्राकृत मातृ भाषा कहते हैं। इससे हिन्दी ही प्राकृत कहला सक्ती है और बंगला गुजराती आदि इसी के ही असंस्कृत रूप हैं। त्रैसठ वर्ण ये हैं—अ—इ—उ—ऋ—के ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत के तीन २ भेदसे बारह, और लृके ह्रस्व, प्लुत रूपसे दो २ और ए-ऐ-ओ-औ के दीर्घ, प्लुत भेदसे दो २ इससे १२-२-८ के योग से २२ स्वर हुये। और कवर्ग-चवर्ग—टवर्ग-तवर्ग-पवर्ग ये पच्चीस स्पर्श, चार अंतस्थ, चार ऊष्म विसर्ग, जिह्वा मूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार, और चार यम हैं, यह सोलह हैं, तथा उक्त २२, २५ और १६ के योगसे ६३ हैं। परंच किसी आचार्य के मत से लृकार के दीर्घ भी होने पर ६४ वर्ण नागरी की वर्णमाला के माने गयेहैं। यह संख्या वैदिक है इससे जब तक पृथ्वी पर वैदिक धर्म का डंका बजता रहेगा यह संख्या निश्चल रहेगी। यदि कोई इस में हस्तात्क्षेप करेगा तो उसका मत संस्कृत के विद्वान् अप्रामाणिक समझेंगे और वह निर्मूल सिद्धांत शीघ्र रसातल शायी हो जायगा।

पंजाब में हिन्दी प्रचार के शीघ्र होनेका सुगम मार्ग यह है कि सम्मेलन पंजाब यूनिवर्सिटी द्वारा गुरुमुखी की परीक्षा-पदवियों के समान हिन्दी की भी आनर परीक्षा और तीनों की पदवियों को तथा ओरियंटल कालेज लाहौर में हिन्दी अध्यापकों को नियत करादे और घोषणा करादे कि पंजाबी टीचर विद्वान्—बुद्धिमान्-ज्ञानीके समान हिन्दी शिक्षक भी हिन्दी परीक्षोतीर्ण ही हों!

स्कूलों में ऐसी पुस्तकें रखायें कि जिनकी भाषा एक देशी न हो जैसी कि वर्तमान में है। प्रत्युत पंजाब देशी हिन्दी कवीश्वर श्रीरत्नहरीजी हरिदयालजी आदि के रामललामगीत वैराग्य शतक आदिक हों। न कि विहारी, युक्त प्रदेशी और व्रज भाषाओं की भरमार हो। अन्तमें मैं आप लोगों से कुछ अनुचित प्रलाप करने की क्षमा चाहता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि भगवान् इस सम्मेलन की वृद्धि करे॥

हिन्दी-भाषा सम्बन्धी विवाद-ग्रस्त प्रश्न

——:o:——

[लेखक—पंडित रघुवरप्रसाद द्विवेदी]

(१) प्रस्तावना

भाषा किस प्रकार की होनी चाहिये, उसमें किस प्रकार के शब्दों का उपयोग होना या न होना चाहिये आदि अनेक प्रश्नों पर नागरी-प्रेमियों ही के बीच में विचित्र मत-भेद पाया जाता है, अन्य लोगों के विषय में तो कहना ही क्या है। अधिकांश महाशयों का मत है कि साधारण बोल चाल की भाषा ही अच्छी होती है, इसलिये कि क्या अपढ़ और क्या कुपढ़ और क्या पढ़े लिखे, सभी उसे समझ तथा पढ़ लिख सकते हैं। वे कहते हैं कि जब हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बना देना हमें अभीष्ट है तो उसे कृत्रिम रीति से जटिल एवं क्लिष्ट बना देना उचित नहीं है। ऐसा करने से हमारा उद्देश्य कदापि सफल न होगा।

(२) भाषा कितनी सरल होनी चाहिये

इस कथन को तो प्रायः सभी समझदार भाषा-प्रेमी स्वीकार करेंगे, पर यह प्रश्न अवश्य छिड़ेगा कि साधारण बोल चाल की भाषा से कौन सा अर्थ ग्रहण किया जाना चाहिये। क्या इसका यह अर्थ है कि ग्रामीण पुरुष तथा अशिक्षित स्त्रियाँ या नौकर चाकर जैसी बोली बोला करते हैं वही साधारण बोल चाल की भाषा मानी जाय और उसी का व्यवहार शिक्षित सज्जन परस्पर सम्भाषण तथा ग्रन्थ-रचना में करने लगें? अथवा यह कि शिष्ट एवं शिक्षित समाज में, सामयिक तथा पुस्तकीय साहित्य में और साधारण रीति से पत्रादि लिखने के कार्य्य में जिस भाषा का उपयोग सामान्य रीति से होता है वही बोल चाल की भाषा समझी जाय?

(३) भाषाकी सरलता और राष्ट्रीयता

इसमें तो सन्देह नहीं कि साधारण बोल चाल की भाषाके पक्षपाती सज्जनों का मत यह तो हो ही नहीं सका कि जिस स्थान में अथवा प्रान्त में जो बोली प्रचलित है वही साधारण बोल चाल की भाषा मान ली जाय। ऐसा करने से हिन्दी असंख्य रूपिणी भाषा बन जायगी और राष्ट्र-भाषा बनने के बदले प्रान्त भाषा भी न बन सकेगी। ऐसे तो सूरसेनी, बुन्देलखन्डी, मारवाड़ी, ब्रज-भाषा, अन्तर्वेदी, भुजपुरी, छत्तीस गढ़ी आदि उसके रूप माने ही गये हैं; पर इन रूपों के भी अनेक उपरूप हैं यहाँ तक कि थोड़े २ अन्तर पर बोली बदलती जाती है। कहावत प्रसिद्ध है.—

दश बिगहापर पानी
बदले दस कोसौ पर बानी

ऐसी दशामें तो साधारण बोल चाल की भाषा का कोई निश्चित रूप हो ही नहीं सकता। दस २ कोसके अन्तर पर जैसी बोली बोली जाती है उसमें यदि समाचार पत्र निकलें तथा ग्रन्थ लिखे जायँ तो हमारा हिन्दी-भाषा-भाषी देश खासा बाबुल बन जाय। फिर तो एक नागरी प्रचारिणी सभा के बदले इन सभाओं की संख्या अपरमित हो जाय और न जाने कितनी व्याकरण-पुस्तकें लिखनी पड़ें। फिर तो अन्य भाषा-भाषी महाशय इस बहु रूपिणी भाषा के सीखने का साहस ही न कर सकें। इससे तो स्पष्ट है कि साधारण बोल चाल की भाषा से किसी स्थानीय

बोली का अर्थ नहीं है। राष्ट्र भाषा का गौरव पाने वाली भाषा न तो स्थानीय बोली हो सकती, न उसमें एक देशीय शब्द ही ग्रहण किये जा सकते और न उसका व्याकरण ही किसी स्थानीय बोली के नियमों पर से संगठित हो सकता है। परलोक वासी म० पण्डित सुधाकर द्विवेदी की राम कहानी का बनारसी शब्द समूह इस भाषा में स्थान नहीं पा सकता। और न विहारी लिंग प्रयोग ही सर्वमान्य हो सकता है।

(४) साधु भाषा

यह तो सभी बुद्धिमान चाहेंगे कि जो भाषा राष्ट्र-भाषा मानी जाय वह संभवतः अत्यन्त सरल सुबोध और सुगाठ्य हो और उसके व्याकरण के नियम तथा शब्दार्थ सामान्य हों। जब तक हमें निरक्षरों से सम्भाषण करने की आवश्यकता है तब तक हम चाहें तो घरू तौर से उन्हीं की बोलियों का उपयोग करते रहें, पर अपने सामाजिक व्यवहार में अपने सामयिक अथवा ग्रान्थिक साहित्य में तथा पत्र व्यवहार एवं वक्तृताओं में हमें किसी एक सर्वदेशीय एवं सामान्य भाषा का ही व्यवहार करना उचित है। इसे हम साधु भाषा कह सकते हैं। सभ्य संसार में सर्वत्र ही व्यवस्था है। एक ही देश के भिन्न २ भागों में चाहे एक ही शब्द का उच्चारण भिन्न २ प्रकार से किया जाय; पर लिखने में वह एक ही प्रकार से लिखा जाता है। इसी प्रकार चाहे बोल चाल की भाषा में कुछ विभिन्नता हो; पर साहित्य की भाषा में समानता ही रहा करती है। हाँ लेखन-शैली में व्यक्तिगतविभिन्नता एवं विशेषता अवश्य रहती है। भाषा की यह समानता उसकी परिपक्वता एवं विकाशका चिन्ह है और तद्भाषा-भाषी जाति की सभ्यता का प्रमाण है। जैसे २ सभ्यता का विकाश होता और जनता में विद्या का अधिकाधिक प्रचार बढ़ता है वैसे २ इस साधु-भाषा तथा साहित्य की सृष्टि होती है, वह एक रूप में देश-व्यापक बन जाती है।

(५) भाषा-बंधन

यद्यपि सभ्यता की सम्यक् वृद्धि होने पर भाषा भी परिपक्व एवं परिमार्जित रूप धारण करती है तथापि उसमें समय २ पर परिवर्तन होते रहना एक स्वाभाविक नियम है। इस परिवर्तनशील संसार में, विकाश-नियमों के आधिपत्य में, परिवर्तन होना सजीवता स्वतंत्रता एवं उन्नतिशीलता का चिन्ह है। जिस भाषा में परिवर्तन होना बन्द हुआ, व्याकरण-नियमों से जो शृङ्खला बद्ध हो गयी उसके लिये मानो विकाश-मार्गही अवरुद्ध हो गया। फिर कैसे संभव है कि परिवर्तन-शील जन समाज का कार्य्य उससे निकल सके? सब प्रकार की उन्नतियों के अनुरूप जब उसमें नये २ आवश्यक शब्दों वा मुहाविरों का समावेश असम्भव हो जाता है तो वह जीती-जागती सर्व्व साधारण की भाषा नहीं रह सकती। अतएव यह परमावश्यक बात है कि भाषामें सामान्यता आने पर भी, उसका एक सर्व्वदेशीय निश्चित रूप हो जाने पर भी उसमें समयानुकूल परिवर्तन होते रहने का अवकाश रहना ही चाहिये।

(६) पद्य की भाषा

हमारा यह सब वक्तव्य विशेषतः गद्य से सम्बन्ध रखता है, पर जिस तरह गद्य के विषय में कई विवाद-ग्रस्त प्रश्न उठा करते हैं उसी तरह पद्य के विषय में भी बहुमत पाया जाता है। साम्प्रत पद्य की भाषा का रूप क्या होना चाहिये इस विषय में हिन्दी प्रेमी दो दलोंमें विभक्त हैं। इन दलों का नाम रख लेना यहाँ उचित दीखता है। एक को हम (१) भिन्न-भाषा-समर्थक दल कहेंगे और दूसरे को (२) समान्य भाषा समर्थक दल। पहले दल में वे सब हिन्दी प्रेमी सम्मिलित हैं जो प्राचीन कवियों के समान पद्य की भाषा भिन्न ही रखना उचित समझते हैं। इनका कथन है कि प्राचीन कवियों की रचनाओं में जो लालित्य है वह आजकल की खड़ी बोली की कवितामें स्वप्नमें

भी नहीं पाया जाता और जब लालित्य ही न रहा तो फिर इन रचनाओं को कविता कहना ही व्यर्थ है, हाँ, तुकबन्दियाँ कहला सकती हैं। सामान्य भाषा-समर्थक दल के लोग जिनकी संख्या बढ़ती ही जाती है इस प्रयत्न में संलग्न हैं कि गद्य और पद्य, दोनों की भाषा एकसी रक्खी जाय । इस दल में कदाचित् उतने अधिक हिन्दी-प्रेमी सम्मिलित नहीं हुए जितने प्रथम दल में पाये जाते हैं। तथापि उसमें अनेक प्रतिभा-सम्पन्न कवि देखने में आने लगे हैं। इस दल के अनुयायी गण सारे सामयिक साहित्य करतल-गत किये बैठे हैं और श्रीयुत मैथिली शरण गुप्त प्रभृति दो चार महानुभावों ने स्फुट कविता के अतिरिक्त कुछ बृहत् काव्य भी रचे हैं और यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि खड़ी बोली की कविता भी लालित्य-शून्य नहीं होती।

(७) खड़ी बोली की प्राचीनता

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में खड़ी बोली की कविता कोई बिलकुल नयी बात नहीं है। लावनी छन्द खड़ी बोली ही में लिखा जाता था। कई साधु महात्माओं ने भी अपने पद इसी भाषा में रचे हैं। उनमें कितना लालित्य है सो तो सभी पाठकों को विदित है। बात तो यह है कि हमारे साहित्य में खड़ी बोली की कविता बहुत पुराने समय से होती आई है, पर वह फुटकर ही अधिक पायी जाती है, बड़े २ कवियों ने अपनी चमत्कारिक रचनायें ब्रजभाषा आदि में की हैं । अब उनकी रचनाओं में जो लालित्य है वह उनकी अनन्त प्रतिभाका फल है अथवा केवल उस भाषा का; सो विज्ञ पाठक स्वयं देख सकते हैं।

(८) खड़ी बोली की उपयुक्तता एवं अनुपयुक्तता ।

आज कल खड़ी बोली में कविता करने के पक्षपाती यह चाहते हैं कि अब जब गद्य का उदय हो चुका है और वह उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है तो भाषा की एकताके ख़्याल से खड़ी बोली की कविताही उपादेय है। गद्य और पद्यकी भाषा भिन्न होनेसे हिन्दी के नये विद्यार्थियों को विशेष कठिनाई पड़ती है जिससे वे गद्य का सम्यक् अध्ययन कर लेने पर भी रामायण आदि काव्य ग्रन्थों के समझने में असमर्थ होते हैं । उन्हें इन ग्रन्थोंके रसास्वादन की क्षमता प्राप्त करने के पूर्व एक अलगही व्याकरण सीखने की आवश्यकता पड़ती है। यदि गद्य और पद्य भाषा एक ही होती जैसी अंग्रेज़ी साहित्यमें तथा संस्कृत में पाई जाती है तो यह व्यर्थ का परिश्रम बचता।

इस कथन में अवश्य ही कुछ थोड़ी बहुत सत्यता है; पर हमारा प्रश्न है कि जीवित उन्नतिशील भाषाओं में वह कौनसी भाषा है जिसका रूप गद्य और पद्यमें बिलकुल एकसा है? जिससे एकही व्याकरण पढ़लेने से समग्र साहित्य समझलेनेकी शक्ति आजाती है ? अंग्रेज़ी ही लीजिये, क्या आधुनिक अंग्रेज़ी के व्याकरण में पारङ्गत होने पर भी किसी विद्यार्थी को गोवर (Gower) लेङ्गलेंड (Langland) चासर (Chaucer) स्पेन्सर (Spenser) शेक्सपियर (Shakespeare) आदि कवियोंकी रचनायें सुबोध हो जाती हैं? कोई भी अंग्रेज़ी साहित्य-ज्ञाता पूछने पर यही उत्तर देगा कि प्राचीन चासर कवि और आधुनिक टेनिसन, वर्डसवर्थ प्रभृति कवियों की अंग्रेज़ी भाषामें इतना अन्तर है कि पिछले कवियों के ग्रंथोंको जिसने पूर्ण रीति से हस्तामलक कर लिया है वह भी चासर की प्रसिद्ध कविता, केन्टरबरीटेल्स को यदि सहसा समझना चाहे तो भाषा की विभिन्नता के कारण नहीं समझ सका जब तक कि उस समय की अँग्रेज़ीका व्याकरण पहिले न सीखलेवे चासरसे बहुत पीछे के कवि शेक्सपियर के नाटकों के टीकाकार बहुधा अपनी भूमिका में तत्कालीन अँग्रेज़ी व्याकरणके नियमों का समावेश कर दिया करते हैं जिन्हें समझ लेनेपर पाठके समझने में सुगमता हो जाती है।

यह तो हुआ पद्य का हाल; गद्य भी इस झंझटसे नहीं बचा। बेकन, सरटामसमारो, मिल्टन आदि लेखकों की गद्य—भाषा तथा सन् १६११ में अनुवादित अँग्रेज़ी बैबिल की भाषा आज कल की अँग्रेज़ी भाषा के समान नहीं पायी जाती। यह अन्तर भाषा के उत्तरोत्तर विकाश के कारण पड़ा है पर वैसे भी सामयिक गद्य की भाषा पद्य की भाषा से विभिन्न रहती है और रहनी भी चाहिये, क्यों कि दोनों के मूल उद्देश्यों में ही जब भेद है तो साधनों में भी क्यों न रहेगा?

यह स्वाभाविक नियम है कि जिस बातमें कोई वैचित्र्य नहीं है, जो असाधारण नहीं है प्रत्युत प्रति दिनके व्यवहार में आया करती है वह इतनी मनोहर नहीं होती जितनी वह होती है जिसमें वैचित्र्य, असाधारणता, नवीनता आदि गुण पाये जाते हैं। प्रकृतिके इसी नियमके असाधारण, पर कविताको श्रुति मनोहर एवं ललित बनाने के लिये पद्यकी भाषा साधारण गद्यकी भाषा के समान नहीं रक्खी जाती। अँग्रेज़ी पद्य भाषामें प्राचीन प्रयोग (Archaic expressions) और साधारण शब्दों का भिन्नरूप बहुतायतसे देखने में आता है।

इन सब प्रमाणों से तो यह सिद्ध है कि अँग्रेज़ी साहित्य में भी गद्य और पद्य की भाषा में भेद है। हाँ कविवर वर्ड्सवर्थने एक बार यह आन्दोलन उठाया था कि गद्य और पद्य की भाषा एकसी होनी चाहिये और अपने सिद्धान्तों को कार्य्य रूपमें परिणत कर दिखानेकी चेष्टा भी की थी, परिणाम—

दीगरां नसीहत
खुदरा फज़ीहत—

ही हुआ आपने जब देखा कि हमारी रचना निरी तुकबन्दी सी दीख पड़ती है तो चुपचाप पुराने मार्गका अनुसरण करने लगे। सारांश यह कि गद्य और पद्यकी भाषामें थोड़ा बहुत अन्तर होता ही आया है और होना भी चाहिये, चाहे वह इतना अधिक न हो जितनी आधुनिक हिन्दी गद्य और पुराने पद्यकी भाषाओं के बीच पाया जाता है। हम यह भी दिखा चुके हैं कि साहित्यका सम्यक् अध्ययन करनेवाले को प्राचीन तथा मध्य कालीन कवियोंकी रचनाएँ समझनेके लिये तत्कालीन भाषा का व्याकरण पढ़ने का कष्ट उठानाही पड़ेगा। अब खड़ी बोली में कविता करके यदि कोई चाहे कि मैं गद्य और पद्यकी भाषा समान बनाकर विद्यार्थियोंको कठिन श्रमसे विमुक्तकर दूं सो असम्भव है। जब तक हिन्दी साहित्य विद्यमान है तब तक हमारे प्राचीन कवियों की रचनायें अमर हैं और उन्हें बिना पढ़े कोई हिन्दी-साहित्यज्ञ नहीं कहा सकता। निरेखद्योतसूर्य्य चन्द्र तथा तारागणों के प्रकाशको इतना मन्द नहीं कर सक्ते कि उसका अस्तित्वही उठ जाय।

ऐसी दशा में दोनों दलों के अनुयायियों को अपनी रुचि के अनुकूल कविता करते जाना चाहिये और इस परस्पर के विवाद को दूर कर देना चाहिये कि कविता किस बोली में अच्छी होती है। जो महाशय कहा करते हैं कि खड़ी बोली की कविता अत्यन्त नीरस, भद्दी तुकबन्दी मात्र है उनसे हमारा यह निवेदन है कि यदि आपकी ऐसी धारणा है तो अवश्य ही वह आपको ऐसी ही दीखेगी, पर यदि आप पक्षपात को अपने हृदय से निकाल कर कुछ काल पर्य्यन्त भारत-भारती, जयद्रथबध आदि ग्रन्थ रुचि पूर्वक पढ़ेंगे तो आश्चर्य नहीं कि आपको भी ये रचनायें इतनी भद्दी न दीख पड़ें। यह हम अपने अनुभव से कहते हैं कि निरन्तर अभ्यास से हमारी रुचि का नूतन संस्कार हुए बिना नहीं रहता जिससे कई वस्तुयें जो हमें पहले भद्दी दीखती थीं समय पाकर वैसी नहीं दीखतीं।

अब रहे खड़ी बोली के पक्षपाती सज्जन, उनसे हमारा यह निवेदन है कि आप लोग भी अपनी प्रिय रचनाओं पर समालोचना करती वार ज़रा अतिशयोक्ति अलङ्कार का प्रयोग अधिक न होने दीजिये। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि

भारत-भारती ने हिन्दी जगतमें अच्छा आदर पाया है, पर इस आदरसे यह सिद्धान्त स्थिर करना कि काव्य-दृष्टि से भारत-भारती एक निर्दोष उत्तम रचना ठहरी है और खड़ी बोली की कविता पुरानी कविता के समान आदर पाने लगी है, हमारी समझ में युक्ति सङ्गत नहीं है। हमारी क्षुद्र बुद्धि में भारत-भारती का जितना मान हुआ है उतना गुप्त जी की अन्य रचनाओं का नहीं हुआ। इस कारण वे भी तो खड़ी बोली ही में रची गयी हैं और उनमें भी तो कवि ने अपनी असाधारण कवित्व-शक्ति का वैसा ही प्रयोग किया है फिर भारत-भारती में ही कौन सी विशेषता है कि जिसके कारण वह सहृदय हिन्दी जगत में इतना अधिक सत्कार पा रही है? पाठकगण अवश्यही भारत-भारती में एक ऐसी विशेषता है जो जयद्रथबध आदि गुप्त जी रचित अन्य काव्य ग्रन्थों में नहीं है। रचना-कौशल में चाहे वे समान समझे जायँ पर उनके विषयों में बड़ा भेद है। जयद्रथबध का विषय एक प्राचीन वार्ता है। उससे हमारे परम पूज्य पूर्व पुरुषों के चरित्र संगठन का अच्छा पता लगता है। प्राचीन आर्यवीरों के उच्चादर्शों का निदर्शन तो सुचारुरीति से किया गया है, पर ऐसा भी नहीं कि अन्य कवि उसकी समता ही न कर सकते हों। सारांश यह कि उसी विषय पर अनेक काव्य रचनाओं में से वह भी एक प्रशंसनीय रचना है विषय नवीनता उसमें कुछ नहीं है और वह निरा छायानुवाद प्रतीत होता है। पर, भारत-भारती! क्या इस विषय का भी कोई ग्रंथ आज पर्यन्त संस्कृत वा हिन्दी में प्रकाशित हुआ है? बस, यही कारण कि भारत-भारती का इतना मान है। इस भारतीय जागृति के काल में जब समग्र जाति के हृदय सागर में नये २ विचारों की तरंगे उठ २ कर उसे क्षुब्ध कर रही हैं और प्रत्येक शिक्षित भारतीय उन विचारों एवं आदर्शों को वक्तृताओं लेखों तथा बड़े २ भयात्मक ग्रन्थों द्वारा प्रकट करने में अहर्निश सचेष्ट है कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने उन सब विचारों को एकत्र कर मूर्तिमान बना दिया है और इस प्रकार अपने को अपने समय का प्रतिनिधि-कवि सिद्ध कर दिखाया है! अब चाहे आपकी कविता निरी तुकबन्दी ही क्यों न मानी जाय, पर है वह हमारे अन्तःकरणों का खासा चित्र या कहिये आइना, जिसमें हम अपने ही आन्तरिक भावों का प्रतिबिम्ब देख धन्य २ कह रहे हैं। बस भारत-भारती के सारे सत्कार का इतनाही रहस्य है। उसकी कविता में चाहे जितने दोष हों, पर उसके विषय की उपयुक्तता और नवीनता में वे सब छिप जाते हैं। समयान्तर में चाहे वे कैसा ही भीषण रूप क्यों न धारण करें पर वर्तमान में तो हम उस गौंड़ के सदृश हो रहे हैं जिसने पहिले कभी कांच का आइना देखा ही न था, पर जब मिला तो वह उसमें अपनी छवि देख कर इतना मुग्ध हुआ कि उसका ध्यान उसके बनावट आदि के गुण दोषों की ओर तनिक भी न जा सका। इसी प्रकार अपने समयके प्रतिनिधि रूप कवि अंगरेज़ी आदि भाषाओं में सदा से होते आये हैं और अपने समकालीनों से ऐसा ही सत्कार भी पाते आये हैं पर पीछे से वे देश के सर्वोच्च कवियों की पंक्ति में परिगणित नहीं हो सके और उनकी रचनायें केवल ऐतिहासिक दृष्टि से देखी जाने लगीं। सर्वोच्चपद पाने के योग्य कवि वही होता है जिसकी रचना का विषय किसी विशेष देश वा काल से सम्बन्ध नहीं रखता वरन सब देशों में तथा भूत वर्तमान और भविष्यत में एक सा उपयोगी वा सत्य समझा जाता है। अस्तु;

(८) हिन्दी में शब्द-कोष सम्बन्धी विवाद

शब्दों का उपयोग भी आजकल हिन्दी के विवाद ग्रस्त विषयों में से एक है। इस विषय में भी प्रधान दो दल हैं। एक दलवाले तो कहते हैं कि जिस प्रकार साधारण बात चीत में हम सब शब्दों

की व्युत्पत्ति की ओर लक्ष्य दिये बिना ही धड़ाधड़ उनका उपयोग करते हैं और हमारी बात चीत में संस्कृत के शुद्ध शब्द तत्सम अपभ्रंश तद्भ‌ू तथा उर्दू के अनेक शब्द रहते ही हैं उसी प्रकार हमारी पुस्तकों में भी ऐसी ही खिचड़ी पकाना न्याय-सङ्गत है। इस दल का नाम हम खिचड़ी दल रखलें तो कोई क्षति नहीं दीखती; पर कदाचित् यह नाम अपमान-सूचक समझा जाय; हमारा अभिप्राय किसी का अपमान करने का नहीं है। कोई कोई महाशय इस दल के अनुयायियों को "अकबरी विवाह वाले" इस लिये कहते हैं कि जैसे अकबरने हिन्दू मुसलमान, क्रिस्तान, पारसी यहूदी आदि जातियों वा धर्मों की बालाओं को अपने अन्तःपुर में तथा अपने हृदय में स्थान दिया था वैसेही ये भी सब जाति के शब्दों को अपने ग्रंथों में स्थान देना चाहते हैं।

दूसरे दल में वे लोग हैं जो कहते हैं कि हिन्दी प्राकृत से और प्राकृत संस्कृत से निकली है अतएव उसके शब्द-भंडार में भी इन्हीं दो भाषाओं के शब्द अधिकांश समाविष्ट रहने चाहिये और विदेशी या यावनी भाषा के वे ही शब्द आने चाहिये जिन्होंने समय २ पर प्रायश्चित्त वा शुद्धि कराके इस भंडार में परिगणित होने का अधिकार प्राप्त कर लिया है। उनका मत है कि जिन यावनी शब्दों का उपयोग साहित्य में होता आया है, वह अब भी होता जाय; पर उनकी वेश-भूषा हिन्दियानी ही रहे अर्थात् हिन्दी उच्चारण तथा व्याकरण के नियमों के भीतर ही उनका उपयोग किया जाय। सभी विदेशी भाषाओं से आये हुए शब्दों के विषय में इस दल के लोगों का ऐसा ही उदार मत है। इस दल का नाम हम नरम-दल रक्खे लेते हैं।

एक तीसरा भी दल सुनने में आता है जिसके अनुयायी शुद्ध संस्कृत शब्दों के उपयोग का पक्ष करते हैं। ये महाशय उन शब्दों का भी बहिष्कार करना चाहते हैं, यावनी अंगरेज़ी आदि शब्दों की तो बात ही कहाँ रही। हाँ, विदेशी शब्दों का रूप बदलकर उन्हें स्थान देना ये अनुचित नहीं समझते। साधारण नामों को भी बदल कर ये संस्कृत रूप दे दिया करते हैं। दुबे तिवारी चौबे, पांडे, गनपति- भैरों, गजाधर आदि इनकी दिव्य जिह्वा वा लेखनी के सम्पर्क से द्विवेदी, चतुर्वेदी, त्रिपाठी, पाण्डेय, गणपति, भैरव गदाधर आदि रूप धारण कर लेते हैं। ये गधे को भी गौरव-सम्पन्न बना अपनी जाति में मिला लेते और उसे गर्दभ कहने लगते हैं! इसी प्रकार इनके यहाँ कुत्ता, भैंस, कौवा, घोड़ा, बन्दर, बाघ, सांप मोर आदि एक नहीं रहते वरन् महिष, काक, घोटक, वानर, व्याघ्र, सर्प, मयूर आदि बन जाते हैं। ये बी० ए० का अर्थ कला-कुमार करके उसका उपयोग धड़ाधड़ करते हैं। कहां तक कहें, यदि इनकी चले तो हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान आदि कुछ न रह जाय और उनके कहने में आर्य्य-भाषा, आर्य्य आर्य्यावर्त का उपयोग हो। इलाहाबाद, लखनौ, मैसूर, जबलपुर आदि को भी मिटाकर ये प्रयाग, लक्ष्मणमऊ, महिशूर, जबालिपुर आदि बना दें, डर केवल इतना है कि डाक विभाग अभी इतना विद्वान् नहीं है कि इनकी चिट्ठी ठीक स्थान को भेज दिया करे। मुंशी शब्द को भी ये महाशय-मनीषि बना कर अपना प्रबल संस्कृत प्रेम प्रकट करना चाहते हैं। ग़रीबदास को ये दीनदास, राम गुलाम को रामदास, शिव बख्श को शिवदत्त-आदि बना देने में ही मातृभाषा की उन्नति समझते हैं। इस दल को हम गरम दल कहें तो कोई आपत्ति नहीं।

इस गरम दल में कई महोदय तो निरे हठी हैं; पर थोड़े बहुत विचार-शील भी दीख पड़ते हैं। इनका कहना है कि जब हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने का प्रयत्न हो रहा है तो इसमें शुद्ध तत्सम शब्दों का उपयोग करना ही उचित है जो पूर्व प्राकृत से निकली हुई सभी प्रचलित भाषाओं के बोलने वालों की समझ में अनायास ही आ सके हैं।

ऐसा करने से, वे कहते हैं, कि बंगला, मरहटी, उड़िया, गुजराती आदि भाषा-भाषी गण हिन्दी को अपनाने में शीघ्र सहमत हो जायँगे, क्योंकि इस भाषा के तद्भवशब्द सीखने में उन्हें विशेष परिश्रम न उठाना पड़ेगा। इस प्रकार दूर की सोचने वालों का यही हाल होता है कि वे फिर घर को देखते ही नहीं। यदि इन महोदयों के कथनानुसार हमारी भाषा से समस्ततद्भव तथा विदेशी शब्दों का बहिष्कार कर दिया जाय तो वह राष्ट्र-भाषा तो चाहे जब बने; पर उसके साधारण बोलने वाले ही उसे समझने में असमर्थ हो बैठें और वह केवल संस्कृतज्ञ पंडितों भर की भाषा रह जाय. हम हिन्दी को राष्ट्र-भाषा इसलिये बनाना चाहते हैं कि ऐसा करने से हम भारत वासियों में जातीय भाव की वृद्धि होना संभव है। अब इन महाशयों से हम पूछते हैं कि और सब प्रकार के शब्दों का वहिष्कार कर यदि हम शुद्ध संस्कृत शब्दों भर का व्यवहार करने लगें तो क्या हमारा उद्देश्य सफल हो सक्ता है? बात तो यह है कि भाषाओं का कहीं पुतली घर तो होता नहीं कि उस में एक से साँचे तय्यार कर मनमाने शब्द ढाल लिये जाँय। भाषा भी विकाश के नियमों से बँधी है और करोड़ों स्त्री पुरुषों की रुचि एवं सुविधा पर निर्भर है।इन करोड़ों स्त्री पुरुषों में से कई करोड़ ऐसे हैं जिनका संस्कृत के साथ इतना प्रेम नहीं है, जितना हम हिन्दू धर्म्मावलम्बियों का है, पर ये राष्ट्र में अवश्य सम्मिलित हैं इनकी सुविधा का ध्यान भी हमें अवश्य रखना पड़ेगा नहीं तो हमारी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं हो सकेगी। निरी हिन्दू या आर्यभाषा रह जायगी।

इसके अतिरिक्त हमारी भाषा में विदेशी शब्दों का समावेश जिस प्रकार हुआ है वैसाही मरहटी आदि अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है और उनके बोलनेवाले उनका उपयोग करते ही हैं। फिर कैसे माना जाय कि हिन्दी से उन्हें अलग कर देने से वह इन लोगोंको सीखने में सुगम हो जायगी? इसके सिवा हमारे कवियों ने ऐसे विदेशी शब्दों का उपयोग बहुतायत से किया है सो क्या उनके ग्रन्थों से भी ये शब्द निकाले जा सक्ते हैं? हम देखते हैं कि जिस प्रकार अँगरेज़ी के आदि कवि चासर ने अपने समय की तीनों बोलियों को एकत्र कर तथा जर्मन, फ्रेञ्च, लेटिन आदि भाषाओं से सहस्रों शब्द लेकर अपनी कविता की भाषा का निर्माण किया है उसी प्रकार हमारे आदि कवि चन्द बरदाई ने भी रासो नामक अपनी कविता में ऐसाही "भानमती का कुनवा जोड़ा" है। कवि स्वयं लिखता है:—

षट्भाषा पुराणञ्च कुरानं कथितं मया।

अर्थात् उस समय की ६ बोलियाँ, पुराणों की भाषा संस्कृत और कुरान की अरबी (फ़ारसी)—इन सब से शब्द-सामग्री एकत्र करके चन्द्र कवि ने पृथिवीराज–रायसा लिखा है हिसाब करने वालों ने हिसाब करके बतलाया है। चन्द ने प्रति शत १० शब्द इन विदेशी भाषाओं से लिये हैं। इसी प्रकार अन्य कविगण भी व्यवहृत विदेशी शब्दों का प्रयोग बराबर करते आये हैं। कविवर भिखारीदास जी भी स्वयं लिखते हैं:—

ब्रज-भाषा भाषा रुचिर कहै सुमति सब कोय।
मिले संस्कृत पारस्यौ पै अति सुगम जु होय॥

अब इतनी शताब्दियों के पश्चात् जब सहस्रों विदेशी शब्द हमारी भाषा में मिलजुल कर हमारी ही सम्पत्ति बन गये हैं तो उनके वहिष्कार का प्रश्न उठाना मानो व्यर्थ पानी पीटना है। यह कौन विद्वान् नहीं जानता कि मानव-हृदय एवं मन के असंख्य भावों तथा विचारों का तथा उनके अगणित रूपों को इतनी उत्तम रीति से व्यक्त करने की जितनी सुविधा अँगरेज़ी भाषा में है उतनी और किसी भाषा में शायद ही हो। इस शक्ति का एकमात्र कारण अँगरेज़ी का विशाल शब्द-कोष है और यह प्रत्येक भाषा से उपयुक्त शब्दों को लेने में तनिक भी संकोच न करने का साक्षात् उत्तम फल है। अँगरेज़ी के समान हिन्दी

का भी विकाश हुआ है और अब भी होरहा है। यह अकाट्य नियम है कि दो जातियों का सम्पर्क होने से दोनों की भाषाओं में कुछ न कुछ अन्यान्य प्रभाव पड़ता है। क्या संस्कृत-भाषा पर द्राविड़ी भाषाओं का प्रभाव नहीं पड़ा और अनेक द्राविड़ी शब्दों का प्रवेश संस्कृत में नहीं हुआ? फिर जब हम लोगों का सहवास मुसलमान जातियों के साथ हुआ तो हम पर उनका पूर्ण प्रभाव पड़ने से हमारी भाषा में इतने अधिक यावनी शब्द आ घुसे और अब उसी नियम से अँगरेज़ी शब्द घुसते जाते हैं। आवश्यकतानुसार उन्हें लेना ही पड़ता है। नये शब्द गढ़ने की अपेक्षा इन्हीं विदेशी शब्दों के ले लेने में विशेष सुविधा होती है गढ़े शब्द बहुत बड़े होजाते हैं और ठीक भाव को व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं इस लिये आवश्यक विदेशी शब्दों को लेकर उनका हिन्दी संस्कार करदेने ही में सुविधा देखी गई है। साहित्य-सेवी गरम दल वाले चाहे जितना प्रयत्न करें, नागरी प्रचारिणी सभायें चाहे बड़े २ वैज्ञानिक शब्द-कोष बड़े २ विद्वानों द्वारा सङ्कलित करावें पर पुतलीघरों वा कारखानों में काम करने वाले अँगरेज़ी शब्दों को जो रूप देकर प्रचलित करदेंगे, सर्व-साधारण में उन्हीं का प्रचार होता जायगा। ऐसी दशा में बुद्धिमानी तो इसी में है कि साहित्य सेवी सज्जन भी शब्द-कोष बनाते समय इन शब्दों का पता लगाकर देखें कि कारीगरों वा मिस्त्रियों ने उनका काम पहिलेही तो नहीं करडाला यदि ऐसा न किया गया तो हमारी भाषा में व्यर्थ द्वैतभाव फैलकर दो भिन्न २ शब्द-समुदायों की सृष्टि होती जायगी। जिनमें से एक समुदाय तो सर्वसाधारण में व्यवहृत रहेगा। दूसरा ग्रन्थों में रहकर अपना गौरव सम्हालेगा। ग्रान्थिक शब्द समुदाय के प्रेमी यदि पसारी के पास कोई पदार्थ मोल लेने को जायँगे तो वह ढेर का ढेर रहने पर भी उत्तर देगा कि हमारी दुकान में नहीं है।

(१०) इस विषय में विद्वानों की सम्मतियाँ।

सिद्धान्त यह निकला कि जिस प्रकार हमारी भाषा अन्य भाषाओं के सदृश विकाश-नियमों के अनुसार विकसित होती आरही है उसी प्रकार होती जायगी और उसके विकाश में बाधा डालने से हानि ही होगी, लाभ नहीं। अब हमें देखना है कि हिन्दी साहित्य में जिन महानुभावों ने कुछ कार्य करके दिखाया है उनकी सम्मति इस विषय में क्या है। हमारे श्रद्धेय मिश्र-बन्धु अपने विनोद में कहते हैं कि "यद्यपि हिन्दी पर अपने माता-पिता संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का बहुत कुछ ऋण है तथापि यह निर्विवाद है कि वह एक स्वतन्त्र जीवित भाषा है अतएव उसकी स्वतंत्रता का अपहरण कर उसे संस्कृत के समान व्याकरण नियमों से जकड़ देना तथा साधारण प्रचलित शब्दोंके बदले संस्कृतके बड़े २ सामासिक शब्दोंका उपयोग करना उतनाही हानि-कारक होगा जितना संस्कृत के लिये हुआ है अर्थात् हिन्दी भी वैसीही विद्वान् पंडितों की भाषा रह जायगी और जनता की भाषा न रह सकेगी जिससे संस्कृत के समान यह भी एक मृत-भाषा भी समझी जाने लगेगी— मि० व० विनोद, भाग १ पृष्ठ. ६९-८४।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के कलकत्ते वाले अधिवेशन में प्रसिद्ध हिन्दी लेखक पं० बदरीनारायण चौधरी जी ने मुक्त कंठ से राजा शिवप्रसाद की लेख-शैली की प्रशंसा की थी। क्या वे नहीं जानते थे कि राजा साहिब अपने ग्रंथों में यावनी शब्दों का प्रयोग धड़ाधड़ करते थे, फिर यदि ऐसे शब्दों से हमारी पवित्र भाषा दूषित होती है तो पंडित जी ने ऐसे लेखक की शैली को इतना प्रशंसनीय कैसे समझा? हमारे मत में तो राजा साहिब की शैली भी हिन्दी की अनेक शैलियों में से एक है जैसा कि डाक्टर ग्रियर्सन प्रभृति हिन्दी भाषा के आचार्य्यों ने माना है। चौधरी जी भी

उसी बात का समर्थन करते हैं।

सन् १६०२ में बनारस की नागरी-प्रचारिणी-सभा ने अँगरेज़ी में एक छोटी सी पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें सभा के परलोकगत सभापति विद्वद्वर पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र, राय बहादुर ने सभा के सुयोग्य सदस्यों का मत इस तरह प्रकट किया था :—

सभा के विचार इस विषय में अत्यन्त उदार हैं और उसे किसी प्रकार के शब्दों के प्रति विरोध भाव नहीं है। फ़ारसी अरबी के साधारण शब्द जो हिन्दी में व्यवहृत होते हैं उन्हें निकाल देना सभा को पसन्द नहीं है। साम्प्रत कई हिन्दी लेखक अपनी रचनाओं को संस्कृत शब्दों से इतना भरते हैं कि उनकी भाषा रोग-ग्रस्त सी मालूम पड़ती है जिससे पाठकों को उसकी ओर अरुचि सी उत्पन्न होती है।

यह विषय हाल ही में विवाद-ग्रस्त बना हो सो नहीं है। सन् १८६६-६७ में भी ऐसा ही विवाद उठा था और उसके उठानेवाले बीम्स साहिब और हिन्दी रामायण के अनुवाद-कर्ता तथा मथुरा के कलेक्टर ग्रौज़ साहिब थे। बीम्स साहिब अरबी फ़ारसी के प्रचलित शब्दों का पक्ष करते थे और ग्रौज़ साहिब संस्कृत शब्दों का, आप आधुनिक गरम दलवालों के सदृश व्यवहृत यावनी शब्दों के बहिष्कार के पक्षपाती न थे और न विवाद ही इस विषय पर था। सारा झगड़ा नये शब्दों के सम्बन्ध में था। बीम्स साहिब ऐसे शब्द यावनी भाषाओं से और ग्रौज़ साहिब संस्कृत से लेना उपयुक्त समझते थे। वास्तव में ग्रौज़ महोदय का मत सर्व्वथा उपादेय है, पर उसी दशा में जब नये शब्दों की आवश्यकता पड़े और सर्व्वसाधारण में उस अर्थ के शब्दों का नितान्त अभाव हो। यह नहीं कि अमुक शब्द यावनी अथवा अँगरेज़ी है अतएव कोष से कोई संस्कृत शब्द निकाल कर उसके स्थान में रख दिया जाय या दो चार संस्कृत शब्दों को एकत्र कर एक लम्बा सामासिक शब्द गढ़ लिया जाय। हम देखते हैं कि आजकल कई कवितायें तथा बालोपयोगी ग्रंथ कभी २ ऐसी कठिन भाषा में प्रकाशित होते हैं कि जिनके लाभार्थ वे लिखे जाते हैं वे उनसे यथेष्ट लाभ नहीं उठा सकते। साधारण कथा कहानियों तथा बालोपयोगी कविता में संस्कृत के सामासिक शब्द लाने से उनके मूल उद्देश की सफलता में बाधा पड़ती है।

इसके विरुद्ध कई महाशयों का मत है कि जहाँ तक तद्भव शब्दों से काम निकले वहाँ तक तत्सम शब्दों का उपयोग नहीं होना चाहिये। इस मत के अवलम्बी व्यापार, व्यवहार, आश्चर्य्य आदि शब्दों के स्थान में ब्यौहार, अचरज आदि शब्दों का प्रयोग ही उचित समझते हैं। इन महाशयों को शुद्ध संस्कृत शब्दों से न जाने क्यों इतनी अरुचि है। हमारी समझ में तो इन दोनों पक्षों के महाशय एक भारी भूल करते हैं। प्राचीन कविता में तद्भव शब्दों के उपयोग की दुहाई देना युक्ति संगत नहीं है। हमारे कवियों ने सभी प्रकार के शब्दों का उपयोग किया है और अधिकांश तो काव्य-नियमों के पालनार्थ उन्हें शुद्ध शब्दों को भी विचित्र रीति से बदल कर लिखना पड़ा है। रामायण में "कल" को "कलु" "गमन" को "गौन" "निश्शंक" को "निसंक" बनाकर मात्रायें पूरी की हैं। सारांश यह कि प्राचीन कवियों की पद्य-भाषा आधुनिक गद्य के लिये आदर्श-रूप नहीं समझी जा सकती। हमारे यहाँ हिन्दी गद्य में आरम्भ से ही शुद्ध तत्सम शब्दों का उपयोग बराबर होता आता है और वर्तमान समय में तो कई लेखक जहाँ तक तत्सम शब्द पाते हैं वहाँ तक तद्भव तथा यावनी शब्दोंका प्रयोग नहीं करते। जो लोग सुबोधता की दुहाई देते हुए यावनी शब्दों के उपयोग का पक्ष करते हैं उनसे हमारा प्रश्न है कि लेकिन, अगर, मगर, बल्कि, ताहम, आदमी जाहिल आदि शब्दों के बदले पर या परन्तु, यदि या यद्यपि, वरन, तथापि, मनुष्य, मूर्ख आदि शब्द

लिखने या बोलने से भाषा कठिन कैसे होजाती है? ये शब्द भी तो हिन्दी में बराबर प्रयुक्त होते हैं; फिर अगर मगर के बदले उनका प्रयोग करने से भाषा का कठिन होजाना हमारी समझ में नहीं आता।

हमारी समझ में तो विषय के अनुसार भाषा रखना उचित होता है और "देशी घोड़ी पर मरहटी जीन" कदापि शोभा नहीं दे सकती। यहाँ हम अपना अभिप्राय कुछ थोड़े से दृष्टान्त देकर व्यक्त करते हैं:—

सूर्य्य और सूरज

१—श्री सूर्य्य भगवान अपनी दैनिक यात्रा समाप्त कर अस्ताचल पर अदृश्य हो गये।

२—सूरज निकला हुआ सवेरा।

ऊपर के वाक्यों में उसी एक शब्द के तत्सम और तद्भव रूपों को अर्थात् सूर्य्य और सूरज को एक दूसरे से बदल दें तो चाहे विदेशी महाशय को कुछ भेद न मालूम पड़े, पर साहित्य के मर्मज्ञ हिन्दी-प्रेमियों को यह परिवर्तन खटके बिना न रहेगा।

इसी प्रकार के अन्य दृष्टान्त भी लीजिये।

(२) घृत और घी

(१) यज्ञ का आरम्भ हुआ; होतागण नियमित संख्या में बैठकर स्रुवा द्वारा घृत की आहुति देने लगे।

(२) वह तो रोज़ घी में चभाचभ रोटियां खाया करता है।

(३) तुम्हारी तो पाँचो उंगलियाँ घी में रहीं, नुकसान हुआ तो हमारा हुआ।

(३) मुख और मुंह

(१) उसके मुखचन्द्र पर लावण्य की छटा विचित्र थी।

(२) वह तो अपना सा मुंह लेकर लौट गया।

(३) बूढ़े मुँह मुँहासे देखो लोग तमासे।

हमारे सुविज्ञ पाठक स्वयं देखेंगे कि किस प्रकार की रचना में कैसे शब्द उपयुक्त दीखते हैं। बस, यही एक नियम समीचीन है कि रचना-शैली के अनुसार ही शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए। साधारण बोल चाल की भाषा में तद्भव एवं यावनी शब्द अच्छे लगते हैं और वाक्य में अन्य संस्कृत शब्दों के साथ तत्सम। साधारण बात चीत में तत्सम शब्दों का प्रयोग कभी २ हास्यजनक होजाता है पर हमारे नवीन लेखक बहुधा इस बात पर ध्यान नहीं देते। बालोपयोगी साधारण कथा कहानियों में संस्कृत शब्दों के अनुचित प्रयोग के दृष्टान्त हम नीचे देते हैं; यथा:—

(१) उसको किसी की पाद-ध्वनि (पैरों की आहट) सुनाई दी।

(२) वे बज्र-तनु हो रहे हैं—(उनका शरीर बज्र के समान कड़ा हो रहा है)

(३) महाराज की क्या अधर्म्म-परिपूरित वासना है (महाराज कौन सा अधर्म करना चाहते हैं)

(४) शनैः २ उसने जाली दस्तावेज़ वकील साहिब को दिखलाये—(धीरे २)

(५) विन्ध्या-पहाड़ के पाद-तले—(की तरहटी वा तराई में)।

(११) विभक्ति-विचार।

लिपि सम्बन्धी प्रश्न भी कई हैं जिनका समाधान ठीक रीतिसे हो जाना भाषा के लिये अत्यन्त प्रयोजनीय है। सबसे बढ़कर विवाद-ग्रस्त प्रश्न तो विभक्तियों को मिलाकर अथवा अलग रख कर लिखने का है। श्रीयुत पं० गोविन्दनारायण मिश्र प्रभृति हिन्दी-साहित्य-सेवियों ने गवेषणा पूर्ण लेख लिख कर यह सिद्ध किया है कि मूल शब्द और विभक्ति से मिलकर जब एक पद सिद्ध होता है तो विभक्तियों को मिलाकर लिखना ही युक्त संगत है, अलग करके लिखना नितान्त अशुद्ध है। मिला कर लिखनेवालों ने अपने मत की पुष्टि में संस्कृत और प्राकृति भाषाओं के व्याकरण उथल

पथल कर खासे ग्रन्थ लिख डाले हैं। विवाद केवल इस बात पर है कि कोई २ महाशय तो इन विभक्तियों को स्वतंत्र शब्दों के विकृत रूप समझ कर अलग लिखने के पक्ष में हैं और कोई इन्हें प्रत्यय मात्र समझते और कहते हैं कि स्वतंत्र रूप से आने पर इनका कोई अर्थ नहीं होता अतएव इन्हें स्वतंत्र लिखना अशुद्ध है। इस विवाद के उठने पर कोई २ तो इन्हें मिलाकर लिखते हैं और कोई २ अलग; अलग लिखने वालों की ही संख्या विशेष मालूम पड़ती है। शास्त्रीय दृष्टि से देखने पर तो मिलाकर लिखना ही ठीक जंचता है पर भाषा में प्रथा भी मान्य ठहरती है। अंगरेज़ी में कई ऐसे प्रयोग हैं जो व्याकरण के नियमों से तो अशुद्ध सिद्ध होते हैं; पर रूढ़ का आश्रय लेकर लोग उन्हें शुद्ध मानते और उनके लिये उपयोग में तनिक भी संकोच नहीं करते। चाहे प्रयोग कितना ही अशुद्ध एवं भद्दा हो; पर sanctioned by usage (व्यवहार में आने लगा है) कह कर लोग अलग हो जाते हैं। वास्तव में भाषा की शुद्धि वा अशुद्धि व्यवहार पर बहुत कुछ अवलम्बित होती है और मुहाविरे बहुधा व्याकरण के नियमों के विरुद्ध पाये जाते हैं। इस नियम के अनुसार यदि विभक्तियों को अलग लिखने की चाल चल गयी है और अधिकांश लेखक अलग ही लिखते हैं तो व्याकरण की दुहाई देते हुए उनको मूर्ख ठहराना केवल समय की क्षति करना है। इन विवादों से वास्तविक लाभ तो कुछ होता ही नहीं; फिर व्यर्थ की कलह उठाने से क्या? यदि लेखक-गण मिलाकर लिखने लगें तो अच्छा ही है, पर यदि नहीं लिखते तो उन्हें कोई बाध्य भी नहीं कर सकता। "जाको जैसी, लख परी सो तैसी गह लीन"।

हमारे कई विद्वान् लेखकों का पक्ष है कि हिन्दी में अंगरेज़ी रीति भाँति का समावेश अनुचित है। अंगरेज़ी, अंगरेज़ी है और हिन्दी, हिन्दी; हिन्दी में अंगरेज़ी लिपि एवं रचना का अनुकरण करना उचित नहीं। ऊपर से तो यह मत समीचीन दे पड़ता है, पर वास्तव में उसके अनुसार का करना तनिक टेढ़ी खीर है। हिन्दी के प्रायः सभ विद्वान् लेखक कुछ न कुछ अंगरेज़ी अवश्य जान हैं और उनपर अङ्गरेज़ी साहित्यका प्रभाव भी खू पड़ा है जिसके कारण उनकी रुचिने भी एक विशे रूप धारण किया है। यह हो ही नहीं सकता कि उनकी रचनाओं में अङ्गरेज़ी की झलक न आ जाय। हिन्दी अंग्रेज़ी गद्य की बहुत कुछ ऋणी है और रहेगी। यदि अङ्गरेज़ीमें कोई ऐसी बात है जो हिन्दी में नहीं पाई जाती पर है उपादेय, तो उसे ग्रहण करना अनुचित नहीं है। अङ्गरेज़ी के साथ व्यर्थ द्वेषभाव रखना और उसे म्लेच्छ भाषा कह कर सम्बोधित करना एक विचित्र बात है। हमारे कोई २ मित्र कहा करते हैं कि हिन्दी में वे ही विदेशी शब्द लिये जाने चाहिये जो हिन्दी साहित्य में स्थान पा चुके हैं मानों हिन्दी-साहित्य, विशेष कर उसका गद्यांश पूर्ण रीति से बन चुका हो जब कि उसका आरम्भ हुए अभी पूरी एक शताब्दी भी नहीं हुई। हिन्दी गद्य का रूप आगे क्या था सो मिश्र बन्धुओं की प्रशंसनीय खोज और कृपा से विनोद में दिये हुए कुछ थोड़े से पत्रों से व्यक्त होता है। वास्तव में तो अङ्गरेज़ी गद्य की सहायता से हिन्दीका गद्य दिनोंदिन सुचारुरूप धारणकर रहा है। यह टकसालका काम जारी है और अभी बहुत समयतक जारी रहेगा। अभी हिन्दी गद्य साहित्य बना ही कहाँ है, बन रहा है अतएव ऐसे परिवर्तन-काल में जहाँ से मिले वहाँ से सामग्री एकत्र करके हिन्दी-गद्य-साहित्य का मनोहर भवन खड़ा करना उचित है। हिन्दी का सामयिक साहित्य, उपन्यास साहित्य, स्फुट कविता आदि कई अंग हमें म्लेच्छ-भाषा अंगरेज़ी के सांचे में ढले दीखते हैं। हिन्दी-साहित्य-सागर में लहराने वाली जातीयता, देश-भक्ति आदि शुभ गुणों की तरंगें अंगरेज़ी साहित्य रूपी वायु के झकोरों से तरङ्गित होरही हैं। हिन्दी

का व्याकरण, उसमें गद्य लिखने का प्रचार आदि कई बातें उसी म्लेच्छ-भाषा-भाषी पादरी महाशयों ने पहिले पहल चलाई हैं। ऐसी दशा में हिन्दी को अँगरेज़ी के पतित करनेवाले स्पर्श से रक्षित रखने की पुकार हमें हास्य-जनक प्रतीत होती है और हमें कृतघ्नता का अपराधी प्रमाणित करती है। अस्तु।

(१२) विराम-चिन्ह

हमारी लिपि में विरामादि चिन्ह बिलकुल नई बात है और अँगरेज़ी के संसर्ग से ही प्राप्त हुई है। हमारे यहाँ पूर्ण विराम लगाने की प्रणाली तो थी, पर अन्य विराम चिन्हों का अभाव था। कामा, सेमिकोलन, कोलन आदि कोई जानता ही न था। अब हम देखते हैं कि हमारे सामयिक पत्र पत्रिकाओं में तथा पुस्तकों में इनका प्रयोग धड़ाधड़ होने लगा है और हमारे स्वदेशी एक मात्र चिन्ह पूर्ण बिरामने लम्बरूप त्याग विन्दु धारण करना उचित समझा। इस विषय पर भी विवाद उठा करता है। अभी हमारी स्थानीय नागरी सभा के एक अधिवेशन में एक अनुभव-सम्पन्न हिन्दी-लेखक महाशय ने अपना मत इन बिराम चिन्हों के सर्व्वथा विरुद्ध प्रकट किया था,पर शेष सभ्योंने उन्हें स्थान देना ही उचित समझा। यदि विचार कीजिये तो देखेंगे कि अब यह विषय विवाद-ग्रस्त रहा ही नहीं; सर्व्वत्र इन चिन्हों का उपयोग धड़ाधड़ होने लगा है और होना भी चाहिये क्योंकि वे पढ़ने तथा अर्थ समझने में भी हमारी सहायता करते हैं। हाँ, अँगरेजी के समान उन की भरमार उपादेय नहीं जँचती। सामासिक पदों के खंडों को आड़ी रेखा द्वारा विभक्त करना भी एक नयी रीति है जिसका ग्रहण कुछ वैकल्पिकसा हो रहा है। कोई २ महाशय तो समस्त पदों को एक ही रेखा के नीचे लिखना अलम समझते हैं, कोई २ प्रत्येक दो खंडों को आड़ी रेखा अर्थात् 'हाइफेन' से विभक्त करते हैं और अधिकांश एक भी नियम नहीं मानते प्रत्येक शब्द को अलग रखते हैं। अँगरेज़ी में समस्त पद इतने थोड़े हैं और बहुतेरों में शब्द-खण्ड ऐसे मिल गये हैं कि हाइफेन लगाने की आवश्यकता बहुत थोड़ी पड़ती है; पर हिन्दी में तो इनकी संख्या अनन्त है अतएव यदि यह रीति ग्रहण की जाय तो अवश्य ही हमारी लिपि जटिल हो जा सक्ती है और व्याकरण में एक नया प्रकरण जोड़ने की आवश्यकता पड़ती है जो पुराने किसी व्याकरण-ग्रन्थ में नहीं पाया जाता; बल्कि "पंक्चुएशन" के लिये हिन्दी वा संस्कृत में कोई पर्य्याय-वाची शब्द ही नहीं मिलता बहुतेरों का मत है कि यद्यपि ये चिन्ह व्यवहृत तो हों; पर इतने अधिक नहीं जितने अँगरेज़ी में होते हैं। हमारी समझ में तो जब तक नागरी-प्रचारिणी-सभा आदि संस्थायें मिलकर कुछ नियम न बना देंगी और वे सामान्य रीति से स्वीकृत न हो जाँयगे तब तक लेखक महाशय पंक्चुयेशन का मनमाना व्यवहार करेंगे। सामासिक शब्दों में "हाइफेन" का उपयोग कोई सहज बात नहीं है, बहुतेरे साधारण शिक्षा पाये हुए लोग तो समास क्या है सो ही नहीं जानते फिर शुद्ध प्रयोग की आशा ही क्या की जा सकती है।

(१३) कुछ अन्य प्रयोग

अब हम देखते हैं कि हिन्दी में ऐसे कई प्रयोग किये जाने लगे हैं जो आगे नहीं होते थे। अब लेखक-गण संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार हिन्दी लिखना शुद्ध समझते हैं। स्त्री लिङ्ग विशेष्य का विशेषण भी संस्कृत रूप में लिखा जाने लगा है जैसे हृदय-सम्बन्धी विचार युद्ध-सम्बन्धिनी वार्ता, हितकारी प्रयत्न और हितकारिणी संस्था, महा सम्मेलन और महती सभा आदि।

मध्य प्रदेशीय पाठ्य पुस्तकों में कई शब्द विशेष रीतिसे लिखे गये हैं जिससे यहां वाले उन्हें उन्हीं रूपों में लिखा करते हैं; पर अन्यत्र उनका रूप भिन्न है; यथा—

मध्यप्रदेश	इतरप्रदेश
सक्ता	सकता
यदि वह कहे	यदि वह कहै
क्रियाएं	क्रियायें
हुआ	हुवा
गई	गयी

आदि।

यह भी देखने में आया है कि मध्य प्रदेश में आदर-सूचक क्रियाही बहुवचनान्त नहीं होती वरन् उसका कर्ता सर्वनाम भी बहुवचनान्त लिखा जाता है, जैसे "वे [पंडित दीनदयालु जी] कल आये थे", पर अन्य प्रान्तों में और विशेष कर ब्रजभूमि और उसके इर्द गिर्द ऐसी दशा में "वह आये" लिखा जाता है।

आगे ईकारान्त शब्दों का बहुवचन अन्त्य ईकार को इँकार कर देने से बन जाता था और कहीं २ तो बहुवचन का भाव केवल क्रिया द्वारा व्यक्त किया जाता था, जैसे हिन्दुओं की पत्नी बड़ी सतीं होती हैं पर अब इतने से काम नहीं चलता, पत्नियाँ, स्त्रियां आदि रूप लिखे जाते हैं। हमारे श्रद्धेय साहित्याचार्य्य बा० जगन्नाथ प्रसाद भानु-कवि ने आकारान्त और ईकारान्त शब्दों का बहु-वचन बनाने का नियम इस प्रकार निश्चित किया है:—

> आ को ए बहुवचन,जस
> या को ये तिहि ठौर।
> नारी ई ईं ही भली,
> लेखन में सब ठौर॥

हिन्दी लेखकों के लिये यह विचारणीय है।

अँग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओंके शब्दों के लिखने में विचित्र मत-भेद पाया जाता है। कोई २ तो शुद्धाशुद्धके इतने गुलाम बन बैठे हैं कि अँग्रेज़ी तथा अरबी फारसी शब्दों का उच्चारण जैसा का तैसा रखने के अभिप्राय से हिन्दी में नये २ संकेतों का आविष्कार किया करते हैं जिससे कोई विशेष लाभ तो नहीं होता, व्यर्थ की झंझट आजाती है। थोड़ेसे दृष्टान्त लीजियेः—

> मालूम—मअलूम
> लार्ड—लॉर्ड
> गैस—ग्यास
> पैरिस—प्यारिस

इसी प्रकार अँग्रेज़ी शब्दों को जैसा का तैसा लिखना भी ठीक नहीं। अँग्रेज़ी जानने वाले तो अँग्रेज़ी शब्दों का उच्चारण समय पर ठीक ही करेंगे चाहे हिन्दी में जिस तरह लिखे जाँय; पर निरे हिन्दी-भाषी अपनी सुविधा के अनुसार अँग्रेज़ी शब्दों का रूप मन माना बना ही लेंगे, फिर इतना सब प्रयत्न करने की आवश्यकता? एक प्रकारसे तो अनेक अँग्रेज़ी-शब्दों का हिन्दी रूप निर्धारितही हो चुका है, उसी के अनुसार लिखना ठीक है। जनवरी, फरवरी, अप्रैल, मई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर या अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर, मजिस्ट्रेट या मजिष्टर, रजिष्टर, कोरट, जज्ज, बालेष्टर, सुपरडंट, गवर्नरजनरल, वैसराय, लाट, इन्टरेन्स, आदि अँग्रेज़ी शब्दोंको इसी रूपमें व्यवहृत होना ठीक है, शुद्धरूपके झगड़े में पड़कर नये २ संकेतों का आविष्कार वाञ्छनीय नहीं दीखता।

कई ऐसे शब्द हैं जिन्हें लोग भिन्न २ प्रकार से लिखते हैं; यथा.

> प्रकट और प्रगट
> सिवाय और सिवा
> संकेत और सङ्केत
> मनोरथ (शुद्ध) और मनोर्थ अशुद्ध।
> दौर दौरा और पौड़ पौड़ा
> उऋण और उरिण

(१४) उपसंहार

इस एक छोटे से लेखमें इतने बड़े विषय पर सब बातें आजाना सहज नहीं है। मेरा अभिप्राय केवल दिग्दर्शन करा देना है। सबसे बढ़ कर बात तो यह है कि जहाँ तक संभव हो साहित्यकी भाषा

में प्रादेशिक प्रयोग न रक्खे जाँय। मैं देखता हूँ कि मध्य प्रदेश ही के कई स्थानों में कई ऐसे शब्द व्यवहृत हैं जिन्हें दूसरे स्थानोंके निवासी नहीं समझते। यथा—

हुशंगाबाद	अन्यत्र
बलहड़	सेमया सेमी
कुसली	गुझिया
बील	बेल
राड़ी	झाड़ी
दोंचना	पीसना, कूटना (जैसे मसाला)

राम कहानीके रचयिताने इसी प्रकारके स्थानीय शब्द ढूँढ़ २ कर रक्खे हैं जिससे उस ग्रंथके पढ़ने वा पढ़ाने वालों को विशेष कठिनाई पड़ती हैं। यह अनुचित है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दी की इतनी प्रशंसा इस लिये है कि उसकी लिपि तथा भाषा अन्य भाषाओं का अपेक्षा सरल एवं सुबोध है अतएव संस्कृतके कठिन शब्दों तथा व्याकरण-नियमों से उसे क्लिष्ट बनाना नितान्त अनुचितहै। यदि विषय के अनुसार भाषा रखने की चेष्टाकी जाय तो कोई शिकायत न होने पावे, पर देखते हैं कि साधारण बालोपयोगी पुस्तकों में भी बड़े २ कठिन संस्कृत शब्दों की भरमार रहती है जिससे उनका पढ़ना बालकों के लिये असंभव सा हो जाता है।

हमारा गद्य भाग अभी रचा जा रहा है अतएव विदेशी शब्दों तथा रचनाओं का ग्रहण करना बहुधा आवश्यक दिखाई पड़ता है। ऐसी दशामें वही करना उचित है जिसके करने से भाषा सुसम्पन्न हो और उसमें सब प्रकारके भाव प्रकट करने की शक्ति आजाय।

हम नागरी—प्रेमियों को अपनी नीति पर तो स्थिर रहना ही चाहिये; पर देखना चाहिये कि हमारी भाषा-सम्बन्धिनी नीति संकुचित तथा अनुदार रूप न धारण करने पावे और उसका सम्बन्ध किसी धर्म्म वा जाति--विशेष से न जुड़जाय। सारांश यह कि हमारी हिन्दी सारे हिन्द की और इस हिन्द में बसने वाली प्रत्येक जाति की सम्पत्ति समझी जाय। हमारे इस आन्दोलन में कोई ऐसी बात न आने पावे जिससे किसी जाति विशेष के हृदय पर व्यर्थ आघात पहुँचे और जातीय भावों के विकसित होने में बाधा पड़े। दूसरे चाहे जो कुछ करें वा कहें; पर हम लोगोंका जो दायित्व राष्ट्रीयता का बाना लिये है, बहुत गंभीर है।

——:o:——

सिन्ध प्रान्त में हिन्दी की उन्नति ।

[लेखक—पण्डित गिरधारी लाल भारद्वाज, सक्खर]

उत्थानिका ।

सभापति महोदय और प्रिय भ्रातृगण !

इस बात को प्रकट करते हुए मेरा हृदय अकथनीय आनन्द से भर जाता है कि आप लोगों ने इस जातीय तथा अत्यन्त पवित्र महायज्ञ में सम्मिलित होने के लिये हमारे सिन्धु-प्रान्त का स्मरण किया है । मैं आपको अपने प्रान्तीय भाइयों की तरफ़ से हार्दिक धन्यवाद देकर नितान्त कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ कि आपने हिन्दी भाषा की उन्नतिरूप जातीय महाकार्य में हमें भी योग देने का सुअवसर प्रदान किया है । आपने भारत के एक उस प्रान्त को सम्मिलित किया है जिस प्रान्त के महानद (सिन्धु) के कारण आप लोगों का नाम हिन्दू, देश का नाम हिन्दुस्तान और जिस भाषा को भारतव्यापी भाषा बनाने के लिये आप इतना प्रयत्न कर रहे हैं और जिसकी उन्नति के निमित्त आज इतना समारोह है उसका नाम हिन्दी पड़ा है । क्या यह अस्वाभाविक न था जो इतने दिनों तक आपने इस प्रान्त को भुला ही सा दिया था ? मुझे निश्चय है कि कभी न कभी वह दिन अवश्य आता जबकि आपको वाध्य होकर हमारा स्मरण करना पड़ता और हमारे सम्मिलित होने के बिना यह बड़ा भारी कार्य भी अङ्गहीनसा प्रतीत होता ।

इतना कहकर मैं अपने प्रस्तुत विषय की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ ।

देश की पूर्वावस्था

इतिहास जाननेवालों को अच्छी तरह मालूम है कि प्राचीन समय में हमारा प्रान्त भारत के और प्रदेशों से किसी बात में कम न था । यही प्रान्त है जिसे देवगुरु बृहस्पति जी के क्षेत्र होने का सौभाग्य प्राप्त है यह वही भूमि है जिसने वाग्भट्ट सरीखे विद्वानों को जन्म दिया है । शल्य तथा जयद्रथ आदि महाभारतीय महारथी भी तो इस ही प्रान्त के रत्न थे । राजा रहूगण सरीखे आत्म-जिज्ञासु भी तो यहीं की सन्तान थे । थोड़े समय की बात है,कि स्वामी मेघराज, प्रसिद्ध स्वामी चिद्घनानन्द, शाह अब्दुल्लतीफ़, सचल, रोहल प्रभृति वेदान्त के अद्वितीय विद्वान् भी यहाँ ही अवतीर्ण होकर घोर अशान्ति के समय में भी अपने अमृतमय वचनों से लोगों को आप्यायित करते रहे हैं । यह एक सार्वदेशिक नियम है कि "सब दिन जात न एक समान"।

अधःपात ।

जो देश आज उन्नति के शिखर पर बैठकर अपनी शक्ति के गर्व से संसार को तुच्छ समझ पद पद पर उसकी अवहेलना कर रहा है, वह कल ही ठोकरें खाता हुआ अत्यन्त हीन और करुणाजनक अवस्था में दीख पड़ेगा और जो देश आज हमें तुच्छ व घृण्य प्रतीत होता है वह किसी वक्त संसार का आदर्श कहलावेगा । इसी ही भाव को हृदय में रखकर भारत के कविकुलचूड़ामणि महाकवि कालिदास जी ने "शेष रात्रि कितनी है" इस अभिप्राय से आकाश की ओर देखने वाले कण्व ऋषि के शिष्य से यह श्लोक कहलाया है:-

"यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां,
लोको नियम्यत इवैषदशान्तरेषु॥"

तदनुसार हमारा प्रान्त भी उस अवनति के झमेले में आये बिना न रहा। इसकी स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और परतन्त्रता ने इस पर अपना कब्ज़ा कर लिया। पराधीन अवस्था में प्रायः देशों की जो दशा हुआ करती है वही इस की भी हुई। पेट के कारण तथा धर्मान्ध मौलवियों के असह्य अन्यायों के कारण देश का अपना वेश तो नष्ट हो ही गया किन्तु भाषा भी अरबी व फ़ारसी के सम्पर्क से छूटने न पाई। इतना ही नहीं किन्तु नौकरी पेशा लोगों की लिपि भी देवनागरी के बदले अरबी से निकली हुई "अरबी सिन्धी" हो गई। परन्तु ब्राह्मणों ने अपनी लिपि अर्थात् देवनागरी न छोड़ी और भाषा को भी यथाशक्य विदेशी संसर्ग से बचाया। व्यापारी लोगों की लिपि तो "महाजनी" रही, परन्तु भाषा में वे ब्राह्मणों का ही साथ देते रहे। ये सब बातें मुग़लों के राज्य की अर्थात् सन् १८४३ से पहले की हैं।

मध्यकालीन अवस्था

इसके बाद जब वर्तमान सरकार का राज्य हुआ तब कुछ समय तक यही ढङ्ग जारी रहा परन्तु राज्य की व्यवस्था कुछ ठीक हो जाने पर गवर्नमेंट की ओर से सब से प्रथम कराची में कमिश्नर्स प्रेस स्थापित हुआ। उसमें केवल अङ्गरेज़ी के टाइप थे। तदनन्तर स्कूलों के खुलने की बारी आई। इससे प्रथम स्कूलों का काम मसजिदें और अध्यापकों का काम मौलवी वा मुल्ला लोग देते थे। सरकार ने मात्राओं द्वारा महाजनी अक्षरों को कुछ सुधारकर उन्हें कोर्टों में जारी कर दिया, और इन्हीं अक्षरों में पाठ्य-पुस्तकें छपवाई गईं जो स्कूलों में पढ़ाई जाने लगीं। ऐसा करने का मुख्य कारण यह था कि सिन्ध में ब्रिटिश राज्य की स्थापना बहुत कुछ महाजनों की सहायता से हुई थी। इस नये नियम के कारण, बेचारे "अलिफ़ बे" रटनेवाले नौकरी पेशा लोगों के सिर बड़ी आफ़त आ पड़ी। ये बेचारे मुंशी जी जब नये सिरे से सुधरे हुए महाजनी अक्षर, जो कि "हिन्दू सिन्धी" के नाम से प्रसिद्ध हैं, पढ़ें तब जाकर कहीं इनके पेट में टुकड़ा पड़े, वरना घर में बैठे बैठे मक्खियाँ मारते रहें। इसी कारण इन्होंने अर्थात् सिंध के कायस्थों ने मुसलमानों को उकसाकर इसके विरुद्ध प्रबल आन्दोलन प्रारम्भ किया। इसके साथ ही उन्होंने यह भी चाल खेली कि महाजनों को इस तरह समझा कर शान्त कर दिया कि "आप लोगों को नौकरी तो करनी नहीं और दूसरे ये "हिन्दू-सिंधी" अक्षर आपकी बहियों में लिखे ही नहीं जाते, फिर भी नाहक़ हमें तकलीफ़ झेलनी पड़े, इसमें आपको फ़ायदाही क्या?" 'स्वार्थ मनुष्य से क्या २ नहीं कराता।" बस, महाजन तो शान्त हो गये, मुसलमान और नौकरी पेशा लोगों की बात बन गई। लाचार होकर सरकार को अपनी नीति बदलनी पड़ी। कोर्टों में और स्कूलों में "हिन्दू-सिंधी" के स्थान पर "अरबी-सिन्धी" का प्रभुत्व हो गया। अतएव यही भाषा इस प्रान्त की प्रान्तीय भाषा Vernacular कहलाने लगी। जब इसी ढंग से कुछ समय तक कार्य होता रहा, तब पढ़े लिखे ब्राह्मणों को यह बात कुछ अखरने लगी। उनमें श्रद्धेय स्वर्गवासी श्रीमान् पं० चतुर्भुज ओझा जी मुख्य थे।

पुनः सजीवता

जब ये शिक्षा-विभाग के डिप्टी बनाये गये, तभी से इन्होंने और लोगों को अपने साथ मिला, उनकी तरफ़ से प्रादेशिक सरकार को एक लम्बा चौड़ा प्रार्थना पत्र भिजवाया। तब सरकार ने प्रान्तीय शिक्षा-विभाग को पहिली तीन पुस्तकें अर्थात् पहिली, दूसरी, और तीसरी, अरबी-सिंधी पुस्तकों का अनुवादरूप देवनागरी अक्षरों में छपवाने की आज्ञा दी। तदनुसार पहिली पुस्तक सन्

१८८८ में प्रकाशित हुई। और सन् १८९४ तक दूसरी तीसरी भी प्रकाशित हो गईं। इससे पहिले और पीछे सन् १८८६से करांची,हैदराबाद,शिकारपुर और सक्खर की म्यूनिसिपल्टियों ने अपनी२ तरफ़से संस्कृत पाठशालाएँ खोलदीं और प्रारम्भिक शिक्षा उपर्युक्त ३पुस्तकों द्वारा दी जाने लगी। इससे ब्राह्मण साधू तथा इने गिने वैश्यों के सिवा दूसरों को कुछ भी लाभ न देखकर कराँची की सनातन धर्म सभा ने अपनी प्रारम्भिक पाठशाला की चतुर्थ कक्षा में अरबी सिन्धी के साथ हिन्दी की शिक्षा जोड़ दी। इसके बाद शिकारपुर की प्रियतम धर्मसभा ने रात्रिशाला खोलकर दिन भर स्कूलों में पढ़ने वाले लड़कों के लिये हिन्दी और संस्कृत सीखने का यथाशक्य प्रबन्ध कर दिया और पुस्तकालय तथा वाचनालय भी खोल दिये। इससे भी यथोचित उन्नति न देखकर उसी रात्रिशाला को दैनिक पाठशाला में परिवर्त्तित कर दिया और हिन्दी भाषा के साथ २ महाजनी, अरबी-सिन्धी तथा व्यापारी काम चलाने योग्य अंगरेज़ी भाषा भी संयुक्त कर दी गई। इससे वैश्य लोगों के लड़कों और उसी ढंग की शिक्षा चाहनेवाले अन्य हिन्दुओं को बहुत कुछ लाभ मिल रहा है। इसके बाद हैदराबाद में ब्रह्मचर्याश्रम खुला, तदनन्तर ठट्टे में आर्य समाजियों की ओर से एक कन्या ब्रह्मचर्याश्रम खोला गया और फिर शिकारपुर, सक्खर और दादू में भी क्रम से ब्रह्मचर्याश्रम, आचार्य-कुल और सनातन धर्म-विद्यालय नामों से स्कूल खुलते गये। ये भी अपने ब्रह्मचारियों को हिन्दी की शिक्षा दे रहे हैं। लगभग ढाई वर्षों से सक्खर में मित्रमण्डली की ओर से हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा देने के लिये एक रात्रि-पाठशाला और एक दिन की पाठशाला खुली हैं और अपना काम अच्छी तरह कर रही हैं। इसके सिवा शिकारपुर के योगी महन्त द्वारकानाथ जी एक रात्रि-शाला तथा बाबा दयालुदास जी एक बाला पाठशाला और कुछ रात्रि-शालाएँ खोलकर हिन्दी की भरसक सेवा कर रहे हैं। कन्याओं को भी देवनागराक्षर और हिन्दी भाषा सिखाने के लिये यत्र तत्र बहुत सी पाठशालाएँ खुल गई हैं। कराँची में कुछ हिन्दी हितैषी सज्जनोंके उत्साह से 'हिन्दी साहित्य भवन' नामक वाचनालय के साथ हिन्दी का एक अच्छा पुस्तकालय लगभग तीन वर्षों से खुल गया है।

उन्नति के उपाय

इतना होने पर भी हैदराबाद के कुछ नवयुवकों को सन्तोष न हुआ। उनके मन में यह धुन समाई कि तब तक इन उपर्युक्त कार्यों से देवनागरी अक्षरों और हिन्दी भाषा की वांछित उन्नति न होगी जबतक कचहरियोंमें देवनागरी अक्षरों का प्रचार न होगा, प्रारम्भिक शिक्षा अरबी सिंधी के समान देवनागराक्षरों में भी न दी जायगी, और अंगरेज़ी प्रथम श्रेणी से तृतीय श्रेणी तक हिन्दी की शिक्षा अनिवार्य न की जायगी। आप लोग अच्छी तरह जानते हैं कि ये काम बिना सरकार की सहायता और अजस्र परिश्रम के होने वाले नहीं और यह भी प्रसिद्ध है कि सरकार लोकमत के दबाव के बिना अपनी नीति बदलती नहीं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर उन्होंने गत मार्च मास में नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना की। आरम्भ में कुछ मास तक सभा का मन्त्री होकर सेवा करने का सौभाग्य इस दास को प्राप्त हुआ था। इस सभा की ओर से शीघ्र ही दो रात्रि-शालाएँ और एक वाचनालय खोले गये। सभा ने अपना ध्येय तो स्थिर कर दिया है और उसकी पूर्ति के लिये वह यथाशक्य प्रयत्न भी कर रही है, परन्तु बहुत परिश्रम और अध्यवसाय की आवश्यकता है।

क्या मैं अन्त में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के स्थायी कार्यकर्ताओं से विनीत प्रार्थना कर आशा रख सकता हूँ कि वे जैसे हिंदी के प्रचारार्थ लोकमत जागृत करने के लिए अन्य प्रान्तों में अपने उपदेशक भेजा करते हैं वैसे ही सिन्ध में भी भेजने की कृपा करेंगे?

सम्मेलन का कार्य

भविष्य में यह सम्मेलन विस्तृत और अधिकतर उपयोगी हो, इसके लिये क्या करना चाहिये

(लेखक—श्रीयुत चौबे गोविन्द प्रसादजू देव, युवराज)

उठो, सचेतो, हे प्रिय बन्धो,
होता है हिन्दी उत्थान।
नींद कुम्भकर्णीय त्यागकर,
बिचरो हिन्दी के उद्यान॥
इस आराम सुभग में बिचरैं,
हिन्दी प्रेमी उत्कट बीर।
तन, मन, धन को अर्पण करके,
करते सेवा शुचि रणधीर॥
अस्थी, चर्म, मांस, पिञ्जर से,
प्राण पखेरू करैं पयान।
तदपि न छोड़ैं बान आपनी,
करैं वही जो लीन्हा ठान॥
धन्य धन्य उन प्राणिन को है,
जिन यह प्रण मन लीन्हा धार।
केवल माता के चरणों की,
लेपन कीन्हीं भस्म लिलार॥
जब तक नहिं पुलकावलि तन में,
और न मन में हो आह्लाद।
तब तक सब दिखावटी बातें,
और प्रेम उत्तम निस्वाद॥
गोविन्द बारम्बार विनय है,
चलिये सम्मेलन अनुसार।
उच्च कार्य को करनेवाला,
मिला हमें सुन्दर उपहार॥

आज कल चिन्ताशील, हिन्दी के विद्वानों की यह सम्मति प्रबल हो चली है कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा का मुकुट पहिनावें, और सम्मेलन का भारतीय उच्च सभाओं से प्रथम नम्बर रक्खें। उसके असाधारण प्रेमी उपर्युक्त विचार की सीमा पर पहुँच गये हैं। यह हमारी उन्नति के शुभ लक्षण हैं। सम्मेलन का यह षट हिन्दी दर्शन उपस्थित महानुभावों के समक्ष उपस्थित है। उसके वेही प्रतिनिधि होना स्वीकार कर चुके हैं जो हिन्दी के सुस्वादन में अपना गौरव तथा हिन्दी माता के राष्ट्र भाषा होने अथवा सम्मेलन की उन्नति का महत्व समझते हैं।

यदि किसी देश की संस्था को उच्च लक्ष्य सिद्ध करने के लिये वहाँ की न्यायशीला गवर्नमेन्ट साहाय्य न करे, तो उस संस्था की अचानक मृत्यु का प्रश्न नेत्रों के सन्मुख दिखलाई पड़ता है। अस्तु, यहाँ की गवर्नमेन्ट से साहाय्य मिलना, सम्मेलन को अधिकतर उपयोगी बनाने का सच्चा मंत्र सिद्ध होजायगा—

(१) सम्मेलन के उत्सव की तिथियों में भारत भर में छुट्टी रहना अत्यन्त आवश्यक है इसकी स्वीकृति भारत के सौम्य, विद्या-व्यसनी-विद्वानों द्वारा करालेना मुख्य कर्तव्य होगा। इससे सम्मेलन का महत्व बढ़जाने में किसी प्रकार की

बाधा तथा शंका न समझनी चाहिये।

(१) जब सम्मेलन की छुट्टी भारत भर में रहेगी तो यह संभव नहीं कि समस्त हिन्दी-भक्तों के अतिरिक्त अन्य हिन्दू भाई उत्सव में सम्मिलित न हों। प्रतिनिधियों का तो एक बृहत् मेला दृष्टिगोचर होगा। छुट्टी होने के कारण सम्मेलन की स्मृति हिन्दी-माता को उच्च-स्थान देने के लिये सदा प्रेमियों के हृदय में हिलोरें मारती रहेगी। और उन प्रतिनिधियों द्वारा हिन्दी का प्रचार तथा सम्मेलन का गौरव अनायास ही बढ़ सकेगा—

(२) हिन्दुओं की कुछ तिथियाँ ऐसी हैं जिन पर पंजाबी, बङ्गाली, मद्रासी और प्रत्येक भाषा भाषी तथा जाति एक चित्त से, एक धर्म से उपवास करना और आनन्द मनाना धर्म समझती है। उसी प्रकार सम्मेलन की तिथियाँ हिन्दुओं का धार्मिक मुख्य त्यौहार मानी जायँ और उन तिथियों पर हिन्दी माता की पूजा भी की जाय।

(२-अ) सम्मेलन की तिथियाँ निश्चित हो जाने पर बड़े २ नगरों में मोटे अक्षरों के विज्ञापन ऐसी जगह पर लगाये जायँ जहाँ लोगों की अधिक भीड़ होती हो या जो लोगों के चलने फिरने का विशेष मार्ग हो। तीर्थ स्थानों में भी उपरोक्त विज्ञापन लगाना लाभदायक होगा। क्योंकि ऐसे स्थानों में ग्रामीण नागरिक सर्व सामाजिक तथा धार्मिक लोग एकत्रित होते हैं।

(३) सम्मेलन की छुट्टियों में कुछ रेल व्यय भी कम कराना आवश्यकीय होगा। इस बात के स्वीकृत हो जाने पर अवश्य छोटे बड़े हिन्दी माता के अनुरागी सम्मेलन में पहुँच सकेंगे।

(४) भारत में जितनी भाषाओं का व्योहार होता है प्रत्येक भाषा में कुछ पत्र अवश्य किसी न किसी रूप में प्रकाशित होते हैं। इसलिये उन पत्रों में हिन्दी की और सम्मेलन की विशेष उल्लेख के साथ चर्चा की जावे।

(५) डाक-विभाग, रेल-विभाग और कचहरियों में सम्मेलन का महत्व प्रदर्शित करने के लिये भरसक उपाय करना चाहिये। ईश्वर मेरे इन विचारों को अपनी दयादृष्टि द्वारा शुद्ध तथा सफल कीजिये—इत्यलम्।

सम्मेलन ने अपने ६ वर्षों में अभी तक कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिसको हम महत्व शब्द से भूषित करें। हाँ! इसकी ओर भारतीयों का चित्त अधिक आकृष्ट होने के कारण इसको उच्च दशा में पहुँच जाने की बहुत सम्भावना है—

विनती श्री बृज चन्द नन्द नन्दन से है कर जोरे।
हिन्दी होय प्रचार जगत में यह बांछा मन मोरे॥
हिन्दी माता, सब गुण दाता, यह मन भाता मेरे।
तेरी सेवा करूं चित्त से अरु गुण गाऊं तेरे॥

हिन्दी बिन निन्दी सब बातें,
चहै गुणी विद्वान् महान्।
एक बार जय जय हिन्दी की,
बोलैं हिन्दू हिन्दुस्तान॥

यावत नभ मंडल में दमकैं,
सूर्य और शशि तारे।
तावत हिन्दी विद्युत चमकैं,
भारतवर्ष मझारे॥

गोविन्द धार लीन यह मन में,
बरु शरीर में रहैं न प्रान।
करिहौं सेवा तन, मन, धन से,
हिन्दी हमने लीन्हीं ठान॥

सम्मेलन द्वारा स्थापित हिन्दी परीक्षाओं की उपयोगिता और उनके कार्य्यक्रम पर विचार

[लेखक—बाबू प्रयाग नारायण संगम]

हिन्दी साहित्य सम्मेलन को स्थापित हुये अभी केवल पाँच छः वर्ष ही का समय हुआ है, परन्तु अपने इस बालवय में ही उसने कई एक काम ऐसे किये हैं, जिनसे उसका परिचय प्रायः प्रत्येक सुपठित व्यक्ति को हो गया है और होता जाता है।

सम्मेलन को सुप्रसिद्ध करनेवाले कार्य्यों में उसकी नियत की हुई परीक्षाओं ने विशेष भाग लिया है; सच तो यह है कि इस एक ही कार्य्य ने सम्मेलन को बँगला, मराठी, गुजराती, आदि प्रान्तिक भाषा सम्मेलनों से आगे बढ़ा दिया है।

हाँ, यह अवश्य है कि उन २ प्रान्तिक भाषाओं को अपनी २ प्रान्तीय यूनिवर्सिटियों की शिक्षा-स्कीम द्वारा बहुत अधिक बल प्राप्त है, इसलिये उन्हें ऐसे उद्योग की कदाचित् आवश्यकता भी नहीं। परन्तु हिन्दी को यदि प्रयाग युनीवर्सिटी द्वारा ऐसा बल प्राप्त भी होता, (या हो जाय) तो भी इन परीक्षाओं की आवश्यकता अनिवार्य्य ही बनी रहती (या रहैगी); कारण कि हिन्दी अपने प्रान्तिक रूप के अतिरिक्त राष्ट्रीय रूप से सार्वदेशिक है। अतएव एक सार्वदेशिक यूनीवर्सिटी के बिना हिन्दी की ये परीक्षायें व्यर्थ कैसे हो सकती थीं।

फिर हिन्दी की इस वर्तमान अवस्था में जब कि किसी यूनीवर्सिटी की उच्चशिक्षा में उसकी पूछ नहीं है ऐसी परीक्षाओं की कितनी आवश्यकता है यह किसी भी राष्ट्र भक्त को समझाना न होगा! वास्तव में उस मस्तक का हम लोगों पर अपार आभार है, जिसमें यह परीक्षा सम्बन्धी कल्पना उठी होगी।

यदि हम सम्मेलन के इस कार्य को "भारतीय हिन्दी परीक्षक विश्वविद्यालय" के नाम से अभिहित करें तो कदाचित् अतिशयोक्ति न होगी! सुनते हैं विदेशों में बहुतेरी यूनीवर्सिटियाँ इस प्रकार की हैं जो शिक्षा की व्यवस्था न करके केवल परीक्षा ही लेती हैं, तब हमें भी सम्मेलन के परीक्षा कार्य्य को उपरोक्त नाम देने में क्यों हिचकना चाहिये?

यदि इसे हम "हिन्दी परीक्षक भारतीय विश्वविद्यालय" कह सकते हैं, तो फिर यह निस्सन्देह कहेंगे, कि इसका पुण्य कार्य्य कई बरसों तक पचास लाख की चिन्ताओं में चूर रह कर उबरने वाले हिन्दू विश्वविद्यालय के समकक्ष—वरन् कई बातों में अधिक महत्व का है।

इस संस्था के कारण भारतेन्दु जी की स्वर्गीय आत्मा भी अपने प्रिय भारतीयों को कृतज्ञता पूर्ण दृष्टि से देख रही होगी क्योंकि उनकी "शुद्ध हिन्दी की यूनीवर्सिटी खोलने की प्रिय हार्दिक इच्छा" उनके जीवन काल के लगभग ३० वर्ष पीछे अब पूरी होती दिखाई पड़ती है!

इन परीक्षाओं की उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ कहना मानों रेखा गणितीय स्वयं सिद्धों केसिद्ध करने का हास्यजनक कौतूहल करना है; फिर भी सम्मेलनीय लेख सूची में यह एक विषय देख कुछ कहने का साहस करना व्यर्थालाप न होगा! अब मैं क्रमशः कुछ ऐसी बातों का विवेचन करता हूँ

जिनसे इन परीक्षाओं की उपयोगिता स्पष्टतः प्रतीत हो:—

१--इन परीक्षाओं द्वारा भारत भर में हिन्दी प्रचार का कार्य्य सुगमता से होगा।

युक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त आदि का विचार न करके गुजरात, बम्बई, बङ्गाल, पञ्जाब, आदि प्रान्तों की बात चलावें, तो वहाँ हिन्दी का आरम्भिक शिक्षण भी सुलभ नहीं है, हिन्दी में राष्ट्रीयभाषा का गुण होने से विभिन्न प्रान्तीय सज्जन उसे बोल समझ भले ही लें, परन्तु हिन्दी का साहित्य-रस पान करने की सुविधा उन्हें कहाँ है ?

फिर यदि कहीं शिक्षा प्राप्ति का कोई साधन भी मिला तो निरुद्देश्य परिश्रम नहीं होता, इतने पर भी यदि किसी ने कुछ सीख साख पाया तो उसे हिन्दी का यथोचित ही ज्ञान हुआ ऐसा विश्वास किस प्रकार से किया जा सकता है ?

इन सब कठिनाइयों को सम्मेलनी परीक्षाओं ने अंशतः हल कर दिया है; हिन्दी सम्बन्धी उपाधि प्राप्ति के हेतु अन्यान्य भाषा के भी धुरंधर विद्वान् इस ओर दृष्टि डालेंगे, साथ ही युक्तप्रान्तादि (जहाँ हिन्दी का प्रारम्भिक शिक्षण होता है) के लोग भी अपने साहित्य के प्राचीनतम भाग की ओर चल सकेंगे जिससे प्राचीन साहित्य का गठन योग्यता पूर्वक होगा। फलतः भारत के सभी भागों में ये परीक्षायें हिन्दी का डङ्का पीट देंगी। जिससे इसका प्रसार राष्ट्रीय भाषा के रूपमें अति शीघ्र हो जायगा।

२--हिन्दी साहित्य के एक परिपूर्ण प्राचीन भण्डार से लोगों का परिचय होगा।

वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, नाटक, मौलिक-उपन्यास, यात्रा चरित्र, चरित्र आदि विषयों से हिन्दी का भण्डार भले ही हीन कहा जाय परन्तु अपने काव्याङ्ग में वह भलीभाँति पूर्ण है, उसकी पूर्णता यहाँ तक है कि वह भारत की अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं से बढ़ा चढ़ा तो है ही, ज्ञाता लोगों का कथन है कि सभ्य जगत की किसी भी भाषाका यह अङ्ग उसकी बराबरी नहीं कर सकता।

काल-चक्र से भाषा-भण्डार के इस विभाग पर ऐसी कुछ धूल पड़ी थी कि उसे या तो लोग देखते ही न थे या उसके केवल कुत्सित कुरुचि उत्पादक भाग को ही देख पाते थे, इसी का परिणाम यह हुआ था कि बङ्गाली भाई तो हिन्दी को दरबानों (चौकीदारों) की बोली कहने लगे थे, और महाराष्ट्र बन्धु उसे रांगडी बोली नाम देकर हीनातिहीन समझ रहे थे। गुजराती बन्धु हिन्दी के परिचय तक से अज्ञात प्रतीत होने लगे थे।

ऐसे समय—राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता के समय—जब पुनः हिन्दी ही का नाम आगे आया तो सभी की दृष्टि उस पर गई; और सभी भाई अपनी २ अनुकम्पा का भाग दे, उसके शून्य भण्डार भरने में प्रयत्नवान हुये।

परन्तु अब तक भी हिन्दी साहित्य की अतिहीनता पर सबके चार आँसू गिरते जाते हैं। पुरानी पुस्तकों में भी गोस्वामी जी की रामायण के अतिरिक्त कदाचित्‌ही अन्य प्रान्तीय भाषाभाषी सज्जन किसी हिन्दी मौलिक ग्रन्थ का नाम जानते रहे हों, हाँ युक्त प्रान्त, बिहार, मध्य प्रदेश में भलेही सूरदास के पद व कबीर के बीजक तथा ऐसीही कुछ अन्य धार्म्मिक गाथाओं से लोग जानकार थे। परन्तु इतनेही से हिन्दी के काव्याङ्ग-पूर्णता का विश्वास लोगों को कैसे हो सकता था ? तब काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के खोज सम्बन्धी कार्य्यने इस विषय पर बहुत अधिक प्रकाश डाला बहुत सी अलभ्य पुरानी पुस्तकें प्रकाशित भी हुईं परन्तु फिर भी इस विषय की तादृश चर्चा न हुई, यह तो अब हुई जब सम्मेलनी परीक्षाओं में भूषण, देव, दास के ग्रन्थ और हमीरहठ आदिकों के नाम आये; तभी तो सर्व साधारणमें विशेषतः महाराष्ट्र व

बङ्गाल प्रान्तों में यह चर्चा फैली कि छत्रपतिशिवाजी जैसे राष्ट्र रचयिता के दरबार में भी हिन्दी भूषण—भूषण से सत्कवि थे। अब तो वह समय है कि महाराष्ट्र या बङ्गाली आदि बन्धु हिन्दी को भी एक बनी बनाई सभ्य भाषा मानने लगे हैं, उस के काव्याङ्ग की मौलिकता को स्वीकार करने लगे हैं। जहाँ तहाँ पड़ोसी हिन्दी-भाषाभाषी विद्वान् भाइयों से पूछने लगे हैं कि हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हम किस क्रम से पठन आरम्भ करें इत्यादि।

कुछ नवयुवक बन्धुओं का यह विश्वास है कि हिन्दी का काव्याङ्ग कितनाही उच्च क्यों न हो परन्तु उसमें नायक नायिका भेद और शृङ्गार रस की चरित्र नाशक तरङ्गों के अतिरिक्त और है ही क्या? वे लोग कहने लगते हैं कि न तो हिन्दी में राष्ट्रीय भाव सम्पन्न कविता है न जातीयता उत्पन्न करनेवाले विचार हैं; न स्वदेश प्रेम के अङ्कुरोत्पादक बीज हैं; न सामाजिक न प्राकृतिक वर्णनों पर ही कविता है. तब फिर हम उसमें देखें भी क्या? उपरोक्त आक्षेपोंका हम एक यही संक्षेप उत्तर देना चाहते हैं कि यह केवल अज्ञानता मूलक आक्षेप हैं। यदि हमारे देश बन्धु कृपा कर तद्विषयक ज्ञान प्राप्त करें; तो कदाचित् उन्हें अपने इन आक्षेपों को वापस लेना पड़ेगा। कुछ लोग यह भी कहते हैं. कि हिन्दी काव्य कुछ ऐसी एक भाषा में है (उनका प्रयोजन विशेषतः ब्रज भाषासे होता है) जो महाराष्ट्र व बङ्गालियों को सुलभ साध्य नहीं।

बन्धुओ! बिना सीखे तो कुछ भी सुलभ साध्य नहीं होता, क्या आप अपनी ही मातृभाषा का उच्च साहित्य बिना सीखे जान लेते हैं? यदि नहीं तो हिन्दी ही पर यह दोषारोप क्यों? हिन्दी की इतनी ही खूबी क्या कम है कि आप बिना सीखे समझे उसे बोलचाल कर अपना काम चला लेते हैं। तात्पर्य यह कि हिन्दी की ये परीक्षायें प्राचीन भाषा भण्डार की कुञ्जी स्वरूप हैं, अब राष्ट्रीयता प्रेमी तथा साहित्य प्रेमी सभी देश बन्धु इस कुञ्जी के द्वारा उस भण्डारगृह में प्रवेश कर सकेंगे और अपने शोधों से भारतीय राष्ट्र को सुसम्पन्न करेंगे।

३-विद्या की नवीन २ शाखाओं से हिन्दी वृक्ष पल्लवित होगा।

यद्यपि अर्थ शास्त्र, विकाशवाद, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, आदि की कुछ पुस्तकें हिन्दी में दिखाई पड़ने लगी हैं. परन्तु उनसे सर्व साधारण का विशेष लाभ दृष्टिगोचर नहीं होता, उनको वही लोग प्रायः लेते, रखते हैं, जिन्हें अंग्रेजी भाषा द्वारा प्रथम ही से उस विषय का ज्ञान होता है। ऐसे लोग—केवल मातृभाषा प्रेम से ही ऐसी पुस्तकों का संग्रह करते हैं या कुछ समाचारपत्रोंके हिन्दी जाननेवाले पाठक भी ऐसी पुस्तकों से परिचित होते हैं, परन्तु जिन तत्वों का ज्ञान देशके आबाल वृद्ध को होना चाहिये, उन्हें यदि ऐसे लोगों ने जाना भी तो क्या हुआ।

इन परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में ऐसी पुस्तकों का चुनाव होने से इन अर्वाचीन वैज्ञानिक शास्त्रों की ओर भी लोगों की प्रवृत्ति अनायास होगी, परिणाम यह होगा कि नये २ विचार अति शीघ्र देश भर में फैलकर उन्नति का कारण बनेंगे।

जिन विषयों के साधारण ज्ञान के हेतु भी किसी विदेशी भाषा का सीखना आवश्यक होता था, उसी ज्ञान का प्रचार केवल मातृ-भाषा द्वारा यह परीक्षा करेगी। फिर अपनी भाषा द्वारा ही लोग पश्चात्य तत्ववेत्ताओं से प्रत्यक्ष बात चीत करके केवल एक देशी राष्ट्र भाव ही को नहीं वरन् सांसारिक भ्रातृभावकी भी नींव डालेंगे और किसी समय के सजीव वेदान्त का प्रभाव भारत के पुनर्जीवन में परिणत होगा।

४-योग्य लेखक अध्यापक, सम्पादक आदि साहित्य प्रेमी अधिकता से तय्यार होंगे।

अब भी लेखक हैं, परन्तु उनमें जो लेखक मिलें

जाने योग्य हैं, वे प्रायः सभी अन्यान्यभाषा ज्ञान के सहारे हिन्दी के सुलेखक हो सके हैं; सम्पादकों का भी ठीक यही हाल है, हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि केवल इन परीक्षाओं के सहारे ही बिना अन्यान्य भाषा ज्ञान के कोई योग्य लेखक वा सम्पादक हो जायगा, वरन् ऐसे व्यवसाइयों को संसार को जितनी ही अधिक भाषाओं का ज्ञान होगा वे अपने काम में उतने ही उत्कृष्ट भी होंगे। हमारा प्रयोजन तो यह है कि इन परीक्षाओं के द्वारा केवल अपनी मातृभाषा के सहारे उपरोक्त कार्य्य कर सकनेवाले योग्य सज्जन प्रारम्भिक तय्यारी कर सकेंगे; रही अध्यापकों की बात सो युक्त प्रान्तादि में उनके तय्यार किये जाने के हेतु वर्नाक्यूलर ट्रेनिङ्गक्लासों व नार्मल स्कूलों की व्यवस्था है, परन्तु उनमें अन्यान्य विषय के झमेलोंसे भाषा साहित्य का तादृश ज्ञान नहीं हो पाता; साहित्य प्रेमियों के विषय में भी यही कहा जा सकता है कि यद्यपि सम्पर्क से लोगों में साहित्य प्रेम तो जागृत हो जाता है परन्तु उसे कोई शाह-राह या उपयुक्त मार्ग न मिलनेसे वह साहित्य नगर की दुर्गन्धित गलियों में ही भटक जाता है; ये परीक्षायें इन सभी त्रुटियों के दूर करने का एक सुलभ उपाय हैं:—

५—पुस्तकों की बिक्री से प्राचीन ग्रन्थों का पुनरुद्धार तथा नवीन ग्रन्थों का शीघ्र प्रकाशित करना सम्भव होगा।

अभी तक तो कुछेक धार्मिक व वैद्यकीय ग्रन्थों को छोड़कर अन्याय ग्रन्थों को लोग ख़रीदते ही कहाँ थे?

इधर तो उनके खरीदार नहीं उधर प्रकाशक-गण भी यह बात जान कर बड़े साहस से यदि किसी ग्रन्थ की हज़ार पाँच सौ प्रतियाँ छपा लेते थे, तो लगभग दो सौ से ही सब ख़र्च वसूल करने के इरादे से मूल्य बहुत बढ़ाकर रखते थे; बस फिर उनका प्रचार द्वार और भी रुकता था।

कभी २ किसी ग्रन्थ के खोजकर छपवाने आदि में महान व्यय हो जाता है सो परिणाम में पुस्तक का रूप छोटा होने पर भी मूल्य खूब बढ़ाकर रखना पड़ता है, काशी की नागरी प्रचारिणी आदि संस्थाओं की कई पुस्तकें मेरे इस कथन का प्रमाण हैं।

परीक्षा के उद्देश्य से लोगों को यह पुस्तकें खरीदनी ही पड़ेंगी, और परीक्षार्थियों की संख्या बढ़ने से इनकी बिक्री भी बढ़ जायगी: ऐसी दशा में प्रकाशकों का भी भय दूर होगा, तब सम्भव है कि ऐसी प्रचार योग्य उत्तमोत्तम पुस्तकें कुछ दिनों में स्वल्प मूल्य पर ही सर्व साधारण को सुलभ हो जाँय।

इधर तो पठन पाठन द्वारा ज्ञान वृद्धि, उधर पुस्तकों के मूल्य की कमी,बस उत्तमोत्तम पुस्तकों का प्रसार ही समझिये, साथ ही पुस्तक प्रकाशक गण, नागरी प्रचारिणी सभायें व सम्मेलन आदि भी योग्य समाश्रय पाकर नित्य नवीन २ छिपे रत्नों को भाषा भण्डार से ढूँढ़कर लोगों के सामने लाया करेंगे।

ठीक ऐसी ही दशा नवीन वैज्ञानिक व शास्त्रीय ग्रन्थों की भी समझिये, जहाँ पढ़नेवाले व खरीदनेवाले मिलते गये वे दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति से प्रकाशित कर भाषा भण्डार के नवीन शून्याङ्ग को भरपूर कर देंगे।

६—संसार के नवीन साहित्य भण्डार का ज्ञान केवल हिन्दी ही द्वारा लोगों को सुलभ होगा।

केवल इसी उद्देश्य से विदेशी भाषा पढ़नेवाले अपना समय व मस्तिष्क नष्ट न करके इधर कुछ अधिक कार्य्य कर सकेंगे। इन परीक्षाओं में तत्वज्ञान, विज्ञान, विकाश वाद, तर्क,

अर्थ शास्त्र आदि विषयों का समावेश हमारे उपरोक्त कथन का सुपुष्ट प्रमाण है, फिर यदि बिना शिक्षा के प्रबन्ध के ही इन परीक्षाओं ने इन नवीन२ विषयों का ज्ञान केवल मातृभाषा की परीक्षाओं द्वारा ही भारत में फैला दिया, तो विरोधियों को यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि वैज्ञानिक विषयों का शिक्षण भी बिना विदेशी भाषा के शक्य है।

इन परीक्षाओं की उपयोगिता के सम्बन्ध में और बहुत कुछ कहने की इच्छा रखते हुये भी व्यर्थालाप के विचार से आज हम इस विषय में अपने विचारों को यहीं विराम देते हैं अब आगे परीक्षाओं के कार्य्यक्रम पर कुछ विवेचना करता हुआ यह लेख समाप्त होगा।

१—तीनों परीक्षाओं में समय साम्यता का विचारः—

सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा परीक्षाओं के नियुक्त कोर्स में ऐसी साम्यता नहीं है, जैसी कि सरकारी यूनीवर्सिटियों के कोर्स में होती है, अर्थात् जैसे वहाँ एक कक्षा पास करके अगली कक्षा का कोर्स एक वर्ष में सरलता पूर्वक विद्यार्थीगण पूर्ण कर सकते हैं, वैसा ही इन परीक्षाओं का परीक्षार्थी प्रायः नहीं कर सकता; हाँ यदि उसे प्रथम ही से योग्यता प्राप्त है तो बात और है।

अपने कथन को निम्नलिखित प्रकार से और भी स्पष्ट करता हूँ, जैसे प्रथमा में गणित केवल त्रैराशिक तक है अब यदि केवल प्रथमा पास एक वर्ष में ही गणित विषय लेकर मध्यमा की तैयारी करना चाहे तो कैसे सम्भव है, इसी प्रकार साहित्य, इतिहास, विज्ञान आदि सभी विषयों में प्रथम पास हुआ व्यक्ति मध्यमा के हेतु वैसे किसी भी विषय की तय्यारी एक साल में नहीं कर सकता, प्रायः सभी सज्जन विवरण पत्रिका देखकर मेरे इस कथन का विचार कर सकते हैं। अतएव यहाँ प्रत्येक विषय के कोर्स आदि की तुलना नहीं की गई।

फिर मध्यमा पास करके यदि कोई उत्तमा के हेतु तय्यारी करे तो उसे भी ऐसी ही अड़चनें आती हैं। भला साहित्य लेनेवाला एक ही साल में अपने भी पाठ्य ग्रन्थ देखकर अन्य दो प्रान्तिक भाषाओं की तय्यारी कैसे कर लेगा? उस पर भी लगभग दो सौ पृष्ट का एक लेख लिखना इसी प्रकार अन्यान्य विषयों की तैयारी भी एक वर्ष में कष्ट—साध्य ही है।

इस त्रुटि को दूर करने के दो ही उपाय हैं, कोर्स का घटाना किम्बा समय विवर्द्धन; अङ्ग्रेज़ी के उच्च शिक्षण (कालेज की पढ़ाई) का टक्कर लेने के हेतु समय बढ़ाना ही अधिक समुचित है; सो भी प्रथमा का नहीं; क्योंकि इसकी सरलता मुसलमान तथा अन्यान्य प्रान्तिक बंधुओं को अपनी ओर आकर्षित करेगी; परन्तु मध्यमा व उत्तमा का समय दो दो वर्ष का नियत करके कुछ कोर्स भी बढ़ा देना अनुचित न होगा।

आगे बताई हुई अवस्थाओं में प्रथमा की छूट भले ही दी जाय परन्तु मध्यमा पास करके ही उत्तमा में सम्मिलित होने का प्रचलित नियम अत्यावश्यक है। हाँ, प्रत्येक प्रकार की परीक्षायें प्रति वर्ष होती रहें, साथ ही यदि कोई एक वर्ष ही में मध्यमा पास करना चाहे, तो विशेष अवस्थाओं में वह उसकी प्रथम वार्षिक परीक्षा से रक्षित कर दिया जाय। उपाधि सम्बन्धी नियम सब भाँति सराहनीय हैं, उसमें कुछ संशोधन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

२-परीक्षा सम्बन्धी पाठ्य विषय व पुस्तकें

इन परीक्षाओं के पाठ्य विषयों तथा पुस्तकों का चुनाव योग्यता पूर्वक हुआ है, इसलिये नीचे लिखे हुये कुछ सुधारों के अतिरिक्त इस विषय में कुछ वक्तव्य नहीं है।

(अ) प्रथम वर्ष प्रथमा परीक्षा में साहित्य सम्बन्धी पाँच पत्र थे इस वर्ष केवल तीन ही रक्खे

गये, मैं उचित समझता हूँ कि समान योग्यता का अपठित गद्य पद्य विषयक एक प्रश्न पत्र और रक्खा जाय।

(ब) इसी प्रकार मध्यमा में भी अपठित गद्य पद्य का एक प्रश्न पत्र और बढ़ाकर साहित्य सम्बन्धी पर्चों की संख्या पाँच कर देनी चाहिये।

(स) यद्यपि अभी तक नवीन विवरण पत्रिका मुझे प्राप्त नहीं हुई; परन्तु सम्मेलन पत्रिका द्वारा प्रकाशित प्रस्तावों पर उत्तमा परीक्षा के लिये भी कुछ विचार प्रकट करता हूँ।

उत्तमा में साहित्य विषय लेनेवाले को दी हुई सूची में से कोई भी दो प्रान्तिक भाषाओं का ज्ञान आवश्यक रक्खा गया है। अच्छा, अब सोचने की बात है कि एक युक्तप्रान्तवासी यदि साहित्य विषय ही लेना चाहे तो उसे बङ्गला, गुजराती, या मराठी सीखने की सुविधा कहाँ हो सकती है? उसके लिये तो कोई भी भिन्न प्रान्तिक भाषा सीखना दुःसाध्य है फिर दो एक साथ सीखना तो असाध्य ही सा समझिये।

हाँ, महाराष्ट्र या गुजरात प्रान्त निवासी यदि यह विषय लेना चाहता है तो भले ही उन्हें दोनों अन्य भाषाओं के सीखने की सुविधा हो सकती है; परन्तु उतना ही ध्यान मुख्य विषय की ओर कम हो जायगा। बङ्गाली भाइयों को भी हिन्दी के साथ बङ्गलातिरिक्त कोई अन्य भाषा सीखना दुःसाध्य होगा।

इधर प्रान्तिक भाषाओं का जो संयोग लगाया गया है वह भी अतिप्रयोजनीय और बड़ी दूरदर्शिता का है; तब उचित यही प्रतीत होता है कि भाषा साहित्य लेने वाले को केवल एक ही अन्य भाषा लेने के हेतु बाध्य किया जाय।

३-परीक्षार्थियों को निम्न लिखित छूटें दी जाने के नियम पर विचार करना उचित है।

१-प्रथमा के परीक्षार्थियों से, यदि वह नीचे लिखी हुई योग्यता का प्रमाण दे सकें, तो गणित, इतिहास, भूगोल, के प्रश्न पत्रों की परीक्षा न ली जाय! यानी यह विषय उन्हें छूट में मिले जिस से उन्हें भाषा साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने का खूब अवकाश मिले, वे विषय तो उनके जाने हुये ही होते हैं।

नीचे लिखी हुई योग्यतावालों को उपरोक्त छूट मिलनी चाहिये।

(अ) संयुक्तप्रान्तीय वर्नाक्यूलर फाइनल पास

(ब) संयुक्तप्रान्तीय वर्नाक्यूलर ट्रेनिङ्ग पास या नार्मल पास

(स) महाराष्ट्र प्रान्त वाले, मराठी ७ सातवीं कक्षा पास

(द) बिहार प्रान्तीय मिडिल पास

(ज) मध्यप्रान्तीय मिडिल पास

(ह) किसी प्रान्त का निवासी किसी भी भाषा में उपरोक्त योग्यता के सदृश योग्यता का प्रमाण पत्र रखनेवाला।

२—संयुक्त प्रान्तीय नार्मल पहिली श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाला व्यक्ति बिना प्रथमा पास किये ही मध्यमा की परीक्षा दे सके।

३—मैट्रिक पढ़ता हुआ वा पास व्यक्ति भी प्रथमा परीक्षा से बचा दिया जाय।

(४) परीक्षाओं का विस्तार और उनके केन्द्रः—

उत्तमा का केन्द्र केवल प्रयाग रख कर बहुत विचार का कार्य किया गया। सुदूर प्रान्त वासी परीक्षार्थी का आवागमन व्यय भले ही कुछ अधिक हो, परन्तु परीक्षा के महत्व सूचकता के साथ२ अन्यान्य कई लाभ भी हैं; इसी प्रकार मध्यमा के केन्द्र भी कुछ परिमित होने चाहिये, मतलब यह कि उपाधि प्रदान करनेवाली परीक्षाओं के केन्द्र बहुतायत से न हों। मध्यमा के लिये मुझे प्रयाग, काशी, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, इन्दौर, ब्यावर,

बड़ौदा, पूना, मद्रास, कलकत्ता, दरभंगा आदि स्थान उचित प्रतीत होते हैं।

रही प्रथमा परीक्षा सो इसके केन्द्र खूब विस्तृत होने चाहिये, यदि भारत भर में, सौ के लगभग हो जायँ तो भी बहुत नहीं हैं। मेरी हार्दिक आकांक्षा तो यहाँ तक है कि इस परीक्षा के केन्द्र फ़िजी, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा आदि उपनिवेष तथा अमेरिका, इंगलेण्ड, जापान, जहाँ से कि भारतवासियों का आवागमन सम्बन्ध रहता हो, नियत किये जावें, हिन्दी के सुपूतों का कर्तव्य है कि हिन्दी को हिन्द व्यापिनी बनाने के अतिरिक्त जगत व्यापिनी बनाने के महोच्च लक्ष पर ध्यान रक्खें।

(५) सम्मेलनी शिक्षालय

यदि हिन्दी हितैषी सज्जन थोड़ा सा ही प्रयत्न करें तो यह "हिन्दी परीक्षक विश्वविद्यालय" बिना ही प्रयास शिक्षा दायक विश्वविद्यालय भी बन सकता है इसके हेतु कुछ उपाय नीचे लिखे जाते हैं आशा है कि हिन्दी हितैषीगण इन पर विचार करगे।

१—भारतवर्ष में बहुतेरी शालायें (चाहे वे सनातनी, समाजी, जैनी आदि कोई भी हों) लोगों ने निज के ख़र्च या चन्दे से खुलवा रक्खी हैं, उन का पाठ्य क्रम प्रायः अपना२ प्रान्तीय सरकारी यूनीवर्सिटियों के पाठ्य क्रम का अनुकरणही होता है, ऐसी शालाओं के अध्यक्षगण यदि उनमें सम्मेलनी परीक्षाओं की पढ़ाई का प्रबन्ध करें तो वेही मानों सम्मेलन के शिक्षालय हो गये, कम से कम प्रथमा की पढ़ाई का प्रबन्ध बहुतेरी शालाओं में अध्यक्ष की इच्छा मात्र से ही हो सकता है। व्यावर की सनातन धर्म्म पाठशाला, कलकत्ते का विशुद्धानन्द विद्यालय आदि तथा इंदौर की कई एक महाजनी शालायें मेरे कथन का उपयुक्त प्रमाण हैं।

२—गुरुकुल, ऋषिकुल, आदि अपने स्वतंत्र पाठ्यक्रम रखनेवाले विद्यालय भी अपने यहाँ प्रथमा तो क्या वरन् मध्यमा व उत्तमा तक की पढ़ाई का प्रबन्ध सुभीते से कर सकते हैं।

३—डी. ए. वी. कालेज और कन्या महाविद्यालय जालंधर आदि में भी स्पेशल क्लासों की भाँति इस पढ़ाई का प्रबंध हो सकता है।

४—प्रत्येक देशी राज्य के देशी भाषा शिक्षण की स्कीम प्रायः स्वतंत्र है, वे चाहे तो अपने यहां के हिन्दी का शिक्षण क्रम इस पढ़ाई से मिला दें, या यदि उन्हें कारण वस अपने यहाँ का पाठ्य कोर्स किसी यूनीवर्सिटी से ही सम्बन्धित रखना है, तो राज्य के किसी उपयुक्त स्थान में एक ऐसा भी विद्यालय खोलें जिसमें सम्मेलन की इन परीक्षाओं के कोर्स की पढ़ाई का प्रबन्ध हो सके।

५—प्रवासी भारत वासी अपने२ प्रवासस्थान में भी उपरोक्त उद्योग करें, सम्भव है सफलता हो, और यह संस्था सत्यही विश्वविद्यालय होजाय।

६—संयुक्तप्रान्तीय वर्नाक्यूलर फाइनल पास या पढ़नेवाले सभी विद्यार्थी सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में थोड़ेही प्रयत्न से सम्मिलित हो सकें हैं उस कोर्स में एक विषय अपठित कोर्स व निवन्ध का है यदि उद्योगी अध्यापक इस विषय के शिक्षण समय में प्रथमा के नियत कोर्स की शिक्षा दिया करें तो अपना काम करते हुये भी कुछ योग्य विद्यार्थियों को वह सम्मेलन की प्रथमा पास करा सक्ते हैं सम्भवतः शिक्षा विभाग भी अपने ऐसे क्रिया शील अध्यापक से प्रसन्न ही होगा; बस अभी इस विषय में इतनाही विचार प्रकट करना अलम् समझता हूँ।

——:o:——

मिश्रित

हिन्दी भाषा और भारतीय राष्ट्र

[लेखक—बाबू अयोध्या प्रसाद वर्म्मा]

वर्तमान समयमें भारतकी राष्ट्रीय उन्नतिके हेतु हिन्दू और मुसलमानों का जटिल प्रश्न प्रथम उपस्थित होता है। भारतवर्ष में हिन्दू और मुसलमानों का सम्बन्ध प्रायः सातसौ वर्षोंसे है; इन सातसौ वर्षों में ऐसा कोई वर्ष बिरलाही बीता होगा, ऐसे कोई बिरलेही मुसलमान अनुशासक भारतवर्ष के राज-सिंहासन पर बैठे होंगे, जिस वर्ष में तथा जिन अनुशासकोंके राजत्व समय में उपर्युक्त दो जातियाँ परस्पर मित्रभावसे रही हों। ऐसी अवस्था केवल भारतवर्षकी ही नहीं है। प्रत्युत जिन जिन देशोंमें मुसलमानोंका भिन्न धर्म्मावलम्बियोंसे ऐसाही सम्बन्ध था और है, वहाँ वहाँही अशान्तिमय जीवन व्यतीत होता था, और हो भी रहा है। मरक्को के मूर मुसलमानों ने बहुत वर्षों तक स्पेन पर राज्य किया, तुर्कियोंने भी युरोप के दक्षिण-पूर्व अंशों में सुदीर्घ राज्य किया और कुछ अंश अब भी तुर्काधीन है; इन प्रान्तोंकी वैसी ही विप्लवमय अवस्था हुई थी और हो भी रही है। मुसलमानोंका ऐसे विप्लवमय जीवन बिताने का मुख्य कारण उनका अन्ध धर्म्मोन्माद है। इसकी शान्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि मुसलमानोंसे सम्बन्धित भिन्न धर्म्मावलम्बिनी जातियाँ मुसलमान न हो जावें। अतएव भारतवर्ष में हिन्दू—मुसलमानोंका पारस्परिक मनोमालिन्य किसी अन्य उद्यमसे मिटना असम्भवसा प्रतीत होता है; जबतक कि मुसलमानों का धर्म्म विश्वास परिवर्तित न होवे, अथवा सम्पूर्ण भारतवर्ष मुसलमान न हो जावे, तबतक ऐसी ही अशान्ति रहेगी।

पूर्वभाषा हिन्दू और मुसलमान

कई लोग ऐसा कहा करते हैं, कि छूआछूत का झगड़ाही हिन्दू-मुसलमानों में मनोमालिन्य के बढ़ाने का प्रधान हेतु है। छुआछूत का झगड़ा मिट जाना चाहिये, और हिन्दू-मुसलमान परस्पर भ्रातृभाव से एक टेबिल पर बैठ कर खाना खावें तो परस्पर जो द्वेषभाव फैल रहा है एक दम मिट जावेगा। ऐसा प्रयत्न कई सज्जनों ने किया भी है। इस छूआछूत के मिट जानेसे हिन्दू-समाज पर क्या धक्का पहुँचेगा, वह इस प्रबन्ध का आलोच्य विषय नहीं। अतएव मैं विषयान्तर पर आलोचना न छेड़ केवल इतना ही निवेदन करता हूं, कि यूरोप के जिन जिन प्रान्तों में ईसाई मुसलमानों का राजनैतिक तथा सान्निवेशिक घनिष्ट सम्बन्ध था, और वर्त्तमान समय में जहाँ जहाँ है भी, वहाँ वहाँ की दोनों ईसाई मुसलमान जातियाँ परस्पर छूआछूत के झगड़ों से रहित थीं और अब भी रहती हैं; वे हिन्दुओं की तरह खानपान में परहेज नहीं करती थीं, और अब भी नहीं करती हैं। तो फिर क्या कारण है, कि उनमें परस्पर पाशविक अत्याचार अगणित हुए, और हो भी रहे हैं? कारण यही दिखाई देता है, कि उनमें धर्म विषयक एकता नहीं है।

हिन्दी भाषा से भी कई सज्जन ऐसा भी कहा करते हैं, (और ऐसी ध्वनि बङ्ग-साहित्य के लिये भी बङ्गाल के दो एक सज्जनों के मुख से सुनाई देती है) कि फारसी, तथा अरबी भाषाओं से सम्बन्धित तद्भव और तत्सम शब्द मातृभाषाओं के सदृश हिन्दी, बङ्गला आदि भारत की भाषाओं में मिल गए हैं, उन्हें निकाल कर संस्कृत शब्दों का प्रचार करना अच्छा नहीं। क्योंकि मुसलमान बिगड़ जायँगे और वे फ़ारसी और अरबी के शब्दों के प्रचार के हेतु हठ करेंगे, इस मनोमालिन्य के हेतु देश में विप्लव फैल सकता है। अतएव मुसलमानों को संतुष्ट करने के हेतु अपनी अपनी मातृ भाषाओं को संस्कृतोन्मुखी करना अच्छा नहीं इत्यादि। ठीक है, परन्तु मैं उन सज्जनों से उनकी विचक्षणता के लिये धन्यवाद दे यह प्रश्न करता हूँ, कि स्पेन देश पर मूर मुसलमानों का बहुत वर्षों तक राज्य रहने के हेतु स्पेन भाषा में अगणित अरबी के शब्द व्यवहृत होते थे और अब भी व्यवहृत होते हैं। बलकन प्रान्त भी कुछ दिनों तक तुर्काधीन था वहाँ की भी भाषा अरबी मिश्रित होगई होगी क्योंकि तुर्कों के राजत्व समय में बलकन प्रान्त में अरबी राज-भाषा मानी जाती थी तो क्या कारण है कि मूर और स्पेनबासियोंमें तथा तुर्क और बलकनवालोंमें परस्पर विजातीय विद्वेष फैला था, और अब भी है इन ऐतिहासिक वृत्तों से यह समझ में आता है कि हम अपनी मातृ-भाषा को संस्कृतोन्मुखी न करके भी मुसलमानों को सन्तुष्ट न कर सकेंगे।

बङ्ग देश में सात करोड़ मनुष्यों का निवास है इनमें तीन करोड़ मुसलमान हैं। ५०, ६० वर्ष पूर्व बङ्ग भाषा भी फ़ारसी अरबी मिश्रित एक प्रकार की उर्दू थी, और बङ्ग-प्रान्त में भी उर्दू और फ़ारसी का खूब ही प्रचार था। परन्तु बङ्ग-साहित्य ने इन थोड़े वर्षों में इतनी उन्नति की है, कि अपनी लिखित भाषासे फ़ारसी और अरबी के शब्दों को निकाल कर अपने साहित्य को संस्कृत साहित्य के समीप पहुँचा दिया है। बङ्ग-साहित्यका इतना प्रभाव वर्तमान समय में बङ्गाल के मुसलमानों पर फैला है, कि उनमें उर्दू, फ़ारसी, और अरबी के ज्ञाता बिरले ही दिखाई देते हैं। बङ्गाल के साहित्याभिमानी प्रायः कहा करते हैं, कि सात सौ वर्ष मुसलमानों के संसर्ग से बङ्गभाषा में जो मलिनता आई थी वह ५० वर्षों के प्रयत्न से एकदम दूर होगई; और वर्तमान समय में १०० वर्ष विदेशियों के संसर्ग के कारण जो मलिनता आई है, वह दो दिनों में दूर होगी।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में सात करोड़ मुसलमान हैं इनमें केवल संयुक्तप्रांत और पञ्जाब ही ऐसा है, जहां उर्दू का प्रचार है, अन्य प्रांतवाले अपनी २ प्रान्तों की संस्कृतोन्मुखी भाषाओं से ही कार्य निर्वाह करते हैं। यदि ऐसा अनुमान किया जावे कि संयुक्त प्रांत और पञ्जाब के रहनेवाले मुसलमानों की संख्या दो करोड़ होगी और पाँच करोड़ अन्य प्रान्तवाले मुसलमान होंगे; तो इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि भारतवर्ष में ५ करोड़ मुसलमान संस्कृतोन्मुखी भाषा बोलते हैं। अतएव उपर्युक्त प्रमाण से मुसलमानों का उर्दू का पक्ष लेना बहुत ही निर्बल दिखाई देता है। संयुक्तप्रांत और पञ्जाब के रहनेवाले मुसलमानों में भी जो नगरों के रहनेवाले हैं, वही विशेषकर उर्दू के ज्ञाता और पक्षपाती हैं। ग्रामों के रहने वाले मुसलमान अधिकांश उर्दू से अनभिज्ञ रहते हैं, और अपनी २ प्रान्त की भाषा और लिपि से ही कार्य निर्वाह करते हैं। यदि उपर्युक्त प्रान्तों के ग्रामों के रहनेवाले मुसलमानों की संख्या १॥ करोड़ अनुमान की जावे, तो नगरों के रहने वाले केवल पचास लाख ही ऐसे दिखाई देंगे जो कि उर्दू के ज्ञाता और पक्षपाती हैं;अतएव वे संस्कृतोन्मुखी भाषाओं के बोलनेवालों के सन्मुख बहुत ही थोड़े समझे जा सकते हैं। यदि हम इस तुच्छ शक्तिके भय से अपने साहित्य को खिचड़ी बनाकर बिगाड़ें, और यदि हमारी समवेत शक्ति के द्वारा अपने साहित्य

का प्रभाव इनपर डालकर इनकी भाषाओं को भी "साधु हिन्दी" में परिणत नहीं कर सकें तो हमारे लिये बहुत ही लज्जा का स्थल है।

हिन्दुओंने मुसलमानों के साथ मिलकर कार्य करने का प्रयत्न कई बार किया, परन्तु परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। नेशनल कांग्रेस की स्थापना के समय मुसलमान सम्मिलित नहीं हुये थे, वरन् उन्होंने घोर विरोध किया था। प्रयाग के कांग्रेस के अधिवेशन के समय "नेशनल-युनिवर्सिटी" अर्थात् हिन्दू-मुसलमानों का सम्मिलित एक "राष्ट्रीय"-विश्वविद्यालय" की स्थापना का प्रस्ताव हुआ था, परन्तु उस समय मुसलमानों के एक प्रधान नेता ने द्वेषपूर्ण अपना मन्तव्य ऐसी कठोर भाषा में व्यक्त किया था, कि जिससे हिन्दुओं का हृदय बहुत ही मर्माहत हुआ, और उन्होंने "नेशनल-युनिवर्सिटी" की स्थापना की अभिलाषा छोड़दी, तथा उसी दिनसे हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रयत्न होने लगा। कई घटनाएँ ऐसी ही और भी हुई हैं, कि जिनसे यही प्रतीत होता है, कि इस देश की वर्तमान अवस्था की दृष्टि से हिन्दू मुसलमानों में ऐक्य होकर एक राष्ट्र में परिणत होना असम्भव सा प्रतीत होता है।

संसार परिवर्तनशील है, इस सांसारिक धर्म के अनुसार मुसलमानों में भी कुछ कुछ परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ है। "अहिंसा-परमोधर्मः" सिद्धान्त सम्पूर्ण भूमण्डल में नित्य दृढ़ता पाता जाता है। ईरान के मुसलमानों में भी बहाई मतके अनुयायी जो मिशर फारसादि मुसलमान प्रधान देशों में बढ़ते जाते हैं, इस मन्तव्य को अपने मुख्य सिद्धान्तों में रखते हैं। जब कि मुसलमानों के उत्पत्ति स्थानों में यह परिवर्तन हो रहा है, तो सम्भव है कि किसी समय भारतवर्ष के मुसलमानों में भी इसका प्रभाव पड़े। वर्तमान समय में बृटिश सरकार के सुशिक्षा प्रदान के कारण मुसलमानों में उन्नत चेता और उदार मनुष्यों का भी कुछ कुछ प्रादुर्भाव होना प्रारम्भ हुआ है, इन परिवर्तनों की दृष्टि से ऐसी आशा की जा सकती है, कि भविष्यत में मुसलमानोंका धर्म विश्वास किसी भिन्न रूप को धारण करेगा। भारतीय मुसलमानों की जन संख्या की दृष्टि से यह वर्तमान परिवर्तन नगण्य है, इनमें पूर्ण सुधार के होने में अभी बहुत विलम्ब है। अतएव जब तक मुसलमानों का धर्म-विश्वास परिशोधित न हो सके, तथा जब तक इनमें भारतीय-राष्ट्र-प्रेम का पूर्ण आविर्भाव न होले तब तक हमारा कर्तव्य है कि हम अपने साहित्य की उन्नति के लिये इनके सन्तुष्ट और असन्तुष्ट होने पर ध्यान न दें, तथा अपने साहित्य की उन्नति सम्पूर्ण स्वाधीनता के साथ करें। क्योंकि जो जन समूह हमारे आयत के अधीन नहीं; जिन पर हमारे उपदेशों का विपरीत प्रभाव पड़ता है; जिन का मुख्य सिद्धान्त तुर्क, ईरान, अरबादि मुसलमान प्रधान देशों को मिलाकर एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनाना है, और उनपर राष्ट्रीय प्रेम प्रकाश करते हैं, तथा अपने प्रतिवेशी हिन्दुओं पर विद्वेष पूर्ण वर्ताव करते हैं. ऐसी अवस्था में उन पर हम भारतीय-राष्ट्र-प्रेम का प्रभाव शीघ्र जमा नहीं सकेंगे। अतएव वर्त्तमान समय में हमें चाहिये, कि जिन पर हम भारतीय-राष्ट्र-प्रेम का प्रभाव जमा देशोन्नति के कार्य्य कर सकते हैं उन्हीं के सन्तुष्ट और असन्तुष्ट पर ही विशेष ध्यान दें, अपने साहित्य की उन्नति पर आलोचना प्रारम्भ करें। प्रकृति का यह धर्म्म है कि प्रबल समूह अल्प समूह पर अपना प्रभाव जमाया करता है, अतएव अल्प समूह उर्दू के पक्षवालों पर भी एक समय साधु-हिन्दी-साहित्य का पूर्ण प्रभाव पड़ेगा; जिसका साक्ष्य बङ्ग प्रान्त दे रहा है।

लिपि और भाषा का ऐक्य राष्ट्र गठन में बहुत कुछ सहारा पहुँचाता है। भाषागत पार्थक्य होते हुए भी, एक लिपि के प्रचार से विभिन्न भाषाओं के अभ्यास में बहुत सुगमता पहुँचती है। नवीन नवीन अक्षरों के अभ्यास में जो समय व्यय होता है, उसकी बचत होकर भाषा के अध्ययन में

उसका प्रयोग हो सकता है। अतएव एक लिपि का प्रचार राष्ट्रगठन का मुख्य उपकरण समझना चाहिये। किन्तु किसी देश में एक लिपि के विस्तार रहते हुए भी भाषा की भिन्नता एक राष्ट्र के गठन पर बहुत कुछ रुकावट पहुँचाती है। इस का जाज्वल्यमान प्रमाण वर्त्तमान यूरोप है, वहाँ राष्ट्रीयगठन के सब उपकरणों की विद्यमानता पर भी केवल भाषा और राजनैतिक ऐक्य के न होने के कारण यूरोप आज एक राष्ट्र में संगठित होते दिखाई नहीं देता। वर्त्तमान समय में प्रजातन्त्र का प्रवाह जैसा सभ्यजगत् में दिखाई दे रहा है, यदि यूरोप एक भाषा भाषी होता तो राजनैतिक एकता भी वहाँ आजाती, और इस समय यूरोप एक राष्ट्र में परिणत होते दिखाई देता।

लिपि और भाषा

एक लिपि के प्रचार होते हुये भी, यदि किसी देश में नाना प्रकार की भाषाएं प्रचलित हों, तो वह देश केवल इसी कारण अनेक अंशोंमें विच्छिन्न हो जाता है, जोकि उसे एक राष्ट्र से दूर पहुँचाता है। एक भाषा के प्रचार रहने पर केवल इसी के सहारे, यदि लिपिगत भिन्नता न हो तो अन्यान्य राष्ट्रगठन के उपकरण आजाने सम्भव हो सकते हैं। परन्तु विभिन्न भाषाओं के प्रचार रहने पर राष्ट्रीय ऐक्य का होना असम्भव है। जिन जिन देशों में विभिन्न भाषाओं का प्रचार है, वहाँ से राष्ट्रगठन की सम्भावना दूर भाग जाती है, अतएव राष्ट्रगठन के लिये भाषा ही मुख्यतर है।

वर्तमान जर्मन साम्राज्य अर्द्धशताब्दीके पूर्वदो मुख्य विभागों में विभक्त था। पूर्वांश में प्रुशिया एक स्वाधीन राज्य था, और पश्चिमांश में छोटे छोटे पचीस स्वाधीन राज्य थे। सन् ईसवी १८०६ में फ्रांस के प्रसिद्ध दिग्विजयी वीर नेपोलियन बोनापार्ट के द्वारा पश्चिमांश के क्षुद्र राज्य समूह विपर्य्यस्त होगये थे। सन् ईसवी १८७० में फ्रांस के तीसरे नेपोलियन ने जब प्रुशिया के विरुद्ध अस्त्र धारण किया था, उस समय पश्चिमांश के क्षुद्र राज्य समूह, समष्टि-शक्ति की उपयोगिता समझ प्रुशिया के साथ सम्मिलित होगये थे, और उन्होंने वहाँ के राजा को सम्राट स्वीकार कर लिया था। इस समवेत शक्ति का बल इतना बढ़ा, कि फ्रांस के सम्राट तीसरे नेपोलियन सम्पूर्ण पराजित हुए और उन्हें बहुत ही क्षति-ग्रस्त होना पड़ा।

वर्त्तमान जर्मन साम्राज्य के पास ही पास चार छोटे छोटे राज्य और भी हैं। उत्तर की ओर डेनमार्क, उत्तर पश्चिम की ओर हालेण्ड और बेलजियम तथा दक्षिण पश्चिम की ओर स्वीटजरलैण्ड है। क्या कारण है, कि ये क्षुद्र राज्य समूह उस समय प्रुशिया के साथ सम्मिलित नहीं हुए? कारण भाषा की भिन्नता है। प्रुशिया और पश्चिम जर्मन की क्षुद्र राज्यों की भाषा जर्मन है, इस हेतु उनमें परस्पर सम्मिलित होने की अभिलाषा बढ़ी थी। डेनमार्क की भाषा डेनिश है, हालेण्ड की डच्, यही कारण है कि ये दोनों राज्य जर्मनों से अपने को भिन्न जाति के समझते हैं, और इस भिन्न भाव के कारण ही प्रुशिया के साथ सम्मिलित नहीं हुए। बेलजियम में फ्रेञ्च, ओआलून, और फ्लेमिश ये तीन भाषाएँ प्रचलित हैं। ओआलून फ्रेञ्च भाषा का तथा फ्लेमिश डच् भाषा का अपभ्रंश है। ओआलुन भाषा का सम्बन्ध फ्रेञ्च भाषा के साथ होने के कारण फ्रेञ्च भाषा ही वहाँ प्रधान समझी जाती है, ।बेलजियम का पूर्वांश हालेंड के संलग्न रहने के कारण उस स्थान की फ्लेमिश भाषा की उत्पत्ति डच् भाषा से हुई है, इस हेतु फलेमिश भाषा अप्रधान है, और राज्यकार्य्य तथा साहित्य फ्रेञ्च भाषा में ही वहाँ लिखा जाता है। फ्रेञ्च भाषा की प्रधानता के कारण ही बेलजियम ने फ्रेञ्च सम्राट के विरुद्ध अस्त्र धारण नहीं किया, और यही पुष्ट कारण उसका प्रुशिया के साथ सम्मिलित न होने का दिखाई देता है। स्वीजर्लण्ड में भी तीन प्रकार की भाषाएँ प्रचलित हैं, इस देश के उत्तर और पूर्वभाग में जर्मन

देश के साथ संलग्न होने के कारण जर्मन भाषा, पश्चिम भाग फ्रांस के साथ संलग्न रहने के कारण फ्रेञ्च भाषा और दक्षिण भाग इटाली के साथ संलग्न रहने के कारण इटाली भाषा प्रचलित है। इन तीन भाषाओं की प्रधानता के कारण यह देश किं कर्त्तव्य विमूढ़ रहा। अर्थात् अनुमान होता है, कि जर्मन भाषा उसे जर्मन की ओर खेंचती होगी, फ्रेञ्च भाषा फ्रेञ्च की ओर, और इटाली भाषा उसे निरपेक्ष रहने की सम्मति देती होगी। यही कारण सम्भव है कि स्वीजलैंण्ड प्रुशिया के साथ सम्मिलित नहीं हो सका।

अमेरिका महादेश में यूरोप की नाना भाषा भाषी जातियों ने उपनिवेश स्थापित किया है, इस हेतु वहाँ नाना प्रकार की यूरोपीय भाषाएँ प्रचलित हैं। यह देश कई स्वाधीन राज्यों में विभक्त है। कनेडा को छोड़कर अन्यान्य देश प्रजा-तन्त्र शासन पद्धति के आधीन हैं। क्या कारण है, कि अमेरिका एक राष्ट्र के उपकरणों की विद्य-मानता पर भी एक प्रजा तन्त्र शासन के अधीन हो सम्मिलित शक्ति की वृद्धि न कर सका? और वर्त्तमान समय में यूनाईटेड स्टेट्स जापान ऐसे क्षुद्र काय देश की धमकी से घबरा उठा? प्रधान कारण इसका एक देश में नाना भाषाओं की प्रधा-नता है, यही भेद उसे एक राष्ट्र के सङ्गठन पर सहारा नहीं पहुँचा सका। अमेरिका में समष्टि शक्ति का नाश और व्यष्टि शक्ति के प्रभाव का यही मुख्य कारण है।

वर्तमान यूरोपीय महा समर में, जर्मन ने जो आस्ट्रिया का तथा बेलजियम ने फ्रांस का पक्ष समर्थन किया है, इसके मुख्य कारणों में प्रधान कारण भाषा की एकता भी मानी जा सकती है। क्योंकि आस्ट्रिया की साहित्यिक भाषा जर्मन है, और राजकार्य सब जर्मन भाषा में ही होता है। इस हेतु जर्मन ने आस्ट्रिया का पक्ष लिया और बेलजियम में फ्रेञ्चभाषा की प्रधानता के कारण अनेक हानिकी सम्भावना होने पर भी बेलजियम ने फ्रांसका पक्ष ग्रहण किया है।

जिस देश में कई प्रकार की भाषायें प्रचलित रहती हैं, वहाँ अपनी अपनी प्रान्तीय भाषा का गौरव रहने के हेतु, कई पृथक समुदाय बन जाते हैं, इस कारण अन्तर्विप्लव भी हुआ करता है। कारण वे अपने अपने समुदाय कोही राष्ट्र सम-झते हैं, अपनी भाषा पर ममत्व होने के कारण उनके स्वार्थ भिन्न २ होते हैं, यही पुष्ट हेतु उनको अन्तविप्लव करने के लिए उत्साहित करता है।

प्रशिया में बहुत से स्लैव जाति के मनुष्य आ बसे हैं, जिनका आदि निवास स्थान रूस है; परन्तु उनकी भाषा अभी तक जर्मन से भिन्न है। जर्मन साम्राज्य का सङ्गठन प्रबल होने के कारण वे इस समय दबे हुए हैं, परन्तु उनके उभरने की शङ्का हो सकती है। आस्ट्रिया और हङ्गेरी इन दो देशों के सम्मिलन से आस्ट्रिया साम्राज्य की सृष्टि हुई है। यहाँ तीन प्रकार की भाषाएँ प्रचलित हैं, जर्मन हङ्गेरियन और स्लाव-वनीय भाषा। रूस के स्लेव जाति के बहुत से मनुष्य उत्तर पूर्व आस्ट्रिया में आ बसे हैं, उनकी भाषा ही स्लावनीय है। परन्तु यहाँ जर्मन भाषा ही राजभाषा मानी जाती है, और यहाँ का साहित्य जर्मन भाषा में ही लिखा जाता है। यूरो-पीय वर्त्तमान घोर सङ्ग्राम के समय गतवर्ष आस्ट्रिया साम्राज्य की एक जाति ने विद्रोह मचाया था जिसका बदला आस्ट्रिया सरकार ने बहुतही बुरी तौर से लिया, उनके बच्चे और स्त्रियाँ तक मारी गईं थीं। इस बिप्लव का कारण भी एक देश में नाना भाषा की परिस्थिति है। रशिया में रूस, पोलिश (पोलण्ड की भाषा) लिथुनीय, लेटिश और ओआलेशीय ये पाँच प्रकार की भाषायें प्रचलित हैं। परन्तु वहाँ साहित्य और राज्यकार्य रूस भाषा में ही लिखा जाता है रूस में जो अन्तर्विप्लव सदा विद्यमान रहता है इसके कारणों में से एक प्रधान कारण रूस देश में पाँच प्रकार की भाषाओं का प्रचलन भी अनु-

मान किया जा सकता है।

अमेरिका के वर्त्तमान यूनाइटेड स्टेट को अङ्गरेजों ने ही बसाया है; वहाँ यूरोप की नाना जातियाँ जाकर बसी हैं सम्भव है कि वहाँ अङ्गरेज़ निवासियों की संख्या अधिक हो। वर्त्तमान यूरोपीय सङ्ग्राम के समय जर्मन ने कई जहाज डुबो कर युनाइटेड स्टेट्स को बहुत ही क्षति-ग्रस्त किया था; परन्तु वहाँ नाना जातियों के निवास के कारण, उनसे हमारी गवर्नमेन्ट को सहारा नहीं मिला।

यूरोप के निवासियों का खान, पान, रहन सहन, चाल चलन, और रङ्ग रूप एकसाही है, तथा उनमें रोटी बेटी का भी व्यवहार परस्पर है, इस हेतु यूरोप के निवासियों को एक जाति के अन्तर्गत कहा जा सकता है। परन्तु भाषा की भिन्नता के कारणही उनमें नाना प्रकार की जातियाँ दिखाई देती हैं इसपर यूरोप के राजनैतिक अनैक्य ने उक्त विभिन्न जातियों को विभिन्न राष्ट्रों में और भी परिणत करदिया है। उपर्युक्त विभिन्नजातियाँ अथवा राष्ट्रों में जो जिस के आधीन में थे और हैं और होंगे, उन्हें बहुत ही कष्ट सहन करना पड़ा था, कर रहे हैं, और करेंगे। राजनैतिक अनैक्य भी विशेष कर विभिन्न भाषा भाषियों में ही परस्पर दिखाई देता है। परस्पर एक भाषा भाषियों में प्रायः राजनैतिक स्वार्थों पर बाधा नहीं पहुँचती।

उपर्युक्त प्रमाणों से पाठक समझ गये होंगे कि एक भाषा के प्रचलन रहने का महत्व कहाँतक है, और यह राष्ट्र गठन को कितना सहारा पहुंचा सकता है। अतएव राष्ट्रगठन के लिये किसी देश में बोलचाल तथा साहित्य में एकही प्रकार का प्रचार होना मुख्यतर समझना चाहिये।

वर्तमान समय में भारतवर्ष में लिपि और भाषा की एकता का अभाव बहुतही अनुभव होता है। प्रत्येक प्रांतवासी अपनी अपनी लिपि और भाषा पर ममत्व बहुत रखते हैं। इनमें एक की प्रधानता स्वीकार कराने का प्रयत्न करने में द्वेष फैलेगा। और ऐसा हो भी रहा है। अतएव वर्तमान समयमें हमें ऐसी युक्ति ग्रहण करनी चाहिये जिससे भारतवासियों में परस्पर विरोध भी न हो, और लिपि तथा भाषा की एकता भी क्रमशः होती जावे।

देवनागरी-लिपि संस्कृत भाषा की होने के हेतु किसी एक प्रांत की समझी नहीं जा सकती, भारत वासी मात्र का "संस्कृत भाषा" और 'देवनागरी लिपि" पर एकसा अधिकार है, न्यूनाधिक्य नहीं है। अतएव किसी प्रांत का रहनेवाला इन्हें अपने प्रांत की भाषा तथा लिपि कहकर अधिकार जमा नहीं सकता। संस्कृत भाषा भारतवर्ष की जातीय तथा धर्म-भाषा है; देवनागरी-लिपि संस्कृत की है अतएव देवनागरी भारतवर्ष की जातीय तथा धर्म-लिपि होने के हेतु इसके प्रचार में बाधा क्या पहुँचेगी। संभव है कि प्रांतीय अन्ध-पक्षपात इस लिपि के प्रचार पर भी बाधा पहुँचावे; ऐसा कहीं कहीं हुआ भी है, और हो भी रहा है। परन्तु इन बाधाओं को मिटाना बहुत कष्ट कर नहीं होगा। ज्यों ज्यों राष्ट्रीय भाव का इस देशमें प्रचार बढ़ेगा, ज्यों ज्यों भारतवासी नागरी-लिपि को अपनी जातीय लिपि समझने लगेंगे; त्यों त्यों उक्त विरोध घटता जावेगा, तथा नागरी-लिपि पर लोगों का अनुराग दिनोंदिन बढ़ता ही जावेगा; जितने महत्वपूर्ण कार्य हैं वे एक दिन में सफल नहीं होते, इसके अर्थ यथेष्ट समय की अपेक्षा है। अतएव हमें नागरी-लिपि का भारतवर्ष में प्रचार करने के हेतु किसी प्रकार का उद्यम उठा नहीं रखना चाहिये। समय एकदिन इसका सुपरिणाम अवश्य दिखावेगा।

उपर्युक्त युक्तियों के अनुसार लिपि के प्रश्न का सन्तोषपूर्ण समाधान होसकता है, परंतु भाषा का प्रश्न बहुत ही जटिल है। भारतवर्ष में सैकड़ों ही भाषाएँ प्रचलित हैं, इनमें से किसी एक की प्रधानता है, भारत की राष्ट्र भाषा तथा सार्वजनिक बोलचाल की भाषा बनाने का प्रयत्न करें,

और अन्यान्य भाषाओं के प्रचार पर बाधा पहुँचावें, तो ऐसा प्रयत्न संपूर्ण निष्फल होगा, और परस्पर मनोमालिन्य तथा द्वेष भाव बढ़ता ही जावेगा। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि किसी देश में बहुत सी प्रांतीय भाषाओं की प्रधानता तथा उनपर लोगों का ममत्व दीर्घ काल तक रहना अच्छा नहीं। क्योंकि इस भेदभाव के कारण कुछ वर्षों में उक्त देश कई विभिन्न राष्ट्रों में विभक्त हो जावेगा, और उनमें प्रांतीय स्वार्थ की प्रबलता के कारण नाना प्रकार के विप्लव उपस्थित हो सकते हैं, जिसका कि प्रत्यक्ष साक्ष्य यूरोप का वर्त्तमान भयानक युद्ध दे रहा है।

अतएव भाषा का प्रश्न बहुत ही जटिल है। और भारतवर्ष की वर्त्तमान परिस्थिति पर लक्ष करने से यह प्रतीत होता है, कि किसी एक भाषा को माध्यमिक मानकर हम अपना कार्य वर्त्तमान समय में निर्वाह भले ही करलें परंतु भाषा की भिन्नता, बिना किसी धर्म संबंधीय दबाव के मिट नहीं सकती। संभव है कि भारतवासी उस भाषा को मातृभाषावत् अपना लें, जिसके साथ सबका स्वार्थ तथा संबंध एकसा हो।

भारतवर्ष में सैकड़ों ही भाषाएँ बोली जाती हैं परंतु वे भाषाएं जिन में साहित्य है, अनुमान २०, २५ के भीतर ही होंगी। इन परिमित २० । २५ भाषाओं के अंतर्गत हिन्दी का साम्राज्य, विहार, संयुक्तप्रान्त राजपूताना तथा पञ्जाब तक विस्तृत है। भारतवर्ष की भाषाओं में हिन्दी का साम्राज्य बहुदूर व्यापी होने के हेतु यह भाषा मुख्य मानी जा सकती है। सिन्धुदेश, काश्मीर, और नैपाल प्रान्तों की भाषाओं में साहित्य दिखाई नहीं देता। मैं आशा करता हूँ, कि यदि प्रयत्न किया जावे तो इन इन प्रान्तों में भी हिन्दी का मातृभाषावत् प्रचार हो सकता है। अतएव यह मानना असङ्गत न होगा कि हिन्दी प्रायः अर्द्ध भारतवर्ष की मातृभाषा है।

भारतीय राष्ट्र निर्माणमें हिन्दी के महत्वकी सीमा

मुसलमानों के राजत्व समय में हिन्दी उर्दू रूप में राजभाषा होने के हेतु तथा हिन्दुओं के अधिकांश तीर्थ स्थान, और प्रधान-संस्कृत-विद्या-पीठादि हिन्दी जगत् के अन्तर्गत होने के हेतु न्यूनाधिक्य ७०० वर्षों से हिन्दी भारत की माध्यमिक भाषा होती आई है। क्योंकि राजपुरुष, धर्माध्यक्ष, तथा अध्यापकगण हिन्दी को ही माध्यम मानकर विभिन्न प्रान्तवासियों से वार्तालाप करते थे, और राजकार्यों में भी उर्दू के रूप में हिन्दी का ही प्रचार रहने के कारण प्रत्येक प्रान्तवासी को हिन्दी के साथ बाध्य होकर कुछ न कुछ परिचय रखना पड़ता था। वर्त्तमान समय में भी वैसा ही क्रम चला आरहा है, क्योंकि विभिन्न प्रान्तवासी जब किसी स्थान पर एकत्रित होते हैं, तो क्रमागत प्रथा के अनुसार हिन्दी का ही उन्हें सहारा लेना सुगम दिखाई देता है। भारतवासियों को तो उपर्युक्त कारणों से हिन्दी का समझना सुगम है ही, विदेशी भी जब भारतवर्ष में आते हैं, तो हिन्दी में ही वार्तालाप करने का प्रयत्न करते हैं। कलकत्ता बङ्गाल का प्रधान नगर होने के हेतु, बङ्ग-भाषा का ही यहाँ माध्यम होना संभव है। परंतु जब किसी स्थल पर बर्मीज़, चीनवासी, सिंहलवासी, मद्रासी, भूटानी, अफ़गानी आदि जातियाँ जो व्यवसाय की दृष्टि से कलकत्ते में आती हैं; वे कार्य निर्वाह के लिए अधिकांश हिन्दी का ही सहारा लेती हैं। बङ्गाली भी जब उपर्युक्त बर्मीज़, चीनवासी, आदि से किसी कार्यवश वार्तालाप करने की आवश्यकता होती है, तो हिन्दी से ही कार्य निर्वाह करते हैं। अतएव हिन्दी भारतवर्ष की स्वभाव सिद्ध माध्यमिक भाषा होरही है, इसे माध्यमिक बनाने में विशेष प्रयास की आवश्यकता दिखाई नहीं देती।

जब कि प्रत्यक्षभाव से भारतवासी हिन्दी को ही माध्यम कई सौ वर्षों से मानते चले आरहे हैं, तब हिन्दी को भारतवर्ष की माध्यमिक भाषा होने का पूर्ण अधिकार है, यह कभी विचारशील मनुष्य अस्वीकार नहीं कर सकते; और मुझे पूर्ण

विश्वास है, कि जितने अधिकार की सीमा भारतवासियों ने हिन्दी को दे रक्खी है, यदि हम इससे बढ़कर पांव न फैलावें, तो हिन्दी को माध्यमिक भाषा कहकर भारतवासी क्रमशः घोषणा द्वारा भी स्वीकार कर लेंगे।

अब यह विचारना चाहिए कि कई प्रान्तवालों ने हिन्दी के साथ विरोध करना क्यों प्रारम्भ कर दिया है? यहाँ तक कि दो एक प्रान्तों में इसका अधिकार जो कुछ था उसे भी मिटाना क्यों चाहते हैं? इसका कारण अवश्य है, बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। वर्त्तमान समय में हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहकर हम प्रचार करने का प्रयत्न कर रहे हैं। विभिन्न प्रान्तवाले इस "राष्ट्र" शब्द सेही द्वेष करते हैं। अंगरेज़ी "नेशन" शब्द के स्थान परही "राष्ट्र" शब्द का व्यवहार वर्त्तमान समय में होरहा है, "नेशन" शब्द कुछ जाति-वाचक-शब्दों से सम्बन्ध अधिक रखता है। "भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी" इन शब्दों का अर्थ "भारत की "नेशनल" तथा "जातीय" भाषा हिन्दी" ऐसा अधिकांश समझा जाता है। लोग इस उक्ति पर विरोध यह करते हैं, कि भारत की "जातीय-भाषा" हिन्दी नहीं हो सकती। प्रत्येक प्रान्त की भाषाही अपने अपने प्रान्त की जातीय भाषा है। अतएव प्रत्येक प्रान्त को अपनी अपनी भाषा का बड़ा गौरव है। वे अपनी अपनी भाषा को हिन्दी से निम्न कक्षा में लाना नहीं चाहते। अन्य प्रान्तवालों का यही मुख्य कारण हिन्दी के प्रचार पर बाधा डालने का है।

ऐसा कई सज्जनों के मुख से सुनने में आया कि निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महा सम्मेलन के विगत कलकत्ते के अधिवेशन के समय बङ्गालियों के द्वारा हिन्दी में व्याख्यानादि देने के लिये बाधा पहुँचाई गई। बङ्गाल के रहनेवाले हिन्दी समझ लिया करते हैं, आवश्यकतानुसार बोल भी सकते हैं ऐसी अवस्था में जब कि संस्कृत के अध्यापक संयुक्त-प्रान्तवासी और छात्र बङ्गाली सज्जन होते थे तो शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही हुआ करती थी। क्योंकि अधिकांश बङ्गाली छात्रों में विशेषकर स्कूल और कालेजों के पढ़नेवालों में संस्कृत में वार्तालाप करने की योग्यता कम दिखाई देती है। ब्राह्मण-सर्वस्व के सुयोग्य सम्पादक श्रीयुत पंडित भीमसेन जी शास्त्री कलकत्ता राजकीय विश्वविद्यालय के वेदाध्यापक हैं। आपने प्रथम प्रथम यहाँ के बङ्गाली छात्रों में द्रुत संस्कृत बोलने तथा समझने की क्षमता जब नहीं देखी, तब शिक्षा का माध्यम हिंदी ही रक्खा था; और व्याख्यान संस्कृत बहुल हिन्दी में दिया करते थे। परन्तु हमारे राष्ट्रभाषा घोषणा के कारण ही कलकत्ते के बङ्गाली छात्रों को हिन्दी न सुहाई, और सब छात्रों ने एक होकर उक्त पंडित जी को एक दिन यह सूचना दी, कि हम लोग आप का हिन्दी-व्याख्यान ठीक नहीं समझ सकते, अतएव आप संस्कृत में व्याख्यान देना प्रारंभ करदें तो हम लोग समझ सकते हैं; तथा हम लोग भी आप से संस्कृत में ही वार्तालाप करने का प्रयत्न करेंगे। तब से पंडित जी ने बाध्य होकर संस्कृत में ही व्याख्यान देना प्रारंभ कर दिया है। और छात्रों ने भी संस्कृत में ही बोलना प्रारंभ कर दिया है। वार्षिक परीक्षा के २,३ महीने पूर्व से कई छात्र उक्त पंडित जी के मकान पर पढ़ने आते हैं, और मैं भी पंडित जी से मिलने जाया करता हूँ, तो अध्यापक तथा छात्रों में संस्कृत में ही वार्तालाप करते पाता हूं। कई छात्र ऐसे भी दिखाई दिये जिनमें संस्कृत बोलने तथा समझने की विशेष शक्ति नहीं है, वे दो चार पंक्ति संस्कृत में कहते हैं, और असमर्थ अवस्था में दो चार हिन्दी में भी कह डालते हैं। इससे यह प्रमाणित होता है, कि इन छात्रों के लिये भी हिन्दी में बोलना और समझना सरल है; तथा संस्कृत में बोलना और समझना कठिन है।

यह मैं पहिले ही कह आया हूँ, कि यहाँ के अनपढ़ बङ्गाली भी हिन्दी बोल और समझ सकते हैं; क्योंकि हिन्दी बोलनेवालों के साथ बहुत ही

घनिष्ट संबन्ध रहता है। अतएव उपर्युक्त बङ्गाली छात्रों का आक्षेप कि हिन्दी समझ में नहीं आती, संस्कृत में व्याख्यान होना चाहिये यह केवल द्वेष भाव से है। जब कि कलकत्ते के अशिक्षित बङ्गाली भी ठेठ हिन्दी के बहुत शब्द बोलते हैं. तब उक्त शिक्षित बङ्गाली छात्रों को संस्कृत-बहुल हिन्दी का व्याख्यान समझ में न आवे यह एक अद्भुत बात है। उक्त पंडित जी के यहाँ जो बङ्गाली छात्र पढ़ने आते हैं, उनसे मैंने कई बार पूश्न किया था, कि आप लोग हिन्दी को राष्ट्र भाषा क्यों नहीं स्वीकार करते, तथा अपनी शिक्षा का माध्यम हिन्दी को क्यों नहीं मानते; क्योंकि इससे आप लोगों को बहुत ही सुगमता प्राप्त होगी। तो इसका विरोध पूर्ण उत्तर यह देते हैं, कि हम लोग हिन्दी को राष्ट्र अथवा अपनी जातीय भाषा नहीं मान सकते, ऐसा अधिकार हिन्दी को नहीं है। हाँ यदि संस्कृत "राष्ट्र–भाषा" अथवा "जातीय–भाषा" मानी जावे (जोकि–वर्तमान समय तथा पूर्व काल में भी मानी जाती थी और है भी) तो हम लोग सहमत हो सकते हैं। ऐसे ही शब्दों की पूतिध्वनि मद्रास प्रांत काञ्ची की संस्कृत साप्ताहिक पत्रिका यह कहती है कि "नागराक्षराणां पूचारस्त्वस्माभिरपि अभिलष्यते, परं राष्ट्र भाषास्थाने तु संस्कृत भाषैव प्रतिष्टापनीया" अर्थात् "नागराक्षरों का प्रचार तो हम लोग भी चाहते हैं,परन्तु राष्ट्र-भाषा के स्थान में तो संस्कृत भाषा को ही प्रतिष्ठा देना उचित है।"

उपर्युक्ति वृत्ति से यह स्पष्ट उपलब्ध होता है कि अन्य प्रान्तवालों को "राष्ट्र" शब्द से ही विशेष विरोध है। कार्य्य में तो वे हिन्दी को ही माध्यम मानते ही हैं; क्योंकि हिन्दी को बिना माध्यम माने संस्कृत तथा अंगरेज़ी भाषाओं से अनभिज्ञ विभिन्न प्रांत वासियों का परस्पर कार्य्य-निर्वाह होही नहीं सकता। अतएव यदि हम हिन्दी को "राष्ट्रभाषा" न कह "मध्यस्थ-भाषा" कहकर प्रचार की उपयोगिता दिखावें तो अन्य प्रांतों से विरोध स्यात ही उठेगा।

यूरोप में भी फ्रेञ्च भाषा माध्यमिक है। वहां के विभिन्न प्रांतवासी फ्रेञ्च भाषा की सहायता से ही परस्पर कार्य्य निर्वाह करते हैं। परन्तु फ्रेञ्च देश छोड़ कर यूरोप के अन्य प्रांतों के रहनेवाले फ्रेञ्चभाषा को "नेशनल" अथवा "राष्ट्र" किंवा "जातीय" भाषा नहीं मानते, और न राष्ट्रीय ममत्व ही फ्रेञ्च-साहित्य पर यूरोप के अन्य प्रांतवालों का है; अतएव फ्रेञ्च साहित्य की उन्नति के लिये यूरोप के अन्य प्रांतवाले किसी प्रकार का पूयत्न नहीं करते हैं, और न अपनी २ प्रान्तीय भाषा का झुकाव फ्रेञ्च साहित्य की ओर करते हैं। फ्रेञ्च भाषा को माध्यम केवल कार्य निर्वाह की दृष्टि से ही माना गया है, परंतु यूरोपीय राष्ट्र निर्माण के लिये नहीं माना गया। यूरोप की प्रांतीय भाषाओं के बोलनेवाले अपनी २ मातृ-भाषा पर इतना ममत्व रखते हैं, कि जर्मन सरकार ने पोलैंड देश में जर्मन भाषा का मातृ-भाषावत् प्रचार कर पोलैंड वासियों को जर्मन जाति में सम्मिलित करने के लिये कोई प्रयत्न उठा नहीं रक्खा, परन्तु सब ही व्यर्थ हुआ, पोलेण्ड वासियों ने यह स्वीकार नहीं किया। ठीक ऐसी ही अवस्था भारतवर्ष की है, और हिन्दी का भी उपर्युक्त फ्रेञ्च भाषा के सदृश ही भारत से सम्बन्ध है। प्रत्येक भाषा भाषी अपनी अपनी भाषा का गौरव रखते हैं; वे अपनी भाषा का नाश अथवा न्यूनता तथा किसी अन्य भाषा की प्रधानता नहीं चाहते। "राष्ट्र" शब्द महत्वपूर्ण है, हिन्दी को "राष्ट्र भाषा" कहने से अन्य प्रान्तवालों में यह ईर्ष्या और द्वेष फैलता है, कि "हमारी भाषा न्यून समझी जावेगी? और हिन्दी भारतवर्ष की रानी हो बैठेगी?" यही द्वेषभाव अन्य प्रान्तों में हिन्दी साहित्य के प्रचार पर बाधा पहुँचा रहा है। अतएव यदि हिन्दी को "राष्ट्रभाषा" न कह केवल "मध्यस्थ भाषा" कह कर ही प्रचार करें, तो विरोध नहीं उठेगा। क्योंकि संपूर्ण भारतवर्ष के मुख्य मुख्य स्थानों में हिन्दी का व्यवहार

मध्यस्थ भाषा के सदृश हो ही रहा है, अतएव आक्षेप उठ नहीं सकता। भारत की "मध्यस्थ-भाषा" और "राष्ट्र-भाषा" इन दोनों का अर्थ प्रायः एकसाही है, केवल शब्दान्तर मात्र ही दिखाई देता है। परन्तु किया क्या जावे, क्योंकि भारतवर्ष में भी अन्यान्य देशों के सदृश प्रान्तीय भाव की प्रधानता अधिक दिखाई देती है। जब कि केवल "राष्ट्र" शब्द पर ही अन्य प्रान्तवालों का विरोध विशेष करके है, तो हमें चाहिये कि हिन्दी को भारत की "मध्यस्थ-भाषा" कह कर ही प्रचार करें, और मैं ऐसा अनुमान करता हूँ, कि "मध्यस्थ भाषा" कह कर प्रचार करने में हमारे हिन्दी-साहित्य-सेवियों को भी विरोध नहीं होवेगा। क्योंकि उनका उद्देश्य भारत-वर्ष में हिन्दी का सार्वजनिक प्रचार है; चाहे "राष्ट्र-भाषा" कह कर हो अथवा "मध्यस्थ-भाषा" कह कर ही हो।

मैं पहिले यह कह आया हूँ, कि राष्ट्र गठन के हेतु भाषा ही मुख्यतर है, अतएव जिस देश में कई प्रकार की भाषाएं प्रचलित हों, वहाँ सर्वजनबोधगम्य किसी प्रान्त की सरल भाषा को ही माध्यम मानना उचित है। अतएव पूर्वकथित वृत्तके अनुसार हिन्दी ही भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था की दृष्टि से मध्यस्थ भाषा घोषित हो सकती है। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्तवासी को उचित है, कि अपनी अपनी मातृभाषा की उन्नति करते हुये हिन्दी-साहित्य पर भी अधिकार जमाने का प्रयत्न करें, शिक्षित मनुष्यों के लिये ५।६ महीने का परिश्रम ही हिन्दी में साधारण ज्ञान जमाने के लिये यथेष्ट होगा। क्योंकि भारतवर्षमें सैकड़ों ही भाषाओं का प्रचार है, इन सब भाषाओं में अधिकार जमाकर भारत के हितैषी विभिन्न प्रान्त के नेतागणों को हिमालयसे सेतुबंध रामेश्वर तथा पेशावर से चटगांव पर्य्यन्त अपने उद्देशों के प्रचार करने का प्रयत्न करना असंभव होगा। यह सत्य है कि यह अभाव अङ्गरेज़ी के सहारे कुछ दूर हो रहा है, परन्तु अङ्गरेज़ी भाषा के द्वारा केवल कतिपय अङ्गरेज़ी भाषा के विद्वानों को ही लाभ पहुँचता है, सर्वसाधारण इस लाभ से संपूर्ण वञ्चित रहते हैं। अतएव भारतवर्ष में जातीय-जीवन लाभ के लिये, भारत वासियों का यह कर्तव्य होना चाहिये, कि सर्व-बोध-गम्य सरल भाषा हिन्दी को ही अपना माध्यम बनावें। भारतीय राष्ट्र-गठन में हिन्दी के महत्व की सीमा, तथा हिन्दी द्वारा सहारा पहुँचाने की आशा इतनीही होनी चाहिये।

वर्तमान हिन्दी का झुकाव

वर्तमान समय में हिन्दी भाषा के गद्य और पद्य की भाषा का प्रचलन एक ही प्रकार का हो रहा है। पूर्व-शैली अर्थात् गद्य की भाषा खड़ी बोली और पद्य साहित्य ब्रजभाषादि कई अवान्तर भाषाओं में रहने के कारण अन्य प्रान्तवालों को हिन्दी के पद्य-साहित्य के समझने के लिये पद्य-हिन्दी का अभ्यास पृथक् करना पड़ता था। किसी अन्य भाषा में हिन्दी के सदृश गद्य और पद्य की भाषागत भिन्नता ऐसी दिखाई नहीं देती। अतएव हिन्दी के प्रचार में सौन्दर्य्य लाने के हेतु गद्य और पद्य की भाषागत एकता अच्छी हुई है।

अधुना हिन्दी-साहित्य के अनुरागियों में यह सम्मति दिखाई देती है, कि हिन्दी जब एक स्वतन्त्र-भाषा हुई जाती है और जब कि इसमें राष्ट्रीय महत्व का आवेश भी दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है। तब इसे संस्कृत व्याकरण के विकट नियमों के अधीन कर, इसके प्रचार पर बाधा पहुँचाने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती। अतएव इस के भाषागत नियम भी स्वतन्त्र होने चाहिये, और अरबी, फारसी, तुर्की, हिन्दी, अंगरेज़ी, फ्रेञ्च, आदि भाषाओं के वे शब्द, जोकि तद्भव और तत्सम रूपों में हिन्दी में हिलमिल गये हैं, उन्हें निकाल संस्कृत के कठिन शब्दों का समावेश करने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती। जिन जिन नवीन भाव सूचक शब्दों का अभाव हमारी भाषा में

दिखाई देता है, उनकी पूर्ति के लिये हमें केवल संस्कृत शब्दों से ही सहारा लेकर कार्य्य निर्वाह करना नहीं चाहिए, वरन् उन भाव बोधक वैदेशिक शब्दों का यदि तद्भव और तत्सम रूपोंमें हमारी भाषामें सुगमतासे मिलने की सम्भावना हो, तो उन शब्दोंको भी मातृभाषावत् मानकर प्रचार करना उचित है। ऐसी प्रथाके प्रचारसे भूमण्डल के नाना प्रान्तोंकी भाषाओंसे शब्द संग्रह कर हम हिंदी का शब्द भंडार बढ़ा सकते हैं; ऐसाही प्रयत्न क्रमागत करने से हिंदीमें ऐसे शब्दोंका अभाव नहीं दिखाई देगा, जिनके बिना किसी प्रकारका नवीन भाव प्रकाशित न हो सकता हो।

उत्तम है, क्योंकि यदि हममें पुरुषार्थका संपूर्ण अभाव ही होजावे, तो हमें चाहिये कि उपर्युक्त प्रथाके अनुसार द्वार द्वार भिक्षा माँग करही अपने अभावों की पूर्ति करें। परंतु इस भिक्षा-वृत्तिके द्वारा भी हम अपनी भाषाको सुगम और सरल नहीं कर सकते, वरन् हमारी भाषा अनियमित और असंख्य नवीन प्रयोगों की भरमार से बहुतही जटिल हो जावेगी। क्योंकि जिन जिन भाषाओं से शब्द तद्भव अथवा तत्सम रूपोंमें संग्रहित होवेंगे, उन शब्दों के यथार्थ ज्ञान के लिये उनके उद्भव का इतवृत्त भी व्याकरण अथवा कोषोंमें लिखना होगा; अर्थात् किन किन भाषाओंसे संग्रहित हुये हैं, तथा उनका उद्भव उन उन भाषाओं में किन किन ढङ्गों से हुआ है, इत्यादि ऐसे विषयों का इतिवृत्त भी उल्लेख करना होगा, इन विषयों को समझाने के लिये व्याकरण के नवीन नियम भी बनेंगे। अतएव उपर्युक्त प्रथाके अनुसार हिंदी व्याकरणका अङ्ग बहुत ही बढ़ जायगा, व्याकरण का अङ्ग बढ़ने से हिन्दी भाषा पर अधिकार जमाना कठिन हो जायगा। और यदि व्याकरण की आवश्यकता ही न समझी जावे, पूरी स्वाधीनता दी जावे, तब तो हिन्दी जटिलताकी पूर्ण सीमा में पहुँचेगी। क्योंकि विभिन्न प्रकार के शब्दों के यथार्थज्ञानके लिये बहुत से ग्रंथोंके पढ़ने की आवश्यकता होगी, जोकि अनायास साध्य नहीं हैं।

प्रकृतिका नियम है कि अधीन जातियाँ अपनी अपनी अनुशासिका जातियोंका अनुकरण किया करती हैं। इस प्रकृति सुलभ धर्मने हम पर भी आधिपत्य जमाया है। क्योंकि हमारे अनुशासक अङ्गरेजोंकी भाषा सैकड़ों भाषाओंके शब्दोंके सहारे बनी है; वर्त्तमान समयमें अङ्गरेजी साहित्यकी बहुतही उन्नति दिखाई देती है, और प्रायः संपूर्ण भूगोलके व्यवसायियों की माध्यमिक भाषा होरही है। अतएव हमें यह दृढ़विश्वास होगया है, कि नाना भाषाओं से शब्द संग्रह कर अपना शब्द भंडार पूर्ण करनेसे हिंदी साहित्य की उन्नति हो सकती है, और इस शैलीसे हमारी भाषा बहुतही सुगम हो सकती है।

परंतु हमने यह नहीं विचारा, कि अङ्गरेज़ी भाषाके जटिल होनेके कारणोंमेंसे नाना जातियोंके शब्दोंका संग्रह भी एक मुख्य कारण है। क्योंकि इन अनियमित शब्दोंके ज्ञानके लिये बहु पुस्तकों के अध्ययन की अपेक्षा रहती है। मिस्टर मेकमर्डी— "Studies in English" नामक पुस्तिकाके प्रारंभ में ही विभिन्न जातिके शब्दोंके प्राचुर्य्यादिके कारण अङ्गरेज़ी भाषाकी जटिलता पर ऐसा कहते हैं कि-

" The English language is difficult to a foreigner, chiefly for three reasons: Its mode of spelling is irregular, its vocabulary is very copious, and it has many peculiar idioms.

It is said that an Egyption prince once asked the famous geometrician, Euclid, whether there was not some easier way of mastering geometry than that which he had given in his Elements; and that the great mathematician replied, " No, Prince, there is no royal road to Geometry." So in the study of English, there is no short and easy way of acquiring a full knowledge of the language: constant study, the caseful read-

ing of good English authors, and conversation with accurate speakers of English, will be the best means of the learner to employ. Never the less a book, pointing out and correcting common mistakes, may be very useful to the Indian student."

भावार्थ इसका यह है; कि—

"विदेशियों के लिये अङ्गरेज़ी भाषा विशेषकर तीन कारणोंसे बहुत कठिन है। प्रथम कारण यह है कि अङ्गरेज़ी (वर्णमाला) का उच्चारण अनियमित है; द्वितीय यह है कि अङ्गरेज़ी भाषामें (विभिन्न जातिके) शब्द बहुत हैं, तृतीय यह है कि अङ्गरेज़ी भाषामें निराले ढङ्गके मुहाविरे अधिक हैं।

"ऐसा कहते हैं कि मिश्र देशके किसी महाराजने प्रसिद्ध रेखागणितके पण्डित युक्लिडसे यह पूछा था, कि रेखागणित शास्त्रपर अधिकार जमाने के लिये जो नियम आपने प्रतिज्ञाओंमें वर्णन किये हैं, क्या उससे सुगमपथ किसी अन्य उपायों के द्वारा नहीं मिल सकता; उक्त गणित शास्त्र के महापण्डित ने उत्तर यह दिया कि "नहीं, महाराज, रेखागणित में ऐसा प्रशस्त राजपथ दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार अङ्गरेज़ी भाषा की शिक्षा के लिए ऐसा सीधा और सुगम उपाय दिखाई नहीं देता, जिसके द्वारा भाषा पर पूर्ण ज्ञान लाभ हो सके। क्रमागत अध्ययन, अच्छे अच्छे ग्रन्थकर्त्ताओं के ग्रन्थोंका अवलोकन, तथा, अङ्गरेज़ी के अच्छे अच्छे विद्वानों से वार्त्तालाप करनाही शिक्षार्थी के लिए भाषा पर अधिकार जमाना सुगम है। तब हाँ, ऐसी पुस्तक भारतीय छात्रों को अधिक उपयोगी हो सकती है, जिसकी सहायता से भाषागत साधारण भूलें संशोधित हो सकें।

अतएव यदि हम अगणित वैदेशिक शब्दों को शुद्ध अथवा विकृत भावसे (जिसे दूसरे प्रकारसे तद्भव और तत्सम कहा जाता है) हिन्दी की शब्दावली में क्रमागत जोड़ते जायँ, तो इन भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दों के उपर्युक्त उद्भवादि विषयों को समझाने के लिये एक बहुत ही बड़ा व्याकरण बनाना पड़ेगा, जो कि टीका और भाष्य सहित पाणिनि के व्याकरण से भी बृहदाकार हो सकता है। अतएव हिन्दी भाषा भी अन्य प्रान्तवालों की दृष्टि में अङ्गरेज़ी भाषा सी एक जटिल भाषा समझी जावेगी, तथा संस्कृतोन्मुखी भारत की अन्यान्य भाषाओंसे भी बहुत ही भिन्न हो जावेगी और इस जटिलता तथा भिन्नता के हेतु तथा हिन्दी की सरलता नष्ट होने के हेतु भी इसे माध्यमिकी भाषा बनाना असम्भव सा हो जावेगा। अङ्गरेजों ने अपने बाहुबल से कलाकौशल और वाणिज्य बलसे अपनी भाषाको जटिलता रहते हुए भी भूमण्डल की मध्यस्थ भाषा सी बना दी है। परन्तु हममें तो उपर्युक्त शक्तियों का सम्पूर्ण अभाव है. अतएव यदि हम अपनी भाषाको अङ्गरेज़ी के अनुकरण पर जटिल कर डालेंगे, तो इसके प्रचार पर बहुतही बाधा पहुँचेगी।

हमें इस समय ऐसा उपाय ग्रहण करना चाहिए कि संस्कृत साहित्य के सदृश शब्दोद्भव के नियमों की संक्षिप्तता की भित्ति पर शब्द प्राचुर्य की शैली ग्रहण करें, जिसके सहारे संख्याधीन नियमों की सहायतासे असंख्य शब्दों की सृष्टि हो सके। इस शैली के अनुसार नियमों की न्यूनता से अभ्यास करनेमें परिश्रम कम होगा; और शब्द भी एक जाति के नाना भाव-बोधक असंख्य बन सकेंगे। वर्त्तमान हिन्दी साहित्यका झुकाव जिस ओर जारहा है उससे सुगमता तो होगी नहीं, प्रत्युत भाषा जटिल से जटिलतर होती जावेगी, और प्रान्तीय भाषाओं से भी भिन्नता क्रमशः बढ़ती ही जावेगी। अतएव हिन्दी-साहित्य के अनुरागियों का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि हिन्दी के वर्त्तमान झुकाव को फेर कर किसी एक निर्दिष्ट नियम के अधीन करें।

हिन्दीके वर्त्तमान झुकाव को फेर हमें किन किन उपायों से अपने साहित्यको अलंकृत करना

हिन्दी साहित्य को अलङ्कृत करने के यत्न कैसे करना चाहिये।

उचित है, इस पर विचार करना बहुत ही आवश्यक दिखाई देता है भारतवर्ष की सम्पूर्ण कथित भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं, इन भाषाओं में संस्कृत के शुद्ध और विकृत शब्द अधिकांश व्यवहृत होते हैं विदेशियों के साथ राजनैतिक तथा वाणिज्य सम्बन्ध रहने के हेतु यहाँ की भाषाओं में बहुत से वैदेशिक शब्द शुद्ध और विकृत भाव से आ घुसे हैं बङ्गला गुजराती, महाराष्ट्री आदि साहित्य प्रधान भाषाओं के लिखित भाषाओं में संस्कृत शब्दों का समावेश दिनोंदिन बढ़ता जाता है, बङ्ग-भाषा के व्याकरण में सुबन्त और तिगन्त के नियमों को छोड़ प्रायः सभी संस्कृत के व्यावहारिक नियमों का समावेश हो गया है। बङ्गला अविधान को हम संस्कृत भाषा का अभिधान कह सकते हैं। क्योंकि बङ्गला अभिधानों में बङ्गाल की ठेठ बोलियाँ कष्ट से चार आने भी नहीं निकलेंगी परन्तु बारह आने भाग संस्कृत शब्दों से ही भरा मिलेगा। ऐसाही प्रयत्न हमें भी करना चाहिये; और क्रमशः लिखित भाषा से वैदेशिक शब्दों को निकाल कर, तथा ठेठ शब्दों के स्थान पर भी संस्कृत शब्दों का शुद्ध रूपमें समावेश कर अपने साहित्य को अलंकृत करना चाहिए। इस शैली के अनुसार हमें शब्दों की दरिद्रता अनुभूत न होगी, और हमें भिक्षा माँगने के लिए दूसरों के द्वारपर खड़ा भी न होना होगा। क्योंकि संस्कृत का शब्द भंडार अक्षय है, संसारमें ऐसे भाव नहीं दिखाई देंगे जिनके द्योतक संस्कृत में शब्द न हों अथवा संस्कृत व्याकरण के अनुसार नवीन भावों के लिये नवीन शब्दों का सङ्गठन न हो सकता हो। बङ्गभाषा के "शब्दार्थ मुक्तावली" नामके अभिधान की भूमिका में ग्रन्थकर्त्ता गौरव के साथ यह कहते हैं कि—

"एइ महीयसी संस्कृत भाषा अति वर्षीयसी, ए भाषार प्रतिरूप भाषा नाइ, ए भाषा के दैवी भाषा बलिया स्वीकार करा याय, ये हेतु इहा कोन देश भाषार मध्ये गएया नहे + + + + धरातले एमन विषय किछुमात्र नाइ, ये संस्कृत भाषाते ताहाके अनायासे सुन्दर रूपे लिपिवद्ध करिते ना पारा याय।" भावार्थ यह है कि—

"यह महीयसी संस्कृत भाषा अतिशय प्राचीना है, इस भाषा के सदृश दूसरी भाषा नहीं है, इस भाषा को दैवी भाषा कहकर स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि किसी देश भाषा में इसकी गणना नहीं होती। भूमण्डल में ऐसा विषय कुछ भी नहीं है, जिसे संस्कृत भाषामें सुन्दर रूपसे अनायास लिपिवद्ध न किया जा सकता हो।" बङ्गीय भाषा संस्कृत भाषाके बहुत ही समीप पहुँच गई है। अपने बङ्ग साहित्यका यह अभिमान कर उक्त बङ्गीय कोषकी भूमिका में ग्रन्थकार यह लिखते हैं, कि—

"गौड़ीय भाषा + + + संस्कृत शब्देर द्रुत व्यवहार विधाय तदपभ्रंशे पूर्वे उत्पन्ना हइयाछे; किन्तु यत देश भाषा थाकुक तन्मध्ये बङ्गदेशीय भाषाकेइ साधुभाषा बला याय, येहेतु एइ भाषाते भूरिशः संस्कृत शब्देर व्यवहार दृष्ट हइतेछे। अन्यान्या भाषाते यथाकथञ्चित विकृति रूपे संस्कृत शब्द उच्चारित हइया थाके, किन्तु बङ्ग भाषाय अर्थात् गौड़ीय भाषाय प्रायइ अनेक शब्द अविकल संस्कृतवत् उच्चार्यमान हय।"

अर्थात् "गौड़ीय भाषा संस्कृत शब्दों के द्रुत उच्चारणके व्यवहार के कारण उसी के (अर्थात् संस्कृत के) अपभ्रंश रूपमें पूर्व समयमें उत्पन्न हुई थी, परन्तु जितनी देश भाषा क्यों, न रहे उनमें बङ्गदेश की भाषा को ही साधु भाषा कहा जा सकता है; क्योंकि इस (बङ्ग) भाषा में संस्कृत शब्दों के व्यवहारों की प्रचुरता दिखाई देती है। अन्यान्य भाषाओं में यथाकथञ्चित विकृत रूप में संस्कृत शब्द उच्चरित होते हैं, परन्तु बङ्गभाषा में प्रायः अनेक शब्द अविकल संस्कृत के सदृश ही बोले जाते हैं।"

उपर्युक्त "शब्दार्थ-मुक्तावली" नामक बङ्गला

अभिधान शकाब्द १७८८ में प्रकाशित हुआ था, जिसे ४६ वर्ष हुये हैं। उपर्युक्त भूमिका वा उद्धृत अंश उसी समय के संस्करण का है। पाठक! इस उद्धृत अंश सेही समझ सकेंगे, कि वङ्ग-साहित्य ने ५० वर्ष पूर्व से ही संस्कृत शब्दों का व्यवहार कितना अधिक किया है, और इस संस्कृत-शब्द-प्राचुर्य्य के कारण बङ्गालियों को अपने साहित्य का कितना गौरव अर्द्ध शताब्दी से भी पूर्व से हो रहा है, कि अन्य प्रान्तीय भाषाओं में संस्कृत शब्दों की बहुलता का प्रभाव दिखाते हुए, उन्हें साधु-भाषाही नहीं मानते हैं। जिस समय उक्त "शब्दार्थ मुक्तावली" अभिधान प्रकाशित हुआ था, उस समय वर्तमान गद्य-हिन्दी-साहित्य का जन्म स्यात ही हुआ हो। अनुमान से ऐसा विदित होता है, कि उस समय विहार से लगाकर राजपूताना और पञ्जाब पर्य्यन्त उर्दू और फ़ारसी का अटल राज्य होगा। यही मुख्य कारण है, कि उपर्युक्त ग्रन्थकर्त्ता ने भूमिका में बङ्गाल से पश्चिम भारत की भाषाओं को "असाधु भाषा" यों कहिये कि "अर्द्ध-म्लेच्छ" अथवा "म्लेच्छ भाषा" की संज्ञा परोक्षभाव से दी है। अतएव यदि हम अपने साहित्य का प्रभाव अन्य प्रान्त वासियों पर डालनेकी अभिलाषा रखते हों, तथा हिन्दी को अन्य प्रान्तवालोंसे "साधु-भाषा" कहलाना चाहते हों, तो हमें चाहिये कि दृढ़ताके साथ वङ्ग-साहित्यके सदृश संस्कृतके शब्दोंको अपनाना प्रारंभ करदें यहाँ तक कि केवल विभक्तियोंके रूपों में ही भिन्नता दिखाई दे, अवशिष्ट भाग हिन्दी का संस्कृतवत् रूप हो जावे, तो हमें यह विश्वास हो सकता है कि अन्य प्रान्तवाले इसे पूज्य दृष्टिसे देख "साधु-भाषा" मानेंगे, और "असाधु-भाषा, "अर्द्ध—म्लेच्छ—भाषा" किंवा "म्लेच्छ—भाषा" का कलंक भी हमारे साहित्य परसे एकदम उठ जावेगा।

वर्त्तमान समय में भारतकी साहित्य प्रधान भाषाएँ संस्कृतकी ओर जारही हैं, संस्कृत शब्दों का बहुलतासे व्यवहार होरहा है। यदि हम उपर्युक्त शैलीके अनुसार अपने साहित्य का अङ्ग पूर्ण करेंगे, तो "साधु हिन्दी-भाषा" प्रान्तीय भाषाओं से बहुत ही हिलमिल जायगी, और अन्यान्य प्रांतवाले इसे माध्यम मानने में बाधा नहीं पहुँचावेंगे, तथा हिन्दी—साहित्य पर अपना अधिकार जमाने में भी उन्हें विशेष आयास स्वीकार करना नहीं पड़ेगा। अतएव भारतवर्ष में हिन्दी के सार्व्वजनिक प्रचारकी दृष्टिसे भी हमारा यह प्रधान कर्तव्य होना चाहिये, कि हम अपने साहित्य को संस्कृतकी ओर ले जावें।

भारतीय राष्ट्र गठन में संस्कृत भाषाका अधिक प्रचार भी मुख्यतम लक्ष होना चाहिये। क्योंकि भारतके सब प्रान्त वाले इसे पूज्य दृष्टिसे देखते हैं। हमारे धर्म्म ग्रन्थ, और प्राचीन सभ्यता का निदर्शन, तथा भारतीय प्राचीन साहित्यका महत्व संस्कृत भाषामें ही निवद्ध है। जबतक हम अपने धार्म्मिक ग्रन्थोंसे सुपरिचित न होंगे, और अपनी प्राचीन सभ्यता तथा साहित्यके गौरव को न समझेंगे, तब तक हमारी उन्नति सर्वाङ्ग सम्पन्ना न होगी। संस्कृत बहुल शब्दोंकी सहायतासे यदि हिन्दी साहित्यकी उन्नति होगी, तो हिन्दी भाषाके पण्डितोंको संस्कृत पर अधिकार जमाना सुगम हो जावेगा। बङ्गला साहित्य पर अधिकार रखने वालोंको वङ्ग साहित्यके प्रभावसे संस्कृत भाषापर अधिकार जमाना सुगम है।

"पताका" नामकी वङ्गभाषा की एक साप्ताहिक निबन्ध मूलिका पत्रिका सन् ईस्वी १८८४ में प्रकाशित हुई थी, जो एकही वर्ष पृथक प्रकाशित हो "सुरभि" नामकी पत्रिका के साथ सम्मिलित हो गई। इस पत्रिका में "दयानन्द चरित्र" नामका एक लेख तीन अङ्कोंमें प्रकाशित हुआ था। उक्त पत्रिकाके बङ्गला तारीख १२ पौष बङ्गाब्द १२६१ अङ्क ६ दिसम्बर सन् १८८४ के अङ्कमें उक्त लेख [illegible]तर्गत स्वामी दयानन्दजीके कलकत्ता शुभा[illegible]का वृत्त लिखते समय लेखक यह लिखते हैं कि—

"केशव बाबुर बाटी ते ये दिन प्रथम दयानन्देर वक्तृता शुनिलाम, सेदिन एकटि नूतन व्यापार प्रत्यक्ष करिलाम। संस्कृत भाषायें ये एमन सरल, मधुर वक्तृता हइते पारे जानिताम ना। तिनि एमनि सहज संस्कृत बलिते लागिलेन ये, संस्कृत भाषाय ये व्यक्ति महामूर्ख सेओ ताँहार कथा बुझिते लागिल।"

अर्थात् "केशव बाबू के भवन में जिस दिन मैंने प्रथम स्वामी दयानन्द जी की वक्तृता सुनी; उस दिन एक नवीन घटना प्रत्यक्ष की। संस्कृत भाषा में इतनी सरल और मधुर वक्तृता होसकती है, यह मैं पहले नहीं जानता था। स्वामी जी इतना सरल संस्कृतभाषण करने लगे, कि जो मनुष्य संस्कृत भाषा में महामूर्ख था, वह भी उनके भाषण को समझने लगा।"

उपर्युक्त उद्धृत अंश से यह विदित होता है, कि वङ्ग साहित्य में संस्कृत शब्दों की बहुलता होने के कारण ही स्वामी दयानन्द जी की सरल-संस्कृत वक्तृता सभा में उपस्थित बङ्गाली सज्जनों के समझ में संपूर्ण आगई थी। अतएव संस्कृत भाषा के अधिक प्रचार की दृष्टि से भी हिन्दी-साहित्य को संस्कृतोन्मुख करना उचित है।

बङ्गला साहित्य के अभ्युत्थान के समय से लगाकर अद्यावधि जितने साहित्य सेवी हुये, उनमें अधिकांश की यही सम्मति है, कि बङ्गला भाषा को संस्कृतोन्मुखी करना चाहिए। यह उद्देश्य उनका कार्य जगत् में प्रायः ५० वर्षों से आ भी गया है। वर्त्तमान समय में बङ्गीय-साधुभाषा अर्थात् संस्कृत-बहुल-बङ्गीय-भाषा का आदर इतना बढ़गया है, कि अनपढ़ बङ्गाली भी बङ्गाल के ठेठ बोलियों को "इतुरे भाषा" अर्थात् "नीचों की भाषा" अथवा "मेयेली भाषा" अर्थात् "स्त्रियों की बोली" कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। ऐसे अनपढ़ बङ्गाली भी पत्रादि लिखवाते समय 'सभ्य भाषा" अथवा "साधु-भाषा" के प्रयोग का सुनना पसन्द करते हैं। यही मुख्य कारण है, कि बङ्गला के अभिधानों में बङ्गाल की ठेठ बोलियां प्रायः उपेक्षित हुई हैं। परन्तु मतभेद और रुचिभेद सभी स्थानों में हुआ करता है: ऐसे भी बङ्गाल में सुपुत्र दिखाई देते हैं; जिन्हें बङ्गालकी ठेठ बोलियां "साधु भाषा" मालूम होती हैं; नाना भाषाओं के अपभ्रंश शब्द उन्हें अच्छे मालूम हैं, तथा संस्कृत के शब्दों में उन्हें मधुरता तथा कोमलता खोजे नहीं मिलती।

उपर्युक्त "पताका" साप्ताहिक पत्रिका के २४ फाल्गुन, बङ्गाब्द १२६१; अङ्गरेज़ी ६ मार्च १८८५ के अङ्क में "बाङ्गला भाषा ओ तत्प्रति शिक्षित बाङ्गालिर कर्त्तव्य" अर्थात् "बाङ्गला भाषा और तत्प्रति शिक्षित बङ्गालियों का कर्त्तव्य" शीर्षक एक प्रबन्ध प्रकाशित हुआ था। लेखक यह लिखते हैं, कि—

"बोध हय इहा बला अत्युक्ति नहे ये बङ्ग-भाषार एक खानिओ प्रकृत अभिधान नाइ। ये गुलि बाङ्गाला भाषार उत्कृष्ट अभिधानेर मध्ये परिगणित, ताहारा केहइ बाङ्गाला भाषार अभिधान नहें। सकल गुलिइ संस्कृत अभिधानेर परिच्छद परिवर्तन मात्र। इहा अवश्यइ आमि स्वीकार करि ये बाङ्गाला अभिधाने संस्कृत शब्द ना थाका असम्भव। संस्कृत शब्द भिन्न बाङ्गाला अभिधान 'राम छाड़ा रामायण'। किन्तु ताइ बलिया ये देशज बाङ्गाला शब्द अभिधाने थाकिबे ना, वा थाकिले अभिधानेर गौरव नष्ट हय, इहा आमि स्वीकार करिते पारिना। एमन अनेक कोषकार आछेन ये ताँहारा देशज बाङ्गाला शब्द स्वीय अभिधाने स्थान दिते सम्मत नहेन। ताहाँ देरमते बाङ्गाला शब्द गुलिर आदरे अभिधानेर गौरवेर हानि हय। तांहा देर केन, बोध हय साधारणेरओ एइ विश्वास ये, संस्कृत-शब्द बहुल परिमाणे दिते पारिलेइ, अभिधानेर गौरव बाड़िल। ए विश्वासेई आमादेर अभिधान गुलिर एकटी बड़ अभाव रहियाछे। इहा दुःखेरओ विषय, हासिर ओ विषय ये, बाङ्गला अभिधाने बाङ्गला शब्द खुजिया पाइबे ना"।

भावार्थ इसका यह है, कि—

"मैं अनुमान करता हूं कि यह कहना अत्युक्ति न होगा, कि वङ्ग-भाषा में एक भी यथार्थ अभिधान नहीं। वंग भाषा में जितने कोष उत्कृष्ट अभिधानों में गिने जाते हैं वे एक भी वङ्ग भाषा के कोष नहीं हैं। वे सब संस्कृत अभिधानों के रूपान्तर मात्र हैं। यह मैं अवश्य स्वीकार करता हूँ कि वङ्गभाषा के कोषों में संस्कृत शब्दों का रहना असम्भव है। संस्कृत शब्दों को छोड़ने से बङ्गला कोषों की ठीक २ वैसी ही अवस्था होगी, जैसी भगवान रामचन्द्र की कथा के अंश को छोड़ कर रामायण की अवस्था हो सकती है। परन्तु केवल इसी कारण से देशज (ठेठ) बङ्गला शब्द अभिधानों में न रहेंगे, अथवा ऐसे ठेठ शब्दों के रहने से अभिधानों का गौरव नष्ट होगा, यह मैं स्वीकार नहीं कर सकता। ऐसे बहुत से कोषकार हैं, वे देशज (ठेठ) बङ्गला शब्दों को अपने कोषों में स्थान देना पसन्द नहीं करते उनकी सम्मति के अनुसार बङ्गला (ठेठ) शब्दों को आदर देने से कोषों का गौरव नष्ट हो जावेगा। केवल उनके ही मत से क्यों, मैं अनुमान करता हूँ, कि सर्वसाधारण का भी ऐसा ही विश्वास है, कि संस्कृत शब्दों का समावेश अधिकाई के साथ करने से ही अभिधानों का गौरव बढ़ता है। केवल इसी विश्वास के कारण से ही हमारे अभिधानों में एक बड़ा अभाव रह गया है। यह बड़े ही दुःख की बात है, साथ ही हंसी भी आती है, कि बङ्गला के अभिधानों में वङ्गभाषा के ठेठ शब्द खोजे नहीं मिलते।"

उपर्युक्त उद्धृत अंश में बङ्गला की ठेठ बोलियों का प्रयोग अधिक किया गया है, तथा लेखक की सम्मति यह है कि वङ्ग-साहित्य में संस्कृत-शब्द तो रहेहींगे, परन्तु ठेठ शब्दों का प्रयोग भी साहित्य में होना चाहिए। बङ्गला के ठेठ बोलियों के पक्षपातियों की गणना में सब से प्रथम यही सज्जन दिखाई देते हैं; क्योंकि इससे पूर्व किसी अन्य पुस्तक अथवा समाचार पत्र में ऐसा मन्तव्य देखने में नहीं आया। ऐसेही ठेठ बङ्गला के पक्षपातियों का मत पुष्ट होते होते, अब एक दल में परिणत होगया है। परन्तु इस दल में बहुतही कम सज्जन सम्मिलित हैं; और साधु-भाषा के पक्षपातियों का दलही बहुत पुष्ट है। उपर्युक्त शैली के अनुसार प्रथम प्रथम इस ठेठ बंगला के दलवालों ने यह प्रचार किया कि संस्कृत शब्दों का प्रयोग तो रहना चाहिए ही परन्तु ठेठ शब्दों का भी निरादर एक दम न होना चाहिये। वर्तमान समय में इस दल के नेताओं की सम्मति सम्पूर्ण भिन्न होगई है। इसी दल के पक्षपाती महामहोपाध्याय श्रीयुत पण्डित हरप्रसाद जी शास्त्री महोदय ने "बाङ्गला भाषार गति" अर्थात् "वङ्गभाषा का झुकाव" नामक एक लेख "हितवादी" बङ्गला साप्ताहिक पत्र के २१ ज्येष्ठ बङ्गाब्द १३२२ अङ्गरेज़ी ४ जून १९१५ के अङ्क में प्रकाशित किया था, उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर देता हूँ, जिससे पाठकों को विदित होगा, कि इस दल के पक्षपाती किन किन युक्तियों के सहारे वङ्गीय साहित्य को संस्कृत की ओर से मोड़ा चाहते हैं। उक्त महामहोपाध्याय जी का लेख भी कुछ ठेठ शब्दों से अधिक संबन्ध रखता है। आप अपनी ठेठ बोली में यों लिखते हैं; कि—

"अनेकेर संस्कार बाङ्गला भाषा संस्कृतेरकन्या श्रीयुक्त अक्षयचन्द्र सरकार महाशय संस्कृतके बाङ्गला भाषार ठान्दिदि बलिया छेन। आमि किन्तु संस्कृत के बाङ्गलार अति-अति-अति-अति-अति-अति वृद्ध प्रपितामही बलि।"

भावार्थ इसका यह है कि—

"बहुतों को ऐसा संस्कार है, कि बंगलाभाषा संस्कृत की कन्या है। श्रीयुत अक्षयकुमार सरकार महाशय ने संस्कृत को वङ्गभाषा की पड़दादी बतायी है। परन्तु मैं संस्कृत को बङ्गला की अति-अति-अति-अति-अति-अति वृद्ध प्रपितामही समझता हूँ।"

हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों के अनुसार लोग

अशौच का संबन्ध सात पीढ़ी तक मानते हैं, इस से ऊपर के संबन्ध रखनेवाले नातेदारों से अशौच का संबन्ध नहीं मानते। शास्त्री जी ने बङ्गला से संस्कृत का दशवें पीढ़ी का सम्बन्ध दिखलाया है। अर्थात् संस्कृत के मरने में धर्मशास्त्रानुसार वङ्ग भाषा को अशौच नहीं लग सकता। जब कि अशौच सम्बन्धही नहीं है, तब वंगभाषा को संस्कृत के प्रति ममत्व प्रकट करने की आवश्यकताही क्या है? पिता माता के मरने पर ही लोगों को कष्ट बहुत होता है, क्योंकि सहायता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध पिता माता से ही बहुत रहता है, इससे उतर कर दादा दादी के मरने पर कष्ट होता है। इसके ऊपर एक दो पीढ़ी पर्यन्त स्यात ही किसी सौभाग्यवान को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता हो, अतएव उनपर माया किसी की नहीं रहती। संस्कृत सम्बन्ध वंगभाषा से दशवीं पीढ़ी का शास्त्री जी ने बताकर यह इङ्गित किया कि संस्कृत से सम्बन्ध बङ्गभाषा का कबका न कबका था, वङ्ग भाषा भाषियों को उसके प्रति उतना ममत्व प्रकट नहीं करना चाहिये। आप वङ्गवासियों में संस्कृत—वैराग्य का बीज बोकर यों कहते हैं, कि—

"सुतरां संस्कृतेर सङ्गे बाङ्गलार सम्पर्क अनेक दूर। याँहारा बाङ्गला के संस्कृतेर पथे चालाइते चान, ताँहादेर चेष्टा सफल हइवार सम्भावनाओ खूब कम। ××+× एखन एइ बाङ्गला के संस्कृतेर दिके चालाइबार चेष्टा, आर गङ्गार स्रोत के हिमालयेर दिके चालाइबार चेष्टा एकई रकम। ××× एइरूपे ताँहारा बाङ्गला के शुद्ध वा मार्जित करिया लइते चान ताँहादेर से चेष्टा कखनइ सफल हइबार नय। आबार एकदल आच्छेन, ताँहारा चलितबार कथा देखिलेई नाक सिँटकाइयां उठेन; बलेन—"ओटा इतुरे कथा।" उहार बदले ताँहरा संस्कृत शब्द व्यवहार करिते चान । ××××+एखन इंराजी ओ संस्कृत पड़िते यत कष्ट हय, तांहादेर साधुभाषा पढ़ितेओ तत कष्ट हय। ×××× एकबार रविबाबू बलियाछिलेन, "लेखना संस्कृत! बाजारे तोमार बइ काटिबेना। ताहाते तोमार कि क्षति हइबे? पोकाय त काटिबे?" वास्तविकइ बेशी संस्कृत ओयाला बाङ्गला बइ पोकतेइं काटे ×××××× अनेक नूतन जिनिस, नूतन भाव नित्यइ आसितेछे; ताहादेर जन्य कथा गड़ा एकटा विषम समस्या हइया दाँड़ाइयाछे। आमार बोध हय, बांगला हइतेइ ए समस्यार पूरण हओया भाल, बाँगला कथा दियाइ नूतन कथा गड़ा उचित। नितान्त ना पारिले, आसामी, उड़िया, ओ हिन्दी खुजिया देखा उचित। ताहाते ओ ना हइले ये भाषार भाव, सेइ देशेर कथा तेई लओया उचित। ×××××××नहिले कतक गुला दांत भांगा कट कटे शब्द तैयार करिया लइले भाषार सङ्गे ताहा खाय खाइबे ना।"

"अतएव संस्कृत भाषा के साथ वंग भाषा का सम्बन्ध बहुत दूर है। जो सज्जन वंग भाषा को संस्कृत की ओर झुकाया चाहते हैं, उनके प्रयत्न के सफल होने की सम्भावना बहुतही कम दिखाई देती है।×××वर्तमान समय में बंग भाषा को संस्कृत की ओर झुकाना, तथा गंगा के स्रोत को हिमालय कीओर लेजाने की चेष्टाकरना, यह दोनों एकही प्रकार के (असम्भव) हैं।×××वे ऐसेही वंग भाषा को शुद्ध और मार्जित कर लेना चाहते हैं। उनका उक्त प्रयत्न कभी सफल नहीं होगा। फिर एक समूह ऐसा भी दिखाई देता है, जोकि ठेठ बंगला शब्दों को देखते ही नाक सिकोड़ कर कहते हैं, कि "वह नीच शब्द है"। उसके स्थान पर वे संस्कृत शब्द व्यवहार किया चाहते हैं।××× वर्तमान समय में अंगरेज़ी और संस्कृत पढ़ने में लोगों को जितना कष्ट पहुँचता है, उन लोगों को साधुभाषा के पढ़ने में उतना ही कष्ट होता है। ××××एक दफे रविबाबू (नोबल प्राइज़ प्राप्त) ने ऐसा कहा था कि "लिखोना संस्कृत! बाज़ार में तुम्हारी पुस्तकों की कटन न होगी। इस से तुम्हारी क्या क्षति हो सकती है। कीड़े तो काटेंगे? वस्तुतः अधिक संस्कृत शब्दों से भरे

बंगला पुस्तकों को कीड़े ही काटते हैं। × × × बहुत से नवीन पदार्थ नवीन भाव नित्य ही आ रहे हैं, उनके हेतु शब्दों की पूर्त्ति करने एक विषय समस्या हखड़ी हुई है। मैं अनुमान करता हूं, कि वंगीय ठेठ शब्दों की सहायता से ही इस विषम समस्या की पूर्त्ति होनी चाहिए. बंगीय ठेठ शब्दोंके द्वारा ही नवीन शब्दोंका बनाना अच्छा है। यदि ऐसा होना असम्भव दीख पड़े, तो असामी, उड़िया, और हिन्दी भाषाओं से (शब्दों का अनुसन्धान करना उचित है। यदि इससे भो सहायता न मिले तो जिस भाषाका भाव है उस देश की भाषा से ही सहायता लेनी चाहिये। ऐसा न कर कतिपय दाँतों के तोड़ने वाले कठिन कठिन (संस्कृत) शब्द बना लेनेसे (वङ्ग) भाषा के साथ उन (कठिन संस्कृत शब्दों) का मेल नहीं होगा।

शास्त्री जी के उपय्युक्त विचारों को देखकर मुझे बहुतही आश्चर्य्य होता है कि वङ्ग भाषा के संस्कृत शब्द बहुल सैकड़ों ही गद्य और पद्य ग्रन्थ मैने देखे, जिनके कई संस्करण होगए हैं अधिकांश मासिक पत्रिकाएँ भी संस्कृत शब्द बहुल साधु भाषा में लिखी जाती हैं जैसे तत्व बोधिनी आलोचना आदि, जिन्हें प्रारम्भ होते अर्द्ध शताब्दी से भी अधिक समय बीते हैं। यदि संस्कृत शब्द बहुल वङ्गीय साधु भाषा सत्यही प्रचलन के योग्य न होती, तो पुस्तकों का अधिक संस्करण तथा पत्रोंका ४० अथवा ५० वर्षों से भी अधिक समय से चलना कैसे सम्भव होता! अतएव वङ्गीय साधु भाषा को भद्दा तथा प्रचलन के अयोग्य बनाने का प्रयत्न करना अद्भुत रसका अविर्भाव करना है आपकी उपर्युक्त सम्मति का भावार्थ यही है, कि संस्कृत से वङ्ग भाषा का नाता कबका ना कबका था अब नाम मात्र को ही है। संस्कृत के शब्द बहुत कड़ुए तीखे हैं इनके प्रचारके लिए प्रयत्न करना अनुचित है प्रत्युत सर्ववोध गम्य ठेठ शब्दों का प्रचार होना चाहिये यदि इससे अभाव मोचन न होवे तो असामी उड़िया, हिन्दी, अङ्गरेजी, अरबी, फारसी यहाँ तक कि अफ्रिका की जंगली भाषा जुलु तक से भी सहायता लेकर वङ्गभाषा को एक महाशङ्कर भाषा बना देना उचित है। परन्तु संस्कृत के शब्द बाघ हैं, उनके पास जाना अच्छा नहीं ऐसीही सम्मति "नोबल प्राइज़ प्राप्त" श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भी है। संस्कृत-विमुख उपर्युक्त सम्मति के साथ "महामहोपाध्याय" तथा "नोबल" शब्दों का क्या ही गूढ़ और रहस्य पूर्ण सम्बन्ध है, यह कुछ समझ में नहीं आता। यदि संस्कृतोन्मुखी वर्तमान वङ्ग-साहित्य की गति सम्पूर्ण फेरकर बङ्गालके ठेठ शब्द तथा तद्भव और तत्सम शब्दों की ओर झुके, तो वङ्ग-साहित्य का अधःपतन अवश्यम्भावी है। क्योंकि वङ्ग-साहित्य का वर्त्तमान एक रूप सैकड़ोंहीं विभागों और उपविभागों में विभक्त हो जावेगा; और बङ्गाल के प्रान्त प्रान्त की भाषा पृथक् हो जावेगी।

भाषा पार्थक्य की दृष्टि से वङ्गदेश मुख्यतः दो मुख्य विभागों में विभक्त हो सकता है, जैसे पश्चिम वङ्ग और पूर्व-वङ्ग। वर्तमान वङ्ग-साहित्य पश्चिम वङ्ग की भाषा पर संस्कृत शब्द बहुलता की सहायता से संगठित हैं। पूर्व-वङ्गकी भाषा गँवारू समझी जाती है। प्रायः २०। २५ वर्षों के लगभग हुए होंगे, कि पूर्ववङ्गवालोनें अपनी ठेठ बोलियों को वङ्ग-साहित्य में लाने के लिये बहुत बल दिया था। परन्तु ठेठ बोली "नीच भाषा" कहकर; तथा साधु भाषा में "नीच-शब्दों" का प्रयोग अनुचित समझाकर पूर्व वङ्गवासियों के प्रयत्नों को रोका गया था। यदि उपर्युक्त शास्त्री जी की सम्मति अनुसार ठेठ शब्दों का ही साधु-भाषावत् आदर वङ्ग-साहित्य में बढ़ जावे, तो पश्चिम वङ्ग से पूर्व-वङ्ग की मिश्र भाषा बोलने वाले, जहाँ कि मुसलमानों की ही संख्या कहीं अधिक है. क्यों न अपने देशज शब्दों का प्रयोग साहित्य में करेंगे? आसामी, उड़िया

भाषाएँ भी एक प्रकार की बङ्गला भाषा है, परन्तु यहाँ वालों को अपने ठेठ शब्दों पर ममत्व रहने के कारण, तथा उक्त भाषाओं में साहित्य भी कुछ रहने के हेतु बङ्ग-साहित्य-जगत् में वे सम्मिलित नहीं हुये। ऐसे ही पूर्व-बङ्ग की भाषा बोलने वाले अपनी ठेठ बोलियों का गौरव कर साहित्य में प्रयोग करेंगे। स्मरण रखना चाहिये कि झगड़ों के मूल मुसलमानों का समुदाय पूर्व-बङ्ग में बहुत अधिक है, हिन्दू-चतुर्थांश मात्र हैं। अतएव बङ्ग साहित्य में ठेठ शब्दों के पक्ष को लेकर भयंकर विप्लव उपस्थित होवेगा, तथा बङ्ग-साहित्य के दो मुख्य विभाग हो जावेंगे, एक पश्चिम वंगीय-साहित्य तथा दूसरा पूर्व-बङ्गीय-साहित्य। ठेठ शब्दों का आदर बढ़ने से इस होनी को रोकना असम्भव है, यह एक दिन होहीगा। बङ्ग-विभाग पर यहाँ कितना विकट आन्दोलन हुआ था, यह सभी जानते हैं। राजकीय उद्योग से बङ्ग-विभाग नहीं हुआ, तो उपर्युक्त घटना के द्वारा अनायास हो जावेगा।

कई वर्ष हुये कलकत्ता के "बंगवासी" नामक बंगला साप्ताहिक पत्र में पश्चिम बङ्ग की अवान्तर भाषाओं (अर्थात् ज़िले ज़िले की पृथक २ भाषाओं) के एक ही भाव तथा अर्थ बोधक वाक्य पर २५ प्रकार के मुहाविरे तथा शब्दों एवं विभक्तियों तथा क्रियाओं की भिन्नता निदर्शन रूप से दिखाई थी। प्रान्तीय भिन्नता अनुसन्धान करने से और भी मिलेंगी। अनुमान सौ सौ कोसों के व्यवधानों में ग्रामों में भाषा तथा मुहाविरे बदलते गये हैं। यदि ठेठ शब्दों का आदर बढ़ताही जावेगा, तो पश्चिम बङ्ग की भी जिले जिले की भाषा तथा साहित्य पृथक पृथक हो जावेगा। ऐसी ही अवस्था पूर्व-बङ्ग की भी होवेगी; क्योंकि वहाँ भी भाषागत अवान्तर भेद बहुत हैं। ऐसे ही बङ्ग साहित्य का वर्तमान एक रूप सैकड़ों विभागों और उपविभागों में विभक्त होकर नष्ट भ्रष्ट हो जावेगा।

भारतवर्ष की महाराष्ट्री, गुजराती आदि भाषाएँ संस्कृतोन्मुख हो रही हैं, हिन्दी-साहित्य में भी ऐसी ही प्रथा क्रमशः गृहीत हो रही है। यदि बङ्ग-साहित्य ठेठ शब्दों से पूर्ण हो जावेगा, तो प्रान्तीय भाषा के साहित्य से भिन्न साहित्य खड़ा होवेगा। भारतीय भाषाओं का 'संस्कृतोन्मुखी होने में भाषा की एकता बढ़ेगी, और ठेठ शब्दों के प्रति ममत्व प्रकाश करने से भाषा का पृथकत्व दिनोंदिन बढ़ेगा, अतएव भारतवर्ष की भाषागत एकता पर अत्यन्त बाधा पहुँचेगी, भाषा पृथकत्व के कारण प्रान्तीय भाव अन्तिम सीमा को पहुँचेगा, और इसका भयानक विषमय फल देश को भोगना पड़ेगा, जिसका निवारण जर्मन राष्ट्र के संगठन पर पहले ही कहा गया है। तथा ठेठ शब्दों के अधिक प्रचार पर संस्कृत भाषा पर अधिकार जमाना भी कठिन हो जायगा।

वंगीय-साहित्य-जगत के उपर्युक्त विवरण के सदृश हिन्दी-साहित्य-जगत में भी ऐसी ही बाधाएँ दिखाई दे रही हैं, और भविष्य में उठने की भी सम्भावना हो सकती है। अतएव उपर्युक्त वंगीय-वृत्त केवल हिन्दी साहित्य प्रेमियों को सतर्क करने के लिये ही कहा गया है। ऐसे सङ्कटों से बचने के लिये भी हमें अपने साहित्य को संस्कृत की ओर झुकाना ही उचित है।

यहाँ पर यह विरोध उपस्थित हो सकता है, कि वैदेशिक शब्दों के सहारे तद्भव और तत्सम शब्द जो हमारी भाषा में प्रचलित होरहे हैं, तथा नवीन शब्द इसी शैली के अनुसार बन भी सकते हैं, उससे जितनी सुगमता मिल सकती है, तथा ऐसे शब्दों का प्रचार होना जितना सरल है, उतना सीधापन नवीन संगठित संस्कृत शब्दों से नहीं मिल सकता। उत्तर में निवेदन यह किया जा सकता है, कि संस्कृत भाषा में अद्भुत आत्मीयकरणशक्ति है, कि संस्कृत व्याकरण की सहायता से वैदेशिक शब्दों के तद्भव और तत्सम रूपों को हम अपने साहित्य में स्थान दे सकते हैं। इस शैली के

द्वारा अगणित तथा अनियमित प्रयोगों की बहुलता से हमारा साहित्य जटिल नहीं हो सकेगा, और हमारे व्याकरण का अंग भी नहीं बढ़ेगा, तथा कोषों में सम्बन्धित वैदेशिक शब्दों का उल्लेख भी नहीं होवेगा; इस युक्तिसे हमारी भाषा "खिचड़ी" नहीं बन सकेगी; और हम में शुद्ध साहित्य का गौरव भी बढ़ेगा। जैसे पृथिवी के उत्तर मेरु तुषार प्रधान प्रान्त में एक सामुद्रिक जीव निवास करता है, जिसे अंगरेजी में 'walrus" (वालरस) कहते हैं। यह सामुद्रिक जीव जल में ही क्रीड़ा करता है, तथा समुद्र में तैरते हुए बर्फों के चट्टानों पर चढ़कर प्रायः भ्रमण किया करता है। इस walrus वालरस शब्द की उत्पत्ति जर्मन भाषा के wallross वालरोस शब्द से हुई है, इस जर्मन शब्द की व्युत्पत्ति wall से ह्वेल अर्थात् तिमि नाम की एक बड़ी मच्छी और ross से घोड़ा अर्थ होता है। अतएव walross शब्द का "तिमि-घोटक" अर्थ हो सकता है। परन्तु बंगालियों ने walrus अंगरेजी शब्द का "समुद्र-घोटक" अनुवाद किया है। परन्तु तिमि की अथवा घोड़े की आकृति के साथ इस जीव का कुछ भी सादृश्य नहीं मिलता। यदि "वालरस" शब्द से तद्भव रूप वार्लष्व बनावें, तो यह संस्कृत शैली के अनुसार उस जीव की सार्थक संज्ञा हो सकती है। जैसे "वार" शब्द का अर्थ जल है, और "लष्व" शब्द का अर्थ नर्तक है; अतएव "वार्लष्व" शब्द का अर्थ "जल—नर्तक" अथवा "जल—क्रीडक" हो सकता है; जोकि उक्त जीवके स्वभावके अनुकूल होने के कारण उसकी सार्थक संज्ञा हो सकती है; और अङ्गरेज़ों के विद्वान् भी तद्भव रूप होनेके कारण अनायास समझ भी सकते हैं। यदि प्रयत्न किया जाय तो ऐसे प्रमाण और भी मिल सकते हैं। श्रीयुत पण्डित भीमसेन जी शास्त्री महोदयने तद्भव और तत्सम शब्दोंको संस्कृत व्याकरण के अनुसार बनाने की शैलीपर 'संस्कृत भाषाकी अद्भुत शक्ति" नामक एक लेख "ब्राह्मण-सर्वस्व" भाग. १२ अङ्क० २ में प्रकाशित किया है, देखने योग्य है। मैं हिन्दी भाषाके अनुगामियों का ध्यान उक्त लेखके देखनेकी ओर आकर्षित करता हूँ। अतएव उपर्युक्त युक्तियों के अनुसार हम अपने साहित्यको संस्कृत शब्दोंसे ही अलंकृत कर सकते हैं। और अन्यान्य प्रान्तवालोंमें हिन्दीके प्रचार पर सुगमता ला सकते हैं, तथा इस शैलीके अनुसार संस्कृत के शब्दोंका सार्व्वजनिक प्रचार भी बढ़ सकता है।

पाठशालाओं महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होनेकी आवश्यकता।

वर्त्तमान समयमें हमारी माध्यमिक भाषा अङ्गरेज़ी हो रही है। परन्तु वैदेशिक भाषाकी मध्यस्थतासे हम अपनी जातीय उन्नति नहीं कर सकते, क्योंकि केवल भाषा शिक्षा में ही ६। १० वर्ष बीत जाते हैं, तदुपरान्त अन्यान्य विद्याओंकी शिक्षा में भी अधिक समय जाता है, योंही आधी उमर शिक्षामें ही बीत जाती है। यदि हमारी शिक्षाकी माध्यमिक भाषा हिन्दी होती, तो हमें भाषा शिक्षाके लिये इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता, और उपर्युक्त ६। १० वर्षोंके भीतरही शिक्षार्थी शिल्प विज्ञानादि शास्त्रों में भी प्रवेश लाभ कर सकते। अनान्य उन्नतिशीला जातियोंसे हम रे पिछड़े रहनेका यह भी एक मुख्य कारण है। यह बात सत्य है कि हमें राजभाषा अंगरेजी सीखनाही चाहिये, क्योंकि इसके बिना हमारा निर्बाह नहीं होसकता। परन्तु यदि निम्नकक्षाओं में भूगोल, इतिहास, गणित विद्यादिकी शिक्षा हिन्दी द्वारा हो तो छात्रोंका शीघ्रही इन विद्याओं में प्रवेश लाभ हो सकता है। क्योंकि निम्नकक्षा के छात्रों को अंगरेज़ी भाषाका अच्छा ज्ञान होता नहीं। अंगरेज़ी में भूगोल, इतिहास, तोता रटान रटना पड़ता है। परीक्षाके समय उपर्युक्त विषयोंका उत्तर अंगरेज़ी में देना पड़ता है। और निम्न कक्षाके छात्रोंको अंगरेज़ी में उत्तर लिखनेकी क्षमता होती नहीं, अतएव उन्हें बाध्य होकर पुस्तककी भाषाही

कण्ठस्थ करनी पड़ती है। यह बहुत ही कष्ट साध्य है तथा इसमें समय भी बहुत व्यर्थ जाता है। यदि उपर्युक्त विषयों की शिक्षा हिन्दी में दी जावे, और परीक्षा के समय उत्तर हिन्दी में ही लिखा जावे, तो परीक्षा देनेवाले अपनी मातृभाषामें अनायास उत्तर देसकते है। साथही डाक्टरी रसायन शास्त्रादि विद्याओं का प्रचार भी हिन्दी द्वारा होना चाहिये। क्योंकि ऐसे सुयोग्य छात्र कम निकलते हैं, जो कि अङ्गरेज़ी भाषा में परिपक्व हो उपर्युक्त विद्याओंके पारदर्शी हो सकें। योग्यता के अतिरिक्त अर्थाभाव भी प्रधान बाधक होता है, क्योंकि अङ्गरेज़ी शिक्षा में जितने समय बीतते हैं और इस समय में जितना अर्थ व्यय होता है, उतने समय और अर्थ की सहायता से अन्यान्य विद्याओं में लोग पारदर्शिता लाभ कर सकते हैं ऐसे अवसर बहुत दिखाई देते हैं, कि अङ्गरेज़ी पढ़ने वाले छात्रों को अल्पशिक्षित अथवा अर्द्ध शिक्षित अवस्था में ही उनके अभिभावकों के देहान्त होने अथवा असमर्थता के कारण उन्हें पूर्ण शिक्षा से हाथ धोना पड़ता है। अतएव उपर्युक्त विषयों के लिए एक देशीय भाषा का विभाग भी अवश्य होना चाहिए। वङ्गदेश में बङ्गला भाषा के द्वारा उपर्युक्त विद्याओं की शिक्षा दी भी जाती है। ऐसीही शैली हिन्दी के लिए भी होनी चाहिए। सार्वजनिक लाभ पहुँचाने के लिये हमारा यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि पाठशालाओं, महाविद्यालयों, तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाने का यथासाध्य प्रयत्न करें।

——:o:——

हिन्दी और नवयुवक

[लेखक—बाबू अनादिधन वन्द्योपाध्याय]

आज मैं इस तुच्छ लेख द्वारा उपस्थित सज्जनों को यह बताना चाहता हूँ कि नवयुवक गए किस दृष्टि से अपनी मातृभाषा हिन्दी को देखते हैं। कुछ लोगों का ऐसा भाव है कि हमारे नवयुवक गए हिन्दी को तुच्छ समझते हैं और अपनी मातृ-भाषा से घृणा रखते हैं। ये आज कल के चश्मे-बाज़ नई-रोशनी वाले हिन्दी की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते और अंग्रेज़ी और उर्दू को अपनी मातृभाषा समझे बैठे हैं! पर, माननीय सज्जनों! मैं, जोकि रात-दिन नवयुवकों और छात्रों के साथ ही रहता हूं, आपको दृढ़ता के साथ विश्वास दिला सकता हूं कि ये सब बातें असत्य हैं। आधुनिक समय के युवक अपनी मातृभाषा से प्रेम करने लगे हैं और यह भाव दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा है। किसी किसी हिन्दी पत्रों में बी० ए० और एम० ए० बिचारों की बड़ी खबर ली जाती है और कहते हैं ये लोग हिन्दी की ओर ध्यान नहीं देते। हो सकता है कि जैसा इन ग्रेजुएटों को उचित था वैसे वे हिन्दी को अभी अपनाते नहीं हैं पर साथ ही यह भी सत्य है कि ये बी० ए० और एम० ए० ही हैं जो हिन्दी की उन्नत्ति की चेष्टा कर रहे हैं। हमारे इस वर्ष के सभापति, मिश्रबन्धुविनोद और हिन्दी-नवरत्न के ग्रन्थकर्ता, अभ्युदय और मर्य्यादा के सम्पादक, प्रभा के सम्पादक, और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मन्त्री सब अंग्रेज़ी डिप्लोमाधारी हैं। ऐसी अवस्था में यह कहना कि हमारे देश के अंग्रेज़ी जानने वाले हिन्दी की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते—अत्यन्त भूल है। आप जिस हिन्दी-पत्र को उठा देखें उस में कितने ही अङ्गरेजी उपाधिकारी ही दीख पड़ेंगे और लेखकों में से अधिक नवयुवक ही विदित होंगे।

मैं कितने ही ऐसे नवयुवकों को जानता हूँ जिन्होंने हिन्दी-पुस्तकों का पढ़ना और मोल लेना अपना धर्म बना रक्खा है। हर महीने अपना स्कूल और कालिजों के पाठ्य पुस्तकों के साथ दो एक हिन्दी ग्रन्थों का पाठ जरूर किया जाता है। हिन्दी के मासिक-पत्रों को आजकल सब हिन्दी जानने-वाले बड़े चाव से पढ़ते हैं। मैंने ऐसे भी उपकारी नवयुवक देखे हैं जो केवल हिन्दी-पुस्तक विक्रेता के उत्साह को बढ़ाने के लिये किताबें मोल लेते हैं। कोई कोई नवयुवक हर महीने दो एक रुपये हिन्दी पुस्तकों के मोल लेने में ख़र्च करते हैं। यही नहीं वरन् पुस्तकालय खोलते हैं और चुपचाप हिन्दी की उन्नति के लिये रात दिन दिल तोड़ कर चेष्टा कर रहे हैं। ये विचारे बिना ढंडोरा पीटे, शान्ति से, छिपकर हमारे समाज और देश का उपकार कर रहे हैं। मैं कितने ही युवकों को आज इस प्रयागराज में जानता हूं जो रात को जाकर नाइट स्कूलों में हिन्दी पढ़ा रहे हैं। भला ये नवयुवक किसलिये इतना कष्ट सह रहे हैं? धन के लिये? कभी नहीं। नाम के लिये? वे नाम को चाहते नहीं। उनका कार्य निस्वार्थ है—वे हिन्दी की सेवा करना अपना सौभाग्य और धर्म समझते हैं। वे ये सब कार्य केवल अपनी पूजनीया मात।हिन्दी के लिये कर रहे हैं।

अब वह समय आया है जब कि नवयुवकगण गम्भीर कविता और साहित्य का अध्ययन करना चाहते हैं। केवल तुक बन्दी से तुष्ट नहीं वरन्

अब कविवर रवीन्द्र नाथ ठाकुर के जैसे भावों को अपने साहित्य में चाहते हैं ये बात और विषय उनको देना मुश्किल नहीं यदि हमारे विज्ञगण इस ओर ध्यान दें। रवीन्द्रबाबू के भावों की कविता हमारी पुरानी कविताओं में भरी पड़ी है पर उनको समझाना पड़ेगा। पुराने कवि की कविताओं को अब टीका सहित प्रकाशित करने की बहुत आवश्यकता है। पंडित सुधाकर द्विवेदी सम्पादित 'पद्मावत' और नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'पृथिवीराज रासो' अच्छे नमूने हैं। यदि टीका कुछ कम और पुस्तक कुछ हलकी बना दी जावें तो छात्रों का बड़ा उपकार हो और वे हमारे कवियों की वाणी के अमृत को पान कर परमानन्द उठा सकते हैं। हिन्दी रसिकों के लिये बड़े गौरव का विषय है कि जगत-विख्यात कवि रवीन्द्र ठाकुर भी सुविख्यात कवि कबीर को अपना आदर्श समझते हैं।

नवयुवकों से मेरी विनीत प्रार्थना है कि जब तक और पुस्तकें तैयार न हों तब तक तुलसीदास की पुस्तकों का अध्ययन करें। रामचरितमानस एक बार या दस बार पढ़ाजाने वाला ग्रंथ नहीं है; इसका पाठ प्रत्येक दिवस होना चाहिये। विनय पत्रिका भी गोस्वामी जी की लिखी हुई एक पुस्तक है जिसके गीत हमारे देश में गाये जाते हैं। इस पुस्तक पर 'हिन्दी-नवरत्न' के रचयिता मिश्र महोदयगण लिखते हैं:—

"बहुत से पण्डितों का मत है कि यह गोस्वामी जी के ग्रंथों में श्रेष्ठ है। हम भी इस ग्रंथ को प्रशंसनीय समझते हैं। विनय-सम्बन्धी ऐसा अद्भुत और भावपूर्ण ग्रंथ हमने अब तक किसी भी भाषा में नहीं देखा।"

ऐसे ही हिन्दी में सैकड़ों पुस्तकें हैं जिनको यदि ठीक ठीक सटीक छापा जावे तो नवयुवकगण उन्हें निश्चय ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे। सब कवियों की अलग अलग पूरी ग्रन्थावली छपनी चाहिये—न कि केवल चुनी हुई कवितायें। आधुनिक नवयुवक हर एक कवि के प्रति पंक्ति को पढ़ना और समझना चाहते हैं। जब तक उनको पूरा ग्रन्थ नहीं मिलेगा वे कवि को ठीक ठीक नहीं समझ सकते। जब एक बार सब बड़े बड़े कवियों की सब कवितायें पुस्तकाकार प्रकाशित हो जावें, तब हमारे विद्वान् यदि चुनी कवितायें प्रकाशित करें तो नवयुवकों को बहुत लाभ पहुँचने की संभावना है। जब हम गोस्वामी तुलसीदास जी के कुल ग्रंथों को पढ़लें और उसके बाद यदि हम 'हिन्दी-नवरत्न' में गोस्वामी जी के विषय में जो निबन्ध है उसे पढ़ें तब पूरा साहित्य का मजा मिल सकता है। नहीं तो चलते चलाते कभी कभी दो चार पुस्तकों को पढ़ लेना हिन्दी-साहित्य को जानलेना नहीं कहा जा सकता। हर एक कवि का इस प्रकार अध्ययन होना चाहिये। हर नवयुवकको चाहिये कि वह अपना एक कवि, जिसमें उसकी रुचि हो ढूँढ़ ले और उसके सब ग्रंथों का मनन करे। जैसे यदि वह तुलसीदास जी का भक्त है तो वह उन्हीं का पाठ करे, यदि उसे बिहारीलाल ही में मजा आता है तो वह उसी ओर भिड़ जावे, यदि उसे चन्दबरदाई में रुचि है तो वह उसी की खोज करे। यदि किसी को उक्त कविगणों के समझने में जो कि प्राचीन काल के हैं, कष्ट मालूम हो तो वह भारतेन्दु जी की ओट में जा सकता है। यदि किसी को भक्ति के भवसागर में लवलीन होना हो तो वह सूरदास जी के पास आश्रय ले सकता है। यदि एक नवयुवक उपर्युक्त किसी एक कवि का भी भलीभाँति अनुशीलन करे तो हिन्दी साहित्य का बहुत कुछ उपकार हो सकता है फिर वह समय दूर न होगा जब हिन्दी की ध्वजा फहरा उठेगी और हिन्दी सारे हिन्द की मुख्य भाषा हो जावेगी। नवयुवकों को उचित है कि वे अपने पुराने कवियों के ग्रन्थों को पढ़ें और भावों को सजीवकर फिर आधुनिक हिन्दी में भर दें। प्राचीन कवियों के ग्रंथों में वे भाव और विषय भरे हैं कि यदि कोई विद्वान्

उनका खूब अध्ययन कर संसार में आवे तो कुछ नहीं तो दस वर्ष तक नोवेलप्राइज़ लगातार उसी को मिलता रहेगा। बिना प्राचीन कवियों की वाणियों के जाने हमारी भाषा प्रभावशाली नहीं हो सकती। केवल लेखक ही नहीं वरन् पाठकों को भी अपने पुराने लेखकों के ग्रंथों को पढ़ना चाहिये, नहीं तो लिखने वाला लिख जायगा और पढ़नेवाले को आनन्द ही नहीं मिलेगा यह तो वही मसल हो जायगी कि 'बकरा जान से गया और खानेवाले को स्वाद ही न मिला। इसी कारण मैं कहता हूँ कि पुराने ग्रन्थों के पढ़ने की बहुत आवश्यकता है—और यह काम बिना पुस्तकों के नहीं हो सकता।

बंगला में इस प्रकार की ग्रन्थावली बहुत सस्ते में मिलजाती है। बंगला के विख्यात कवि माईकेल मधुसूदन दत्त के कुल ग्रंथ बारह आने में मिलते हैं और बंकिमबाबू के कुलग्रंथ ५) रु० में। इसका प्रभाव यह पड़ा है कि बंगाल के कुल युवकवृन्द इन विज्ञ पुरुषों के ग्रन्थों को पढ़लेते हैं और फिर साधारण साहित्य की चर्चा करना सहज होजाता है। कोई कोई बंगालीयुवक ऐसे होते हैं कि उनको विख्यात पुस्तकें बार बार पढ़ने से कंठस्थ होजाती हैं और चलते फिरते बातों बातों में पुस्तक का प्रभाव उन पर दृष्टिगोचर होता है। जहाँ दो चार बंगाली युवक बैठ गये और साहित्य पर बात छिड़ जाती है। यदि उनमें से कोई ऐसा निकल आवे कि वह बंगला किताबें न पढ़ा हो तो अन्य युवकगण उसे इतना बनाते हैं कि बिचारा दूसरे ही दिन ग्रंथावलोकन आरम्भ कर देता है और थोड़े ही दिनों में खासा बंगला-साहित्य का जानने वाला हो जाता है। यही बात मैं इस प्रदेश के नवयुवकों में देखना चाहता हूँ। जो हिन्दी न जानता हो उसे अपनी मातृभाषा पढ़ने के लिये उठते बैठते कोसना चाहिये। मुझे कुछ दिन हुये एक बात देखकर बहुत अचरज हुआ। मैं किसी हिन्दी-पुस्तकालय में गया हुआ था। वहाँ एक और महाशय आकर पुस्तकाध्यक्ष से जमा किये हुय रुपये लौटाने की बातचीत कर रहे थे। उन महाशय के पिता के, जो उस पुस्तकालय के मेम्बर थे, मरजाने पर यह सुपुत्र रुपया वापिस माँगता था इसलिये कि वह हिन्दी नहीं जानता था। उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—"मैं हिन्दी नहीं जानता।" बड़े शोक का विषय है कि उक्त वचन कहते उनको रत्ती भर भी लज्जा नहीं मालूम हुई और उनका कलेजा दहल नहीं उठा। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि हिन्दूयुवक बिना पहले अपनी मातृभाषा जाने कैसे उर्दू पढ़ने लगता है।

नवयुवकों से मेरी प्रार्थना है कि वे हिन्दी से प्रेम करना सीखें। कभी कभी ऐसे मनुष्य भी मिल जाते हैं कि जो उर्दू को अपनी मातृभाषा बनाये हुये बैठे हैं। इनके यहाँ केवल पुरुष ही मुन्शी नहीं वरन स्त्रियां भी फ़ारसी दाँ होती हैं। इनके यहां गज़ल और शेर बहुत चाव से पढ़े जाते हैं और इनके वालदैन (इन्हें माता-पिता कहना अदब के खिलाफ़ हो सकता है) इन्हें फारसी शिष्टाचार सिखाते हैं। मुझे याद है कि मैं एक बार अपने एक हिन्दू दोस्त के साथ उनके 'वालिद' के पास गया। बेटे ने जाकर झुककर तीन हाथ का लम्बा सलाम किया। वालिद ने भी खुश खुश उसे क़बूल किया। सो मेरी बुद्धि में यह आता है कि ऐसे घर के युवकों को वे ही नवयुवक सुधार सकते हैं जो हिन्दी से प्रेम रखते हैं। क्या हमारे भाई इस ओर ध्यान देंगे ? मुझे पूरी आशा है कि हिन्दी के प्रेमी नवयुवक इस ओर पूरी सहानुभूति प्रगट करेंगे। हमारे नवयुवकों को विचारना चाहिये कि अन्य देश की भाषा ने हमारे देश के आचार-व्यवहार पर कैसा बुरा प्रभाव डाला है। इस से हमारे राष्ट्रीयता के भावों पर बड़ा धक्का लगा है।

साथ ही मैं नवयुवकों को एक बहुत ज़रूरी बात कह देना चाहता हूँ वह यह है कि वे जब हिन्दी भाषा लिख पढ़ सकें तो तीन पुस्तकें निश्चय

पढ़ें :—महाभारत, तुलसीकृत रामायण और प्रेमसागर। इनके बिना पढ़े हिन्दी साहित्य में पग रखना बहुत दुष्कर है। इनमें हिन्दी साहित्य की वे बातें मिलेंगी जिन्हें अङ्गरेजी में Mythology कहते हैं। रामायण की कथा तो गोस्वामी जी की कृपा से हर हिन्दू थोड़ा बहुत जानता है पर महाभारत की कथा सब ठीक ठीक नहीं जानते। मैं एक बार अपने एक अच्छे पढ़े लिखे मित्र के साथ नाटक देखने गया। उस दिन 'महाभारत' खेला जा रहा था। जब खेल आरम्भ हुआ तो मुझे मालूम हुआ कि वे महाभारत के विषय को नहीं जानते थे। हिन्दी तो अच्छी तरह जानते थे और बहुत कुछ सामयिक पुस्तकें पढ़ा करते थे पर 'महाभारत' में क्या लिखा है इससे वे अभिज्ञ न थे। और यह थे हमारे हिन्दू जाति के शिक्षित युवा! मैं इस स्थान पर अपने मित्र को बहुत दोषी नहीं ठहरा सकता। सब दोष है पिता का जिनको उचित था कि वे महाभारत और रामायण की कथा बाल्यावस्था में ही अपने पुत्र के नस नस में भर देते और फिर बड़े होने पर उक्त कथाओं पर ग्रन्थ उसके हाथ में देते। वास्तव में ऐसी बातों में माता को ही दोषी ठहराना चाहिये पर हमारी माताओं को शिक्षा नहीं दी जाती, इसलिये उन पर किसी प्रकार का दोष नहीं लग सकता।

रामायण की भी यही दशा है। मोटी मोटी बातें तो रामलीला देखकर बहुतों को राम का जीवन वृत्तान्त मालूम हो जाता है, पर विस्तार पूर्वक हाल बहुत से शिक्षित युवक भी नहीं जानते। मेघनाथ रावण का पुत्र था या भाई बहुत लोग ठीक ठीक नहीं बता सकते; जटायु कौन था बहुतों को नहीं मालूम होगा। एक महाशय मुझ से कहते थे कि द्रौपदी रावण की स्त्री थी!

प्रेमसागर के विषय पर मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहता पर इतना कहूँगा कि हिन्दी-साहित्य के ज्ञान प्राप्त करने में उस ग्रन्थ को पढ़ने से बहुत सहायता मिलेगी। कृष्णभगवान का जीवन चरित्र ऐसा है कि इस पर बड़े बड़े पण्डित भी गड़बड़ाये हैं—फिर मेरी शक्ति क्या कि इन पर कुछ कहूँ।

अब मैं दो चार बातें हिन्दी-पुस्तकालयों पर कहना चाहता हूँ। इस ओर नवयुवकगण बहुत कार्य कर सकते हैं। हर शहर में पुस्तकालय खोलना चाहिये। बंगाल में तो हर बड़े बड़े कसबों तक में पुस्तकालय हैं। यहाँ यदि हर नगर ही में एक एक पुस्तकालय खुलजाय तो बहुत उपकार हो। बंगाली जहाँ प्रदेश में जाकर कुछ घर इकट्ठा हो जाते हैं वे फट से एक पुस्तकालय खोल डालते हैं। अभी थोड़े दिन हुये दो तीन सौ बंगाली राजधानी बदलने पर दिल्ली गये, पहुँचते ही पहुँचते उनका पुस्तकालय खुल गया। ऐसा उत्साह और प्रेम हमारे नवयुवकों में भी है यदि कोई अनुभवी सज्जन उनका हाथ बटावें। मैंने जो दो चार पुस्तकालय यहाँ देखे हैं उनमें अभी त्रुटियाँ हैं। पहिले यह कि पुस्तकें नंबरवार नहीं रक्खी जाती और इसी कारण पुस्तक रहते भी लोगों को पढ़ने को नहीं मिलती। दूसरे एक जिल्द में पांच पांच पुस्तकें तक लगी रहती हैं। इस तरह जहाँ एक पुस्तक ले जाने का नियम है वहाँ वास्तव में पाँच पाँच पुस्तकें बाहर जाती हैं। इससे कभी कभी दूसरों का हर्ज हो जाता है। तीसरे इन पुस्तकालयों में नई पुस्तकें बहुत कम मोल ली जाती हैं। जिन ग्रन्थों से पुस्तकालय आरंभ होता है उतनी ही पुस्तकें रह जाती हैं। ग्रन्थों की संख्या कम भले ही हो जाय पर बढ़ नहीं सकती। बंगला पुस्तकालयों की ऐसी दशा नहीं है, वहाँ हर महीने अच्छी अच्छी पुस्तकें मँगाई जाती हैं और धनी महोदयगण ऐसे सत्कार्य में सहायता देने में कभी नहीं चूकते। ऐसे पुस्तकालय बड़े बड़े शहरों और नगरों में चार चार पाँच पाँच होने चाहिये इन पुस्तकालयों में हमारे नवयुवकगण अवैतनिक

पुस्तकाध्यक्ष का कार्य कर सकते हैं।

मैं एक बार इस प्रदेश के एक विख्यात पुस्तकालय में गया। वहाँ क्या देखा कि पुस्तकाध्यक्ष महाशय एक पुस्तक ले अपने एक और मित्र के साथ गजल गा रहे हैं। महाशयो, ध्यान देने की बात है जहाँ कितने ही मनुष्य बैठे समाचार पत्र पढ़ रहे हों और जहाँ शान्ति स्थापन रखना पुस्तकाध्यक्ष का काम है वहाँ के रक्षक ही जब बुलबुल बनकर राग छोड़े तो उस पुस्तकालय में दुबारा जाने को किसका जी चाहेगा। पुस्तकाध्यक्ष को उचित है कि सब मेंबरों का नाम जाने और कौन सी पुस्तक कहाँ है उसका पता रक्खे पुस्तकालय को समय पर खोलने की भी बहुत आवश्यकता है। मुझे यह कहते बहुत आनन्द होता है कि आजकल के नवयुवक गण समय का मूल्य समझने लगे हैं।

मेल से काम करना और रहना बहुत प्राचीन नातिवाक्य है। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में यह मेल का भाव तीन स्थानों में पुष्ट हो सकता है। पहिला स्थान है हमारा यह वार्षिक-साहित्य सम्मेलन। इसको भी एक प्रकार का पर्व दिन कह सकते हैं। जैसे हमारे समाज में होली एक पर्व है कि उस दिन साल भर के द्वेष के भावों को हृदय पट से पोंछ डालते हैं और शत्रु को भी मित्र कह कर गले लगाते हैं, वैसे ही यह साहित्य-सम्मेलन का उत्सव हिन्दी-संसार में एक है, कि जिस दिन वर्ष भर के नोक झोक को भुला देते हैं और खूब मिलकर 'सम्मेलन' की भलाई चाहते हैं मैंने पढ़ा था कि बंगाल के एक साहित्य-सम्मेलन पर ॥) का टिकट लगाया था और उससे पन्द्रह-सौ रुपये जमा हुये थे। जरा विचार करने की बात है कि वहाँ के लोग इस सम्मेलन के दिन को क्या समझते हैं! दूसरा स्थान मिलने का पुस्तकालय है जहाँ जाते ही हम सब हिन्दी माता के सन्तान हो जाते हैं। तीसरा स्थान हिन्दी-साहित्य-संसार (Hindi Republic) है जहाँ कि सब सेवक एक श्रेणी पर होजाते हैं। जहाँ बड़ा से बड़ा कवि और महाराजों का महाराजा भी एक सामान्य हिन्दी रसिक से बड़ा नहीं कहा जा सकता है। ये हमारे तीन स्थान है जहाँ एकता की आवश्यकता हैं। यह ध्यान रखना पड़ेगा कि उक्त तीनों स्थलों में से यदि एक स्थल की भी गांठ ढीली पड़ी हमारे राष्ट्रीयता के स्वप्न में बड़ा धक्का पहुँचेगा। बंगाल में अच्छे अच्छे लोगों की कड़ी से कड़ी समालोचना की जाती है, पर इससे वे लोग आपे से बाहर नहीं निकलते परन्तु उक्त तीनों समय पर मिलते हैं और सब मिलकर मातृभाषा की पूजा करते हैं वहाँ जब एक कवि आकर गाता है कि

'धनो धान्य पुष्प भरा
आमादेर एई बसुन्धरा।"

तो सारा देश उसके साथ गा उठता है और उसकी प्रतिध्वनि दूर दूर देशों तक पहुँचती है। यही है सच्ची राष्ट्रीयता के लक्षण। पर इधर हिन्दी संसार में कुछ और ही तरह की हवा बहती है। इधर फूट का भाव कभी कभी मेल के भाव को जय कर लेता है। यदि एक कोई कवि अपनी वाणी से हिन्दी-संसार को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करता है, तो दूसरे द्वेषी लोग उसके राग को बीच ही में तोड़ डालना चाहते हैं। यह एक ऐसा भाव है जिससे नवयुवकों को दूर रहना चाहिये। एक कवि आप के जाति का नहीं है इस लिये उसकी गणना कवियों में नहीं हो सकती–ऐसा भाव मन में नहीं रखना चाहिये। बंगाल के सर्व-श्रेष्ट कवि गिने जाते हैं-एक यीशुधर्मावलम्बी। साहित्य में जाति-पांति का विचार नहीं किया जाता है। यहाँ देखना चाहिये कि वह जिस भाषा में लिखता है उसको मातृभाषा मानता है कि नहीं और वह जहाँ के दाने पानी पर जीवन निर्वाह करता है उसको अपनी जन्मभूमि कहता है कि नहीं। आज कल हम लोग ऐसे विचित्र समय में उपस्थित हुये हैं

कि यदि आज गोस्वामी तुलसीदास जी भी जन्म लेते तो आश्चर्य्य नहीं कि उनको भी हम लोग अपना राष्ट्रीय कवि कहने में हिचकते। जब तक आपस में प्रेम का संचार न होगा तब तक कवि रहते हुये भी हम लोग कवि को पहचान नहीं सकेंगे। बड़े दुःख का विषय है कि जिनसे हम लोगों ने मित्रता और मेल से रहने की शिक्षा पाई हो वे स्वयं उस नीति को भूल जावें। ऐसे मत का प्रभाव नवयुवकों के कोमल हृदय पर अच्छा नहीं पड़ेगा। आशा है हमारे गुरुजन इस दोष को साहित्य संसार से दूर करने का यत्न करेंगे। जिससे भावी साहित्य-सेवियों को उन्नति की राह साफ मिले और उन्नति के शिखर पर पहुँचने में देर न हो।

इस लेख में नाटक के विषय में कुछ कह देने से कोई हानि न होगी, क्योंकि इससे नवयुवकों से बहुत सम्बन्ध है। हिन्दी की उन्नति के लिये आज कल नवयुवकगण हिन्दी नाटक खेलते हैं। कभी कभी हिन्दी कहकर उर्दू ही का नाटक करते हैं। ऐसा करने से उतना हर्ज नहीं जितना नाटकों के बुरे विषयों से होता है। उर्दू नाटकों में एक बड़ी जहरीली चीज़ रहती है जिसे 'सभ्य' भाषा में कहते हैं 'इश्क'। यह इश्क का विषय ऐसा है कि जिसने सैकड़ों भोले भाले युवकों का सत्यानाश करडाला है। इसलिये इसकी बहुत आवश्यकता है कि हमारे गुरुजन इस ओर ध्यान दें और देखते रहें कि उनके बालक क्या कर रहे हैं। मेरा आशय यह है कि जो कुछ नवयुवकगण करें उसमें स्वतंत्रता तो निश्चय रहै। पर हमारे अभिभावकों को उचित है कि वे देखते रहें कि उनके नवयुवक उन्नति के नाम से अवनति की ओर तो नहीं दौड़ रहे हैं। नाट्यमंच पर और 'ग्रीन-रूम' में एक मान्यसज्जन का सदा रहना आवश्यक है। नवयुवकगण जो करते हैं सो अच्छा समझ कर ही करते हैं पर कभी कभी बच्चों की सी भूलें भी कर बैठते हैं। इन सब अवसरों पर किसी विज्ञपुरुष का रहना लाभदायक होता है।

हमारे कुछ नवयुवकगण ऐसा विचारते हैं कि बिना पुस्तक लिखे और लेख लिखे साहित्य सेवा नहीं होती। पर यह भ्रम है। साहित्य की आलोचना करना ही साहित्य सेवा करना है। अंग्रेजी के विख्यात साहित्यिक लार्ड मारले का नाम तो सब भारतवर्ष में फैला हुआ है, उनका मत इस विषय में उल्लेख योग्य है। वे कहते हैं:—

"There is an idea, and I venture to think, a very mistaken idea, that you cannot have a taste for literature unless you are yourself an author. I make bold entirely to demur to that proposition. It is practically most mischievous, leads scores and even hundreds of people to waste their time in the most unprofitable manner that the wit of man can devise."

इसका आशय यह है कि "बहुत मनुष्यों का ऐसा विचार है कि बिना ग्रन्थकर्ता हुए साहित्य का स्वाद नहीं मिलता। मैं ऐसे विचारों का विरोधी हूँ। इससे बहुत हानि पहुँचती है और सैकड़ों लोग इस भूल विचार में पड़कर अपने समय को नष्ट करडालते हैं" इसलिये ऐसे विचारों से भी हटना अच्छा है। दो चार भारतेन्दु जी के नाटकों को पढ़कर नाटक लिखने की आशा करना समाज को हानि के सिवा लाभ नहीं पहुँचा सकता।

बीस ही वर्ष में हिन्दी की ओर नवयुवकों के भाव बिलकुल बदल गये हैं। १८९३ ई० में डुमराव निवासी पंडित नकछेदी तिवारी ने एक पुस्तक 'विचित्रोपदेश' नामक प्रकाशित की पर इस पुस्तक का कोई गाहक नहीं मिला। तब उन्होंने उसी पुस्तक का नाम 'भड़ौआ संग्रह' रख दिया। अब क्या था किताब की धड़ाधड़ बिक्री शुरू होगई। इस घटना को लिखने से मेरा उद्देश्य

24th Dec, 1915. Oxford and Cambridge Allahabad.

यह दिखलाने का है कि कुछ दिनों पहिले पाठकों की रुचि कैसी पुस्तकों के अवलोकन करने की थी और अब हिन्दी भाषावित् कैसी पुस्तकें चाहते हैं। यह स्पष्ट प्रकट है कि हिन्दी बहुत शीघ्र उन्नति शिखर, की ओर धावित होरही है। अब हम सब मिलकर कह सकते हैं:—

"साहित्य का विस्तार अब भी है हमारा कम नहीं,
प्राचीन किन्तु नवीनता में अन्य इसके सम नहीं।"

इति

Printed by Pt Onkar Nath Bajpai at the Onkar Press Allahabad.